# 'भारत विजय-नाटकम्'

श्री मथुरा प्रसाद दीक्षित का सात अंकों का यह नाटक भारत को अंग्रेज़ों द्वारा अपने अधीन किये जाने और फिर भारतीय वीरों द्वारा पुनः अहिंसा द्वारा उसे स्वतन्त्र कराने के इतिहास का ज्वलन्त चित्रण है। पूर्णतया इतिहास होते हुए भी दीक्षित जी ने अपनी कवित्व शक्ति द्वारा इसे सरस बना लिया है। अंग्रेज़ों के असंख्य अत्याचारों का वर्णन होने पर भी पाठक के हृदय में करुणा का नहीं अपितु वीर रस का भाव उत्पन्न होता है। इसमें वीर रस के अनेक ऐसे उदाहरण मिलेंगे जिनमें वीरता तो होगी किन्तु वह शास्त्रों से रहित अहिंसात्मक रूप धारण किये होगी। इससे भारत की अहिंसात्मक वीरता की पुष्टि होती है। मथुरा प्रसाद दीक्षित जी ऐसे ऋषि हैं जिन्होंने दस वर्ष पहले ही भारत की स्वतन्त्रता पद्धति का दिग्दर्शन कर लिया था उसी अनुभूति को भारत विजय नाटक द्वारा उन्होंने प्रस्तुत किया है। यदि यह कहा जाय तो इसमें तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं होगी। जिस समय अंग्रेजों का अत्याचार पराकाष्ठा पर था, भारत माता बन्धनों से बुरी तरह जकडी हुई थी, उस समय दीक्षित जी नेपाली सखी के रूप में मानों स्वयं आशा किरणों से आलोकित हो भारत माता को ढ़ाढ़स बंधाते हैं कि है सखी, निराश मत हो निश्चय ही कुछ समय पश्चात तुम बन्धन मक्त हो जाओगी।

(Manuscripts)

जा से [illegible] नत न हो जायगा।

नाटक

नसा सदुःखिता भारती माता।"[1]

ी मुख कान्ति मलिन हो गये हैं–

ा को दिलासा देती है।

सन्तापमपनय, समयः प्रतीक्षितयः स्वल्पैनैव समर्यनोन्मुक्ता भविष्यसि।

---

1 पृ0 94

# 'भारत विजय-नाटकम्'

श्री मथुरा प्रसाद दीक्षित का सात अंकों का यह नाटक भारत को अंग्रेज़ों द्वारा अपने अधीन किये जाने और फिर भारतीय वीरों द्वारा पुनः अहिंसा द्वारा उसे स्वतन्त्र कराने के इतिहास का ज्वलन्त चित्रण है। पूर्णतया इतिहास होते हुए भी दीक्षित जी ने अपनी कवित्व शक्ति द्वारा इसे सरस बना लिया है। अंग्रेज़ों के असंख्य अत्याचारों का वर्णन होने पर भी पाठक के हृदय में करुणा का नहीं अपितु वीर रस का भाव उत्पन्न होता है। इसमें वीर रस के अनेक ऐसे उदाहरण मिलेंगे जिनमें वीरता तो होगी किन्तु वह शास्त्रों से रहित अहिंसात्मक रूप धारण किये होगी। इससे भारत की अहिंसात्मक वीरता की पुष्टि होती है। मथुरा प्रसाद दीक्षित जी ऐसे ऋषि हैं जिन्होंने दस वर्ष पहले ही भारत की स्वतन्त्रता पद्धति का दिग्दर्शन कर लिया था उसी अनुभूति को भारत विजय नाटक द्वारा उन्होंने प्रस्तुत किया है। यदि यह कहा जाय तो इसमें तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं होगी। जिस समय अंग्रेजों का अत्याचार अपनी पराकाष्ठा पर था, भारत माता बन्धनों से बुरी तरह जकड़ी हुई थी, उस समय दीक्षित जी नेपाली सखी के रूप में मानों स्वयं आशा किरणों से आलोकित हो भारत माता को ढ़ाढ़स बंधाते हैं कि है सखी, निराश मत हो निश्चय ही कुछ समय पश्चात् तुम बन्धन मुक्त हो जाओगी।

भारत माता का उस समय का करुण रूप देख कर किस भारतीय  का लज्जा से मुख अवनत न हो जायगा।

'निगडितपदारविन्दा विकीर्णवसना म्लानमुखकान्तिः चिन्तयन्ती किमपि मनसा सदुःखिता भारती माता।'[1]

'जिसके पावों में बेड़ियां पड़ी हुई हैं जिसके वस्त्र अस्त-व्यस्त हैं, जिसकी मुख कान्ति मलिन हो गये हैं– ऐसी दुःखिनी भारत माता मन में कुछ सोच रही है।'

किन्तु ऐसी जटिल परिस्थिति में भी नेपाली सखी धैर्य धारण कर भारतमाता को दिलासा देती है।

सन्तापमपनय, समयः प्रतीक्षितयः स्वल्पैनैव समर्यनोन्मुक्ता भविष्यसि।

---

1 पृ0 94

'सन्ताप दूर करो, समय की प्रतीक्षा करो, कुछ ही समय में छूट जाओगी।'

अपने ही देश में विदेशियों द्वारा पीड़ित अपने पुत्रों की दुर्दशा देख कर किस माता का हृदय न पसीज उठेगा!

रुहेलखण्ड में हैस्टिंग्ज़ की आज्ञा से जो भी अनर्थ हुआ उसे स्मरण कर भारत माता मां का हृदय चीत्कार कर उठता है और वह क्रन्दन कर उठती है—

कल्पन्तप्रचलन्महाधनघटाघोरायमाणस्वना

निर्भर्यादसमुद्रभीमनिनद प्रोतुंगघांकारिकाः।

मध्येरोदसि नीलधूमवसनप्रस्तारिका मत्सुते—

ष्वक्षैष्सुज्वलनप्रवर्षणकृतो गोलान् शत्घन्यः शतम्।।[2]

'वहां प्रलय में चलते हुए घनघोरघटाओं के गरजने के समान जोर से धांय धांय करने वाली शतघ्नियों तोपों ने आग बरसाने वाले सेकड़ों गोलों की बौछार चारों और से हमारे पुत्रों पर की।'

नाटककार सज्जनों की भाषा को सम्पूर्ण जनों का उपकार करने वाली और इसी लिए सर्वतोमुखी मान कर उसकी स्तुति करते हैं।

स्वान्ते कृतौ तुल्यरूपा सर्वलोकोपकारिणी।

उदारचेतसां भाषा जयतात्सर्वतोमुखी।।[3]

'अन्तःकरण तथा कार्य में समान रूपवाली, तथा सब लोगों का उपकार करने वाली , श्रेष्ठ पुरुषों की सर्वतोमुखी भाषा की जय हो।'

---

2 च0 अंक, 13 श्लोक, पृ0 108।

3 पृ0 2, श्लोक 2।

## कथानक

भारत विजय-नाटक का कथानक विदेशियों के भारत आगमन से प्रारम्भ होता है। योरुप देश निवासियों की सुन्दर आकृति और चिकनी-चुपड़ी बातों में आकर भारत माता उन्हें अपने देश में रहने और कतिपय सुविधायें देने को तैयार हो जाती है। नेपाली सखी योरुपीय मनुष्य के मन की भीतरी कालिमा को देख उस पर विश्वास करना उचित नहीं समझती और भारत माता से कहती है इस पर विश्वास करना उचित नहीं किन्तु सरल हृदया भारत माता उस पर विश्वास करती है और उसी विश्वास का लाभ उठा कर योरुपीय उसके साथ विश्वासघात करते हैं।

भारत सम्राट की व्याधिग्रस्त राजकुमारी को अपनी औषधि द्वारा व्याधिमुक्त कर विदेशी कपड़े के व्यापार की सुविधा प्राप्त कर लेते हैं। उन्हें यह भी अधिकार मिल जाता है कि उनके अतिरिक्त कपड़ा और कोई नहीं बेच सकता। किन्तु इस अधिकार का वे दरुपयोग करते हैं, भारतीय कपड़ा खरीद कर वे उसे मंहगा से मंहगा कर बेचते हैं। उनके विरोध करने पर उनके अंगूठे काट लिये जाते हैं जिससे वे आगे से कपड़ा बनाने में असमर्थ हो जायें। परिणामस्वरूप भारत का व्यापार नष्ट हो जाता है और बिना टैक्स दिये व्यापार करने वाले अंग्रेज़ों का व्यापार चमकता है।

अपने बच्चों की ऐसी दुर्दशा देख कर और अंग्रेज़ों का विश्वासघात देख कर भारत मां बड़ी दुःखी होती है किन्तु नोपाली सखी उन्हें सान्त्वना देती हुई कहती है कि तुम वीर प्रसविनी हो आगे चल कर तिलक, मालवीय लाजपतराय, गांधी, जवाहरलाल इत्यादि पुत्रों की तुम्हें प्राप्ति होगी।

## द्वितीय अंक

इसके पश्चात क्लाइव महाशय बंगाल को नष्ट करने की युक्ति में सफल हो जाते हैं। वे बंगाल के अधिपति शिराज के अत्यन्त विश्वासपात्र तथा सम्पूर्ण सेना के अधिनायक जाफर को अपनी ओर मिला लेते हैं। इस युक्ति में सहायक होता है अमीचन्द, जो युक्ति की सफलता के पश्चात् तीस लाख रुपये की मांग पर तथा अन्य सन्धि की शर्तों पर हस्ताक्षर करवा लेता है। क्लाइव दोहरा धोखा देता है वह जाफर की सहायता से बंगाल को अपने वश में कर लेता है किन्तु अमीचन्द का तीस लाख रुपये वाला सन्धिपत्र झूठा बना कर उसे धोखा देता है।

क्लाइव सेना लेकर बंगाल पर चढ़ाई कर देता है। सन्धिपत्र की शर्त के अनुसार सेनापति जाफर शिराज की ओर से युद्ध नहीं करता और क्लाइव की जीत हो जाती है। राजकुमार नन्दकुमार भी अमीचन्द की बातों में आकर और घूस खाकर युद्ध से विरक्त हो जाता है। शिराज के अपने ही सेनापति और सैनिक विद्रोही बन जाते हैं। इसलिए शिराज की बुरी तरह हार होती है। मीर जाफर गद्दी पर बैठता है। अमीचन्द सन्धि में लिखे गये 30 लाख रुपये मांगता है किन्तु उस समय क्लाइव असली सन्धि पत्र दिखा कर उसे भगा देता है क्योंकि असली सन्धि पत्र में उसे कुछ भी देने की शर्त नहीं लिखी होती। अमीचन्द को केवल निराशा ही हाथ आती है। जाफर गद्दी पर बैठ शिराज के वध की आज्ञा देता है। जाफर सेनापति के पद से एक दम बंगाल का अधिपति तो बन बैठा किन्तु उसमें राज्यकार्य संभालने की नाम मात्र की योग्यता नहीं थी। अधिकार आ जाने के कारण वह मदोन्मत भी हो गया था। सैनिकों को कभी समय पर वेतन नहीं मिलता था। वे अन्दर ही अन्दर विद्रोह करते थे। अंग्रेज़ों ने यह देख कर जाफर को बंगाल के अधिपत्य से हटा कर मीर कासिम को राज गद्दी पर बैठाया।

## तृतीय अंक

मीरकासिम गुणी था, अत्यन्त सज्जन तथा वीर था किन्तु अंग्रेज़ों ने तो उसे अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए बंगाल का अधिपति बनाया था। उनके विचार में मीरकासिम को उन्होंने स्वयं बंगाल का राज्य दिया है इसलिए वह कोई बात उनके विरुद्ध नहीं करेगा, किन्तु योग्य शासक होने के नाते मीरकासिम ने जब भारत के हित और अपनी भारतीय प्रजा के हित की बात की तो अंग्रेज़ों ने उसे भी पदच्युत कर दिया। मीरकासिम, भारत माता के बन्धन जो जाफर ने कुबुद्धि वश मां के चरणों में डाल रखे थे– ढ़ीले करने का प्रयत्न करता है तो अंग्रेज़ उसे डांटते हैं और यह कह कर उसको विद्रोही ठहराते हैं कि वह उनके कार्यों में हस्तक्षेप करता है। इस प्रकार मीरकासिम अपनी योग्यता और प्रजा के हित की बात सोचने के कारण ही पदच्युत कर दिया जाता है। भरसक युद्ध तो वह करता है, किन्तु अंग्रेजों की कपट नीति के आगे उसकी एक नहीं चलती और वह हार जाता है। हैस्टिंग्ज़ नन्दकुमार को अपने कार्य में हस्तक्षेप करने के अपराध में रगलिजा नामक जज से उसे फांसी की सजा दिलवा देता है। हैस्टिंग्ज़ ने मीर जाफर की विधवा स्त्री से एक लाख तथा मुन्नी बेगम इत्यादि ने जो दस लाख रुपया घूस के रूप में लिया था उसका रहस्योद्घाटन नन्दकुमार ने ही किया था। इसी कारण हैस्टिंग्ज़ उससे चिढ़ा हुआ था। बिना किसी गवाह और प्रमाण के अभाव में भी उस पर मुकदमा चला कर उसे फांसी की सजा दे कर मार डाला जाता है। जब जब अंग्रेजों का अत्याचार बढ़ता है तब तब बीच में भारत माता का जो कठिन बन्धनों से जकड़ी हुई है प्रवेश होता है। अपने पुत्रों की दुर्दशा और अंग्रेजों के अत्याचार देख कर आहें भरती हुई वह दुःखी होती है। उसकी एक मात्र

नेपाली सखी ही उसे सांत्वना प्रदान करती है।

## चतुर्थ अंक

भारत माता को जासूस बताता है कि कंपनी के धन लोभी लोगों ने तिगुना टैक्स बढ़ा दिया है, बढ़े हुए टैक्स देने में असमर्थ बंगालियों को कंपनी के अनुचरों ने खूब पीटा। भारत माता अपने बच्चों की सब स्थानों पर ऐसी दुर्दशा सुन कर बहुत दुःखी होती है। उधर हैस्टिंग्ज़ कंपनी के हित की बात सोचता हुआ स्वार्थ परक हो जाता है परिणामस्वरूप वह बहुत अत्याचार करता है और बंगाल को नष्ट करने में कोई कसर नहीं छोड़ता। कंपनी का एक व्यक्ति तीस लाख की मांग करता है। हैस्टिंग्ज़ के अत्याचारों से बंगाल बिल्कुल गरीब हो चुका है। वहां से तो तीस लाख मिल नहीं सकता अतः वह एक दूसरी चाल चलता है। रामनाथ नामक दूत तो रुहैलखण्ड और अवध के समाचार जानने के लिए भेजा हुआ था, उससे सम्पूर्ण आंतरिक दशा को जान लेता है। वहां धन की और ऐश्वर्य की अधिकता होने से तथा धर्म और ज्ञान से शून्य होने के कारण सभी परस्पर विरोधी हो रहे होते हैं। हैस्टिंग्ज़ इसे अच्छा मौका समझ रुहेलखण्ड पर चढ़ाई कर के उसे तहस-नहस कर डालता है। भारत माता उस दृश्य को याद करके बार-बार रोती है। रुहेलखण्ड नष्ट तो हो ही गया था किन्तु जब शुजाऊंद्दौला अपने व्यक्ति गंगासिंह को हैस्टिंग्ज़ के पास भेजता है। हैस्टिंग्ज़ वह तीस लाख रुपये लेकर कंपनी के पुरुष को दे देता है। शुजाउद्दौला को रुहेलखण्ड दे देता है किन्तु मन में यह भी सोच लेता है कि युद्ध द्वारा पुनः रुहेलखण्ड अपने हस्तगत हो ही जायगा। इसी प्रकार अवध राज्य को भी हैस्टिंग्ज़ लूट कर निर्धन बना देता है। अवध का नवाब बहुत धार्मिक था लेकिन उसका लड़का सैय्याश और लोगों की बातों में आने वाला था। पिता की मृत्यु के बाद वह अपनी विधवा मां से धन लेना चाहता है, किन्तु वह नहीं देती। इस विषय में वह अंग्रेजों की सहायता लेता है। हैस्टिंग्ज़ इत्यादि बेगम से बलपूर्वक धन लेकर बहुत सा धन स्वयं ले लेते हैं और नाममात्र की सम्पत्ति राजकुमार को दे कर उसे अवध का नवाब बना देते हैं। राजकुमार अवध का नवाब भी नाममात्र का होता है वैसे सम्पूर्ण अधिकार कम्पनी के पास चले जाते हैं।

## पञ्चम अंक

किन्तु समय सदैव एक सा नहीं रहता। कम्पनी पुरुषों के अत्याचार अपनी पराकाष्ठा तक पहुंच चुके हैं।

भारतवासी धीरे-धीरे प्रबुद्ध हो रहे हैं। अतः भारत माता को बंधनों से छुटकारा दिलाने की इच्छा से एक सभा का आयोजन किया जाता है। भारतवासियों के सम्मुख यह स्पष्ट हो जाता है कि अंग्रेज़ केवल भारत का धन ही नहीं अपितु धर्म पर पर भी कुठाराघात करना चाहते हैं और ईसाई धर्म की स्थापना करना चाहते हैं।

अंग्रेजों ने सिन्ध प्रदेश और सिक्ख लोगों को भी फोड़ कर सम्पूर्ण भारत पर अपना अधिकार जमा लिया। भारतमाता की एक मात्र नेपाली सखी को भी विद्रोह की आग जला कर अलग कर दिया। कम्पनी को अधिक सबल बनाने के लिये अंग्रेजों ने नियम बनाया कि जो राजा स्त्री और पुत्र से रहित होगा, उसका राज्य कम्पनी का होगा। इस नियम से कोई भी राजा दूसरे की सहायता नहीं करेगा और सम्पूर्ण राज्य कम्पनी का होता जायगा।

इसके पश्चात् रानी झांसी और उसके साथ पाण्डेय आदि का आविर्भाव होता है। ये लोग अंग्रेजों द्वारा भारतीयों का धर्म नष्ट करने की नीति का विरोध करते हैं। गाय और सुअर की चर्बी से अस्पृश्य कारतूस बना कर दांतों से तोड़ना धर्मविरुद्ध कार्य है। भारतीय सैनिक कभी भी ऐसा कार्य नहीं कर सकते। पाण्डेय और वाजपेयी नामक व्यक्तियों को एक गोरा जब कारतूस मुंह से तोड़ने जैसा धर्मविरुद्ध कार्य करने को कहता है तो वे उसे गोली मार कर उसका जीवन समाप्त कर देते हैं। भारतीय वीरों में जागृति की लहर उमड़ पड़ती है। पाण्डेय बंगालियों और बिहारियों में जागृति फेलाता है। झांसी की रानी भारत माता के बन्धन काट देती है। भारत माता युद्ध का वृतान्त पूछती है तो झांसी की रानी भारत माता के बन्धन काट देती है। भारत माता युद्ध का वृतान्त पुछती है तो झांसी की रानी बताती है कि अंग्रेज़ परस्पर द्वेष फेलाने में सिद्धहस्त हैं सभी सैनिकों को उन्होंने भड़का दिया और वे लोग अपने ही राज्य के विरुद्ध हो गये हैं। झांसी की रानी का अपना राज्य छिन गया फिर काल्पी के राजा की सहायता से उसने युद्ध किया, अंग्रेज़ों ने जब उस राजा को भी जीत लिया तब झांसी की रानी ने स्वतन्त्रता संग्राम के सैनिकों के साथ मिल कर ग्वालियर जीतने की सोची। इधर भारतीय वीरों ने कंपनी की सेना को हरा कर प्रयाग तक पहुंचा दिया किन्तु फिर अपने ही विरोधी भाइयों की कुटिलता से जब उनके पास खाने तक को न बचा तब भारतीय सेना अनुत्साही हो गई। किसी अपने ही सैनिक ने बारूद में आग लगा दी जिससे उनके पास लड़ने के साधन भी समाप्त हो गये। कंपनी पुरुष जीत गये हैं इसका पता भारत माता को विजय की दुंदुनि सुन कर लगता है। भारत माता और रानी झांसी छिप कर देखती हैं कि विजयोपरान्त योरुपीय क्या करते हैं। योरुपीय तीन दिन के प्यासे दिल्ली सम्राट बहादुरशाह को पकड़ कर लाते हैं। पानी मांगने पर उसे उसके पुत्र का रक्त पीने को देते हैं। यह जान कर बहादुरशाह मूर्छित हो जाता है। दूसरी तरफ रानी झांसी भी सभी तरफ से निराश हो कर अपनी ही

सेनापतियों के विद्रोही हो जाने पर और किसी तरफ की आशा की किरण न देख कर आग में जल कर अपने शरीर की आहुति दे देती है। भारत माता का यह करुण दृश्य देख कर बहुत विलाप करती है। अंग्रेज़ भारतीय स्वतन्त्रता युद्ध के सैनिकों को पकड़ कर मार डालते हैं। भारत माता अपने वीरपुत्रों की दुर्दशा देख कर स्वयं तलवार लेकर लड़ने के लिये प्रस्तुत होती है और यह घोषणा करने के लिये आज्ञा देती है कि आबाल वृद्ध सभी स्वतन्त्रता संग्राम के लिये सन्नद्ध हो जायं। किन्तु झांसी रानी की सखी भारत माता को समझाती है कि अभी हमारा समय नहीं है। उसी समय इंग्लैण्ड में महारानी विक्टोरिया सिंहासनगढ़ होती हैं। वे भारत की कम्पनी से खरीद कर नीति से अपना आधिपत्य स्थापित करती हैं। किसी की भूमि, किसी को सम्मान और किसी को सम्पत्ति दे कर सभी प्रकार के विद्रोहों को शान्त करती हैं। विक्टोरिया के राज्य प्रबन्धन से भारत माता को कुछ सान्त्वना होती है।

## षष्ठ अंक

महारानी विक्टोरिया की आज्ञा से और गवर्नर की सलाह से सैक्रेटरी ह्यूम कांग्रेस की स्थापना करता है। वह नौरौजी साहब को बताता है कि देश के सभी सम्मानित व्यक्तियों की समिति बनाई जायगी। इस पर नौरोजी साहब कहते हैं कि उस भवन पर भारतीयों की ही ध्वजा फहरायी जायगी जिससे यह ज्ञात हो जाय कि यह सभा भारत की समुन्नति के लिये कार्य करती है। इसके पश्चात् बालगंगाधर तिलक आ कर भारत माता को बताते हैं कि क्योंकि बंगाली ही स्वतन्त्रता युद्ध में प्रधान रूप से कार्यकर्ता थे इसलिए अंग्रेज़ इन्हीं पर अधिक क्रोधित हो बंगाल का विभाजन करना चाहते हैं। यह जान कर भारतमाता बहुत दुःखी होती है। इसके बाद खुदीराम का प्रवेश होता है, वह प्रत्येक गोरे को जान से मार डालना चाहता है और प्रत्येक बंगाली को युद्ध के लिये तैयार करता है लेकिन बालगंगाधर तिलक उसे समझाते हैं कि भारतमाता की आज्ञा है कि बंगभंग का प्रतिकार अहिंसा से करना चाहिए। माता की आज्ञा को खुदीराम शिरसा धारण करता है। इस समय प्रबुद्ध भारतीय अंग्रेजों का कोई भी अत्याचार सहने को प्रस्तुत नहीं होते। इसीलिए जब एक योरुपियन जन कालीचरण को अपमानित करता है तो वह गुस्से में आ कर त्यागपत्र दे देता है। देशभक्त खुदीराम बम से एक अंग्रेज़ की हत्या कर देता है जिसके फलस्वरूप उसे फांसी की सजा मिलती है। खुदीराम बड़ी प्रसन्नतापूर्वक यह सज़ा ग्रहण करता है। एक अन्य देशभक्त कन्हैयालाल नरेन्द्र को, जो सरकारी गवाह बन गया है, जेल में ही अपनी बहना द्वारा लाये गये कटहल में रखी हुई बन्दूक से चतुरतापूर्वक मार डालता है। उसे भी फांसी की सजा मिलती है। वह भी हंसी खुशी इसे स्वीकार करता है, भारतीय देशभक्तों की इस निडरता को देख योरुपीय भयभीत होते हैं।

इधर पश्चिम में अकेला जर्मनी, इंग्लैण्ड, फ्रांस, रूस, बेल्जियम आदि के साथ लड़ता हुआ विजय प्राप्त

करता है, इससे इंग्लैण्ड के राजा घबरा उठते हैं। योरुप निवासी आकर भारत माता के चरणों में गिरकर उससे दैनिक सहायता मांगते हैं और वचन देते हैं कि युद्ध के बाद भारत को स्वतन्त्रता दे दी जायगी। भारत माता अपने सुपुत्रों को उत्साहित करके भेजती है कि इंग्लैण्ड के शत्रुओं को यमराज के घर पहुंचा दो। भारत माता जन और धन दोनों से इंग्लैण्ड की सहायता करती है। युद्ध में इंग्लैण्ड जीत भी जाता है। किन्तु जब भारतीय इसके फलस्वरूप इनाम और भारत की स्वतन्त्रता चाहते हैं तो इंग्लैण्ड निवासी कठोरतापूर्वक कहते हैं कि जो कोई भी कुछ मांगेगा उसे रालेट एक्ट के अनुसार सज़ा मिलेगी। अंग्रेजों का ऐसा कपटपूर्ण आचरण देख कर महात्मा गांधी बहुत क्रुद्ध होते हैं और कहते हैं कि फांसी की सज़ा होने पर भी रोलेट एक्ट को तोड़ेंगे। योरुपीयन उनकी कोई बात नहीं मानते तब महात्मा गांधी अहिंसा से युद्ध करने की ठान लेते हैं। योरुपीयन मुल्तान के सेनापति को बुलाकर उसे आज्ञा देते हैं कि सभी विरोधियों को गोलियों से मार डालो। सेनापति ऐसा करने से इन्कार कर देता है तब उसे जेल भेज दिया जाता है। दूसरा सेनापति विक्टोरिया क्रास नामक पदक वापस कर देता है। इसी तरह अंग्रेजों द्वारा दी गई रायबहादुर, खान बहादुर इत्यादि सभी उपलब्धियां लौटा दी जाती हैं। मालवीय जी योरुपीयन को जलयान वाले बाग के अत्याचार की याद दिलाते हैं। महात्मा गांधी बताते हैं कि चौरा-चौरी नगर में हिंसा के लिए उद्यत लोगों की उद्धतता तथा देश की तैयारी में कमी देख कर बारदोली में टैक्स न देने के लिए उद्यत लोगों को मना किया गया था। मालवीय जी आकर भारत माता को बताते हैं कि इंग्लैण्ड से असंतुष्ट लोग विदेशी वस्त्र जला रहे हैं। इसके पश्चात् अब्दुल कलाम आजाद आकर माता के मुंह पर लगी पट्टी और हाथ की हथकड़ी को दूर करते हैं। गोविन्दवल्लभ पंत माता के चरणों में गिर कर उसके पास बैठ कर बेड़ियों को ढीली करते हैं।

इसके पश्चात् खेर रविशंकर और अब्दुल गफ्फार आ कर माता के चरणों में प्रणाम करते हैं। खेर बताते हैं कि अंग्रेज़ हम लोगों से सलाह लिये बिना ही युद्ध में हमारे भाइयों को भेजते हैं और स्वच्छन्द आचरण करते हैं। तब महात्मा गांधी सलाह देते हैं कि सभी कांग्रेसियों को लोक सभा इत्यादि के प्रबन्ध से त्याग पत्र दे देना चाहिये जिसका पालन सभी लोग करते हैं। महात्मा गांधी माता से अहिंसा युद्ध की आज्ञा लेते हैं। माता आज्ञा देती है और विजय के लिए आशीर्वाद देती है।

## सप्तम अंक

इधर यूरोपियन लोगों को जब मालूम होता है कि भारतीय अब प्रबुद्ध हो गये हैं और अपनी स्वतन्त्रता के लिए भरसक प्रयत्न करेंगे तब वे एक और चाल चलते हैं। वे हिन्दुओं और मुसलमानों में धार्मिक भेद डाल कर उनमें

परस्पर विद्वेष की भावना दृढ़ कर देते हैं। मुसलमानों को उकसा कर कि हिन्दू उनकी मस्जिद के आगे बाजा बजा कर उसके आगे बाजा बजा कर उनके धार्मिक कार्यों में बाधा डालते हैं, तथा स्वराज्य मिलने पर मुसलमानों का विनाश कर देंगे, उन्हें हिन्दुओं के विरुद्ध भड़का देते हैं। अपने ही पुत्रों में परस्पर फूट देख कर और उसका एक मात्र कारण अंग्रेज़ हैं यह जानकर भारत माता बहुत दुःखी होती है। अंग्रेज़ उससे पूछता है कि भारत माता उसके विरुद्ध क्या सोच रही है तब भारत माता अत्यन्त क्रोधित हो कर बताती है कि उसने भारत के साथ कितना अत्याचार किया है बंगभंग किया, अवध और बिहार हो भी नष्ट किया। टीपू सुल्तान के साथ की गई सन्धि को छल द्वारा तोड़ दिया। सिन्ध लूटा। इसी प्रकार सभी अत्याचारों की याद दिलाती है, यूरोपियन इससे क्रुद्ध हो जाता है और आर्डिनेन्स का जाल भारत माता पर फेंकता है। भारत माता क्रुद्ध हो कर उसे थप्पड़ मारना चाहती है, यूरोपीयन उसे क्रुद्ध हो कर तलवार मारना चाहता है इसी समय सुभाष चन्द्र आ कर गोरे को हाथ पकड़ कर मारते हैं। जवाहरलाल नेहरू भी उसी समय आ जाते हैं और घोषणा करते हैं कि हम उस गोरे को क्षण भर में यम के घर पहुंचा देंगे। सम्पूर्णानन्द सहसा आकर कहते हैं कि जिस प्रकार भीम ने जरासन्ध को फाड़ डाला था उसी प्रकार मैं भी तुझे फाड़ूंगा और इतना कह कर उस गोरे को मारने के लिए उद्यत होते हैं किन्तु उसी समय पन्त आकर उन्हें आक्रमण करने से रोक कर कहते हैं कि महात्मा गांधी की आज्ञानुसार हमें इन्हें अहिंसा द्वारा जीतना चाहिए। सम्पूर्णानन्द भी क्रोधित होकर कहते हैं कि हत्यारे गोरे को नरक पहुंचा देंगे अथवा इनके देश लन्दन में ही पहुंचा देंगे। किन्तु इन सबके क्रोध को शान्त करने वाले महात्मा गांधी सहसा प्रवेश करके शांत स्वर में कहते हैं कि चाहे जैसा भी है यह अंग्रेज़ भी आपका भाई ही है और इतना कह कर उसका आलिंगन करते हैं। उसे प्रेम से सने शब्दों में यह कह कर कि उसे भारतीयों के जन्मसिद्ध अधिकार को नहीं छीनना चाहिये और मित्रता पूर्वक अपने देश को चले जाना चाहिये। अंग्रेज़ गांधी जी के इस व्यवहार से बहुत प्रसन्न होते हैं और गांधी जी से क्षमा मांगते हैं। महात्मा गांधी की आज्ञा से जवाहरलाल, अब्दुल कलाम आदि यूरोपियन से गले मिलते हैं और इसके पश्चात् चले जाते हैं। गांधी जी इत्यादि सभी हर्ष से मिल कर गाते हैं, तभी दूसरा जन्म धारण किये हुए मृगचर्म और कमण्डलु धारण किये हुए अपने शिष्य सहित तपस्वी तिलक प्रवेश करते हैं और भरतवाक्य का उच्चारण करते हैं कि सभी लोग धनधान्य से परिपूर्ण हों, राजा मितव्ययी हो और वीरांगनाएं पतिपुत्र और शौर्य से युक्त हों। इसी भरतवाक्य के साथ नाटक की समाप्ति होती है।

## समीक्षा

लगभग 100 वर्ष के इतिहास को सात अंकों के नाटक में क्रमबद्ध कर देना पं0 मथुराप्रसाद दीक्षित जी का

ही कार्य है। एक अंक में जो पात्र आये हैं दूसरे अंक में नहीं आये और उनका आ सकना सम्भव भी नहीं था क्योंकि 100 वर्ष तक एक ही पात्र के लिए कमठ जीवन व्यतीत करना असम्भव है। केवल भारत माता नाटक के आदि से अन्त तक उपस्थित रहती हैं और उनकी उपस्थिति उपयुक्त भी है क्योंकि वे एक देश की प्रतीकात्मक भावना हैं जो कि नाटक में स्त्री का मूर्त स्वरूप धारण कर लेती है, किन्तु वास्तव में वह जन्ममरण से रहित है इसलिए उसका नाटक प्रारम्भ से अन्त तक उपस्थित रहना उचित ही है। वैसे भारत माता, नेपाली सखी, रानी झांसी और सखी के और कोई स्त्रीपात्र नहीं है, सभी पुरुष पात्र ही हैं, जो समय पर अपना कार्य करते हैं और फिर रंगभूमि से हट जाते हैं। इतना विशाल काल होने पर भी नाटक की गति का प्रवाह अविच्छिन्न है, कहीं पर भी टूटता नहीं है और यही नाटक का सौन्दर्य है। वीभत्स घटनाओं का वर्णन किसी न किसी के मुख द्वारा ही करवा दिया गया है। उनका प्रत्य क्ष दर्शन शायब नाटककार को अभीष्ट नहीं था, और इससे नाटक का कलेवर बढ़ जाने का भी भय था।

क्योंकि पात्र अधिक हैं और थोड़े समय तक ही उनका कार्यक्षेत्र रखता है इसीलिए उनके चरित्र के विशेष गुण मुखर नहीं हो पाते। उनके जातीय गुणों की ओर दृष्टिपात करना ही अधिक उपयुक्त होगा। उदाहरण के लिए अंग्रेजों का चरित्र सदैव कपटपूर्ण, छलमुक्त और एक दूसरे में परस्पर फूट डालने वाला है, उन्होंने सदैव अपना स्वार्थ पूरा करने के लिए भारत को अपना साधन बनाया और जितना हो सका उस देश का अनिष्ट किया। भारत देश की सरलता की प्रतीक भारत माता सदैव बन्धनों से अधिक से अधिक जकड़ी जाती है जिसका स्पष्ट तात्पर्य यह निकलता है कि भारतवासी अपनी सरलता के कारण ही अंग्रेजों के कपटपूर्ण जाल में फंसते गये परस्पर प्रेम न होने के कारण, अपने ही भाई बन्धुओं के विद्वेष होने के कारण, कपटी अंग्रेज़ों की बातों में आ कर अपने आप ही अपना अहित करने लग गये। मुसलमानों के साथ फूट का कारण भी परस्पर प्रेम का अभाव और अविश्वास ही सिद्ध हुए।

महात्मा गांधी का चरित्र कुछ अधिक मुखर हुआ है क्योंकि स्वतन्त्रता प्राप्ति के मुख्य नेता वहीं हैं। उन्होंने सदैव अहिंसा को प्रश्रय दिया, सभी से अपने भाइयों के समान प्रेम किया और अन्त में अपनी चरित्रिक दृढ़ता के कारण ही उन्होंने अंग्रेजों को भारत छोड़ने के लिए विवश किया।

# भास्करोदयम्

डा0 यतीन्द्र विमल चौधुरी द्वारा रचित भास्करोदयम् महानाटक की कोटि में आता है। इस विषय में उनका स्वयं का कथन है–

इन शब्दों से सिद्ध होता है कि हनुमान नाटक के पश्चात् महा नाटक लिखने का महत् प्रयास चौधुरी जी का ही है। श्री ईश्वर चन्द्र शास्त्री के शब्दों में प्रस्तुत महानाटक की विशेषताएं ये हैं कि रवीन्द्रनाथ की जीवनी पर आधारित किसी भी भाषा में लिखा गया यह पहला नाटक है। संस्कृत साहित्य में किसी आधुनिक व्यक्ति पर लिखा गया भी यह प्रथम महानाटक है। यह तो सबको ज्ञात ही है कि ऐतिहासिक पुरुषों पर नाटक लिखना सरल कार्य नहीं है। इसमें विचारणीय बात तो यह होती है कि एक ओर तो नाटककार केवल शुष्क तथ्य और नीरस घटनाओं तक ही अपने को सीमित नहीं रख सकता उसे उनमें सरसता लानी पड़ती है किन्तु दूसरी ओर वह इतनी बड़ी कल्पना की उड़ान भी नहीं भर सकता जिसका तथ्यों से किसी प्रकार का सम्बन्ध ही न हो। प्रस्तुत नाटककार ने दोनों का सुन्दर समन्वय किया है इसमें नाटक का सौन्दर्य और ऐतिहासिक तथ्य पूर्ण सच्चाई के साथ प्रस्तुत किये गये हैं।

डा0 यतीन्द्र विमल चौधुरी की भाषा की प्रशंसा करते हुए श्री ईश्वर चन्द्र शास्त्री कहते हैं–

'भास्करोदयम्' में कवि रवीन्द्रनाथ के 25 वर्ष तक की आयु के कार्यकलापों का वर्णन है, सके बाद के दो भाग भारतभास्करम् और 'भवनभास्करम्' कवि के बाद के जीवन से सम्बन्धित हैं। अन्तिम दो भाग अभी प्रैस में हैं। 15 अंकों का यह ग्रन्थ महाकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर के जीवन के प्रारम्भिक पच्चीस वर्षों तक के कार्यकलापों से सम्बन्धित है। इसमें सन्देह नहीं कि सभी महान् पुरुषों के जीवन आगे आने वाली पीढ़ी के लिये प्रकाश स्तम्भ होते हैं जिनसे मन चाहा प्रकाश ग्रहण किया जा सकता है। महाकवि रवीन्द्रनाथ का प्रारम्भिक जीवन बड़ा ही सात्विक था, उन्होंने अपने बाल्यकाल में संसार को अपने घर की खिड़की में से ही देखा था। उस छोटी सी खिड़की से ही उन्होंने संसार के उस सौन्दर्य को देख लिया था जिसे बहुत कम लोग देख पाते हैं। ऐसी दृष्टि ही किसी किसी को प्राप्त होती है। उन्हें ऐसी दृष्टि प्राप्त थी जिससे उन्होंने संसार के सम्पूर्ण सौन्दर्य को केवल देखा ही नहीं उसे अपने शब्दों से बांध कर अमर बना दिया। कवि का सान्ध्य संगीत और प्रभात संगीत उसी दिव्य सौन्दर्य की अनुभूति के पश्चात् लिखा गया काव्य है।

## कथानक

'भास्करोदयम्' नाटक का कथानक इस प्रकार है – सबसे प्रथम प्रस्तावना में सूत्रधार बताता है कि रवीन्द्रनाथ के जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में डा0 यतीन्द्र विमल चौधुरी कृत 'भास्करोदयम्' नामक संस्कृत महानाटक प्रस्तुत करने की आज्ञा मिली है। किन्तु नाटक में संस्कृत भाषा का प्रयोग होने के कारण नटी उसकी सफलता के बारे में भयभीत होती है किन्तु सूत्रधार उसे समझाता है कि विश्वकवि स्वयं संस्कृत के बहुत प्रेमी थे और यदि संस्कृत का थोड़ा बहुत अनुशीलन किया जाय तो यह भाषा कठिन नहीं लगती। इसके पश्चात् प्रथम अंक में महर्षि देवेन्द्रनाथ को बुलाने अंग्रेज़ अर्थादायक आता है। कोषाध्यक्ष जानता है कि वह देवेन्द्रनाथ से रुपये मांगने आया है। वह देवेन्द्रनाथ को सतर्क कर देता है कि वह अन्दर ही रहे और वह बाहर से ही उनको बिदा कर देगा और वह कह देगा कि महर्षि घर में नहीं हैं किन्तु महर्षि इसे कपटपूर्ण व्यवहार समझते हैं और इसका समर्थन नहीं करते। अर्थादायक जाकर जब देवेन्द्रनाथ के बारे में पूछते हैं तो वे स्वयं उनके सामने आ जाते हैं। अर्थादायक रूपया मांगते हैं, रुपये के अभाव में देवेन्द्रनाथ को अपने साथ जाने के लिए कहते हैं किन्तु देवेन्द्रनाथ जी थोड़ी देर रुकने के लिए अन्दर जाना चाहते हैं, अर्थादायक उन्हें अन्दर जाने की स्वीकृति भी नहीं देते और देवेन्द्रनाथ जी बाहर से ही उसके साथ चले जाते हैं। नाटक के इस प्रथम अंक से लेखक मानो यह बता देना चाहता है कि जिस कवि के पिता इतने सत्यपरायण और सरल व्यक्ति को कभी भी व्यवहार कुशल नहीं समझ सकता, उसकी दृष्टि में वह भूखे हैं। द्वितीय अंक में देवेन्द्रनाथ के चाचा प्रसन्नकुमार अपने भतीजे से प्रेम तो बहुत करते हैं किन्तु उनकी व्यवहार कुशलता के प्रति उन्हें सदैव संशय बना रहता है। वे उसे समझाते हैं कि संसार में झूठ और सच दोनों के मिश्रण से लोकयात्रा चलती है। देवेन्द्रनाथ नम्रतापूर्वक इतना तो कह देते हैं कि मैं अपने पूज्य चाचाजी से वाद विवाद नहीं करूंगा किन्तु साथ ही दृढ़ता से इतना भी कह देते हैं कि मैं अपना व्यवहार नहीं बदल सकता। छल-कपट से कोई कार्य नहीं करूंगा। अपने चाचा प्रसन्नकुमार से वार्तालाप करते हुए देवेन्द्रनाथ द्वारा प्रकाशित तत्वबोधिनी पत्रिका का प्रसंग चलता है जिसमें प्रसन्नकुमार बताते हैं कि उनकी पत्रिका उन्हें बहुत रोचक लगी है। अन्त में देवेन्द्र उन्हें अपना दृढ़ मत बता देते हैं–

सत्यमेवानुसरणीयं केवलमवलम्बनं नान्यदिति। प्रसन्नकुमार उनकी सत्य के प्रति निष्ठा देख कर बहुत प्रसन्न होते हैं।

तृतीय अंक में बालक रवीन्द्र अपने नौकरों से घिरे हुए प्रतीत होते हैं। मां से दूर रह कर घर के मृत्य

जो कह दें, सरल हृदय बाल उसे उसी रूप में सत्य मान कर उस पर आचरण करता है। रवीन्द्र भी उसी प्रकार अपने नौकरों की अक्षरशः आज्ञा-पालन करता है। रवीन्द्र अपने परिवार का अत्यन्त स्नेही नौकर है वह बालक रवीन्द्रनाथ को वृत्त के अन्दर ही रहने की आज्ञा देता है जिसे रवीन्द्र नाथ बड़ी अनिच्छा से मानता है। जब श्याम उसे बताता है कि वृत्त के अन्दर रहने से उसे कोई विपत्ति नहीं आयगी तब वह उसकी बात सहर्ष मान लेता है। किन्तु कमरे के अन्दर ही रहने पर भी श्याम उसकी सौन्दर्य को ग्रहण करने वाली तीव्र दृष्टि का अवरोध नहीं कर सकता। अन्दर ही बैठे-बैठे बालक रवीन्द्र वटवृक्ष का सौन्दर्य देखता है और उसके हृदय में कविता का संचार होता है।

चतुर्थ अंक में प्रहसन के रूप में डगरू झमरू तथा उनकी स्त्रियां चाभरी भामरी के परस्पर वार्तालाप से यह द्योतित कर दिया जाता है कि ठाकुर परिवार की स्त्रियां पाश्चात्य सभ्यता से बहुत प्रभावित हैं। वे घोड़े पर चढ़ती है और बालरूम नृत्य करती है। डगरू झमरू के इस कथन से उनकी स्त्रियां बहुत क्रोधित होती हैं और उनके द्वारा कथित बातों का दूसरा अर्थ ग्रहण कर उन्हें बहुत कोसती हैं। किन्तु इस प्रहसन का वास्तविक उद्येश्य हंसाना नहीं वरन इस तथ्य को प्रकाश में लाना है कि ठाकुर परिवार में स्त्रियों को स्वतन्त्रता देने का प्रयास कितने पहले ही किया गया था।

पंचम अंक में रवीन्द्र की माता अपने सभी पुत्र और पुत्रियों के लिए भगवान् से कामना करती है। अपने छोटे पुत्र रवीन्द्र से उसे अत्यधिक स्नेह है, उसकी विद्वता से वह अत्यन्त प्रभावित है और उसे संस्कृत में रामायण पढ़ कर सुनाने के लिए कहती है। रवीन्द्र अपनी माता की इच्छा सहर्ष पूरी करते हैं लेकिन लज्जाशील होने के नाते बड़े भाई के समक्ष गाने में उन्हें लज्जा आती है। किन्तु अपनी बहन स्वर्णकुमारी के प्रोत्साहन से वह बड़े भाई के समक्ष पाठ करते हैं। ज्येष्ठ भ्राता को उनके मुख से संस्कृत भाषा का उच्चारण सुन बड़ी प्रसन्नता होती है।

छठे अंक में यह दिखाया गया है कि सामाजिक धरातल पर ठाकुर परिवार संस्कृत का और भारतीय संस्कृति का कितना आदर करता था तथा उसकी उन्नति में उसका कितना हाथ था। चैत्रमेला नामक संस्था को संस्थापित करने का श्रेय भी ठाकुर परिवार को था। शारीरिक शक्तिवर्द्धन के अतिरिक्त मानसिक उन्नति भी इस संस्था का महान् उद्येश्य था।

सप्तम अंक में रवीन्द्र की साहित्य साधना की प्रगति का उल्लेख है। कविवर रवीन्द्र को स्कूल का बन्धन स्वीकृत नहीं था, उनकी बौद्धिक स्वतन्त्रता वृत्ति और कवि दृष्टि को स्कूल का सीमित जीवन उपयुक्त भी नहीं था। उन्होंने जो कुछ सीखा इस विश्व के विशाल विद्यालय में सीखा और वहां से सम्पूर्ण सृष्टि प्रक्रिया की अद्‌भुत शिक्षा ग्रहण की। रवीन्द्र परिवार स्वयं में एक अच्छा-खासा स्कूल था। रवीन्द्र कवि के सभी भाई-बहिन इतने योग्य और संस्कृति सम्पन्न थे कि बालक रवीन्द्र का कोमल हृदय वहां से अपने आप शिक्षा ग्रहण करता जाता था। उनके घर में शास्त्र चर्चा और संगीत चर्चा की ध्वनि गूंजती रहती थी। 'भारती' पत्रिका भी भारत को ठाकुर परिवार की ही देन थी। अत्यन्त अभाव से ग्रस्त होने पर भी, कार्याधिक्य होने पर भी, ठाकुर परिवार ने 'भारती' पत्रिका के साथ पूर्ण न्याय किया। किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि ठाकुर परिवार शास्त्रों की गम्भीरता में इतना डूब गया था कि जीवन के सरल हास्य और व्यंग्य से दूर हो गया था। अपनी बड़ी भाभी कादम्बरी के साथ रवीन्द्र नाथ का हास परिहास और मीठा व्यंग्य चलता रहता था। अष्ठम अंक में ऐसे ही सरल हास्य की झांकी दिखाई गई है। रवीन्द्रनाथ के यहां कवि बिहारी चक्रवर्ती भोजन करने के लिए आते हैं। उनके आने से पहले और सामने भी देवर भाभी का मीठा-मीठा वाग्युद्ध होता है। कादम्बरी रवीन्द्र को कवि नहीं वरन कवि जैसा आचरण करने के कारण उपहास करती है, और कहती है कि भला कवि बिहारीलाल की कमी भी बराबरी कर सकता है। किन्तु जब बिहारीलाल भी आशीर्वाद देते हैं तो यह मुझसे भी बड़ा कवि बनेगा तब कादम्बरी अपने वास्तविक रूप में आ कर कहती है कि मेरा तो इस पर अत्यन्त स्नेह है और मेरी यह हार्दिक इच्छा है कि यह बहुत बड़ा कवि बने।

नवम अंक में श्री रवीन्द्र लन्दन में स्काट महोदय के परिवार में रहते हुए प्रदर्शित किये गये हैं। बिल्कुल घर जैसा वातावरण है, हास-परिहास भी चलता है। इंग्लैण्ड में रवीन्द्रनाथ के अभिभावक तारकनाथ पालित महोदय का भी स्काट परिवार के साथ मधुर सम्बन्ध है। स्काट महाराज का परिवार भारतीय संगीत का बहुत प्रेमी है और बंगला भाषा सीखने के लिए उत्सुक है। रवीन्द्र स्काट कन्था को बंगाली भाषा सिखाते हैं और उसके फलस्वरूप उससे आंग्ल संगीत सीखते हैं। यदा-कदा स्वरचित पद्य से उसका मनोरंजन करते हैं। रवीन्द्रनाथ स्वयं आंग्ल देश के सभी आचार-व्यवहार सीखने के उत्सुक हैं। उन्होंने वहां पाश्चात्य नृत्य और संगीत की शिक्षा भी ग्रहण की।

दशम अंक में रवीन्द्रनाथ के जीवन का उस समय का दृश्य है, जब वे 'सान्ध्य-संगीत' की रचना कर चुके थे। इंग्लैण्ड से लौट कर आये हुए और साज-सज्जा से प्रेम करने वाले रवीन्द्र ने जब स्वरचित संगीत-नाटक में

वाल्मीकि की भूमिका भी तो सभी परिवार वाले मुग्ध हो गये। नाटक के अभिनय के द्रष्टा श्री बंकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय, श्री गुरुदास वन्द्योपाध्याय आदि विद्वान् जन भी थे। एकादश अंक में रमेशचन्द्र की पुत्री के विवाह के अवसर पर जब रवीन्द्रनाथ और बंकिमचन्द्र परस्पर मिलते हैं तब रवीन्द्र के 'सान्ध्य-संगीत' से प्रभावित हो कर बंकिमचन्द्र उनके कण्ठ में माला अर्पित कर देते हैं और आशीर्वाद देते हैं। इस अंक में लेखक ने यह प्रदर्शित किया है कि तब तक कवि बहुत प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे। श्री बंकिम चन्द्र जी रवीन्द्रनाथ की साहित्य साधना से अत्यन्त प्रभावित थे। उनकी कविता सुन कर उन्होंने अपनी कण्ठमाला रवीन्द्रनाथ के गले में अर्पित कर दी थी और आशीर्वाद दिया था कि भारत जननी के मुखमण्डल को सुधा-स्मित से मण्डित करने के अधिकारी वही होंगे।

किसी भी महान् कवि को जब अन्तःप्रेरणा की प्राप्ति होती है तभी साहित्य सर्जन होता है। महाकवि रवीन्द्रनाथ के हृदय में अनन्त आनन्द का सागर हिलोरें मारता है। उन्हें लगता है कि उन्हें अपूर्व आनन्द की प्राप्ति हो गई है और तभी उनके हृदय से उच्चतम भावों से सराबोर कविता का प्रादुर्भाव होता है। अल्पायु में ही उनका कविता की प्रसिद्धि दूर-दूर तक फेल गई थी। महर्षि देवेन्द्रनाथ को देख कर ही एक अर्धविक्षिप्त व्रजेन्द्र सुन्दर नामक पुरुष कह देता है कि वे कवि रवीन्द्रनाथ के पिता हैं। उसकी अपने आप की क्षुद्र कहने की बात का महर्षि देवेन्द्रनाथ विरोध करते हैं और कहते हैं कि सभी व्यक्ति महान् हैं। व्रजेन्द्रसुन्दर के प्रार्थना करने पर देवेन्द्रनाथ रवीन्द्रनाथ को उस व्यक्ति के समक्ष प्रस्तुत करते हैं।

त्रयोदश अंक में रवीन्द्रनाथ कृत काव्य की चर्चा है। 'प्रकृतिर प्रतिशोध' नामक एक लम्बी कविता की रचना कवि का एक नवीन प्रयास था। यह पहली रचनाओं की तरह संगीत-नाटक नहीं था। चतुर्दश अंक में ठाकुर परिवार का एक और महत्वपूर्ण प्रयास वर्णित है। 'बालक' नाम की पत्रिका का वह परिवार संचालन प्रारम्भ करता है और उसकी संपादिका बनती हैं ज्ञाननन्दिनी जो महर्षि देवेन्द्र नाथ के द्वितीय पुत्र की पत्नी हैं। इन्होंने रवीन्द्रनाथ को साहित्य साधना में बहुत प्रोत्साहन दिया।

पञ्चदश अंक में रवीन्द्रनाथ के पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ अपने पुत्र से स्वयं संगीत सुनते हैं। माधोत्सव के समय कवि रवीन्द्र स्वरचित कविता सुनाते हैं और पुरस्कार स्वरूप पिता उन्हें पांच सौ रुपये देते हैं। उन्हें मालूम है कि भारत की दशा उस समय ऐसी थी कि राज्य से कवियों को किसी प्रकार की सहायता नहीं मिलती थी। इस

तथ्य से महर्षि देवेन्द्रनाथ अच्छी तरह पचिचित थे।

जीवन की इन्हीं विभिन्न घटनाओं से सम्बन्धित प्रस्तुत नाटक 'भास्करोदयम्' का कथानक समाप्त होता है।

## चरित्र चित्रण

जैसा कि नाटक के कथानक से ही मालूम हो जाता है इसमें एक ही व्यक्ति के जीवन चरित्र का वर्णन है। इसलिए केवल उसी का चरित्र सबसे अधिक महत्वपूर्ण है, अन्य जितने भी चरित्र नाटक में आये हैं, वे सभी मानो उस महान् चरित्र को उभारने में सहायक मात्र होते हैं। उनका अपना स्वतन्त्र अस्तित्व कम अथवा नहीं के बराबर ही होता है। नौकर श्याम का अस्तित्व इसलिए है कि जिससे यह मालूम हो सके कि अपने बाल्यकाल में भी रवीन्द्रनाथ कितने विनीत और आज्ञाकारी थे। नौकर की आज्ञा का उलंघन करना भी वे उचित नहीं समझते थे। भ्रातृजाया कादम्बरी किशोर कवि रवीन्द्र की साहित्य साधना में प्रोत्साहन देने का साधन मात्र है। लन्दन स्थित स्काट परिवार रवीन्द्र की उस विश्व मैत्री की भावना को दृढ़ करते हैं जिससे अनुप्राणित हो उन्होंने अपने काव्य में सम्पूर्ण संसार को एक परिवार सदृश माना है। सुदूर देश निवासी के साथ भी जिसका अपने निजी परिवार जैसा सम्बन्ध हो सका उसी की वाणी में विश्वप्रेम की इतनी विशाल धारा निसृत हो सकती थी। किन्तु फिर भी विद्वान् नाटककार ने कथानक को इस प्रकार गुम्फित किया है, कथोपकथन को इतना सरस बनाया है तथा घटनाओं को इस प्रकार क्रमबद्ध किया है कि नाटक के सभी पात्र अपना-अपना कार्य सुचारु रूप से करते हुए स्वयं ही रंगमंच से हट जाते हैं किन्तु न तो उनका आना अखरता है और न ही उनके जाने पर एकाएक रस का व्याधात होता है।

कवि रवीन्द्र का चरित्र विश्वविदित होने के कारण लेखक के लिए विशेष गुणों का प्रकटीकरण अपेक्षित नहीं था, फिर भी इस नाटक में कवि रवीन्द्र अत्यन्त महान् कवि किन्तु साथ ही साथ अत्यन्त विनीत हऔर अंतर्मुखी प्रवृत्ति वाले प्रदर्शित किये गये हैं। बचपन में ही उनके हृदय में ऐसे प्रश्न उठने लगे थे जिनका उत्तर देना साधारण व्यक्ति के लिए कठिन है।

रवीन्द्र का यह प्रश्न– भगिनि। कुतो यामि, गमिष्यामि वा?[1]

इसका उत्तर साधारण बुद्धि वाला व्यक्ति भला कैसे दे सकता है?

रवीन्द्र नाथ के हृदय में अपने से बड़ों के लिए अत्यन्त श्रद्धा का भाव था। अपने बड़े भाई के समक्ष

---

1 तृ० अं०, पृ० 17।

संस्कृत पाठ करने में भी उन्हें संकोच होता था।

रवीन्द्रनाथः— (स्वगतम्) अहो सर्वनाशः समुमपनतः। ज्येष्ठाग्रजस्य पुरतः संस्कृतरामायणपाठः? (प्रकाशम्) नहि मात :, ज्येष्ठाग्रजस्य पण्डित्यम्। हृदयं मे वैपतै।[2]

'(स्वागत) ओह सर्वनाश हो गया। बड़े भाई के आगे संस्कृत रामायण का पाठ? (प्रकाश) नहीं, माता, बड़े भाई के सामने संस्कृत पाठ करने में मुझे भय लगता है। बड़े भाई का पाण्डित्य बहुत अधिक है। मेरा हृदय कांपता है।'

अपनी बड़ी भ्रातृजाया के साथ रवीन्द्रनाथ का वाग्युद्ध चलता रहता था, किन्तु वह युद्ध सरस और परिणाम में सुखद ही होता था। बाहर से एक दूसरे के प्रति व्यंग्य बाणों का प्रयोग करने पर भी उनका अन्तस्तल शुद्ध और एक-दूसरे के प्रति स्नेह से सना होता था। इसीलिए बिहारीलाल कादम्बरी की प्रशंसा करते हुए रवीन्द्रनाथ से कहते हैं—

बिहारीलालः— प्रियो मम। मा पुनः कलहे प्रवर्तिषाथाम्। रवीन्द्र! मस्तिष्कैण हीनस्त्वं स्या यदि ईदृश्याः प्रजावतिदैवयाः स्नेहस्याभिनन्दनोच्छलच्चितवृत्तैः परमार्धिकं स्वरूपं न जानीषे।[3]

'मेरे प्यारे (बच्चो)! पुनः लड़ाई झगड़ा न करो। रवीन्द्र निश्चय ही तुममें कम बुद्धि है। यदि तुम इस प्रकार की अपनी भाभी के स्नेह से सनी हुई वृत्ति का वास्तविक स्वरूप नहीं समझते।'

योरुप में जा कर रवीन्द्र चरित्र की सरलता और सभी देशों से गुण ग्रहण करने की वृत्ति को अधिक उभार मिला है। उन्होंने विदेशी संगीत और नृत्य सीखा, हालांकि उन्हें यह भय सदैव बना रहा कि उनसे बड़े लोगों को उनका विदेशी संगीत और नृत्य सीखना उचित लगेगा अथवा नहीं, इसीलिए रवीन्द्रनाथ तारकनाथ पालित के पूछने पर यही कहते हैं—

इन्द्ररोपीय-संगीतसाधनायाञ्वास्म्यमिनिविष्टः। तथा नृत्यैऽपि। न जाने एतत् एवं भवतां रुचिकरं न वा।

'योरोपीय संगीत सीखने का प्रयत्न कर रहा हूं, योरोपीय नृत्य भी, जानता नहीं कि यह सब आपको अच्छा लगता है या नहीं।'

सम्पूर्ण विश्व रवीन्द्र के लिए विद्यालय था और प्रत्येक देश एक विशिष्ट कक्षा इसलिए उन्होंने सब देशों से कुछ न कुछ सीखा। योरुप देश में आकर वे वहां का सब कुछ सीख लेना चाहते थे—

---

2 पं० अं०, पृ० 31।

3 अष्टम् अं०, पृ० 51

उरोपीयेम्यौ यद्वच्छिक्षणीयं तत् सर्वमधिकर्तुमहं यते। एतेभ्यो बाहुल्येन विद्यतेऽस्माकं शिक्षिणीयम्।

'योरुप वालों से जो कुछ सीखने योग्य है वह सब सीखने का प्रयत्न करूंगा, इनसे हमें बहुत कुछ सीखना है।'

उनके चित्त में देश विदेश का भेद-भाव बिल्कुल नहीं था। इसीलिए वह सब देशों से कुछ न कुछ सीख ही लेते थे।

अल्पायु में ही रवीन्द्रनाथ की कविता में आभास मिलने लग गया था कि ये राष्ट्र के बहुत बड़े कवि बनेंगे, इसीलिए अन्तर्दृष्टि से युक्त कवि बंकिमचन्द्र जी रवीन्द्रनाथ से कहते हैं–

तरुणकवै। वयं सर्वान्तःकरणेन प्रार्थयामेह– आत्मनामानुकारं सर्वथा कर्मकारी भव, वंग जनन्यास्तथा भारतजनन्या वदनमण्डलं सुधास्मितविमण्डितं कुर्विति।

'किशोरकवि, हम सभी अन्तस्तल से प्रार्थना करते हैं कि अपने नाम के अनुसार ही तुम्हारा काम हो, बंग मां और भारत मां का मुख अमृत जैसी मुस्कुराहट से सुशोभित कर दो।

इस प्रकार सभ्झी को अपनी वाग्सुधा से रवीन्द्रनाथ ने मोहित किया और ऐसी काव्यामृत की धारा बहाई जिसे पीढ़ियों तक भारत वासी पीते रहेंगे।

## भाषा

श्री यतीन्द्रनविमल चौधुरी केवल नाटक की कथावस्तु के चयन में अथवा चरित्र के सूक्ष्म गुणों के अंकन में ही सिद्ध हस्त नहीं, वरन् अपनी भाषा के प्रयोग से वे विषय को ऐसा रूप दे देते हैं जिससे पाठक मन्त्रमुग्ध हुए बिना नहीं रहते।

संस्कृत भाषा के प्रति नाटककार के उद्गार कितने प्रभावोत्पादक हैं– नटी को जब सूत्रधार से यह ज्ञात होता है कि नाटक संस्कृत भाषा में होगा तो वह संस्कृत भाषा की कठिनता को देख कर कुछ भयभीत सी होती है किन्तु तभी नाटककार सूत्रधार के मुख से संस्कृत भाषा की सर्वांगीणता के विषय में निम्नलिखित शब्द कह कर उसका सम्पूर्ण भय दूर कर देता है–

'नहि, नहि, देयि। अनुशीलनपराणाम् एषा भाषा नैव कठिना प्रतिभाति। विशेषतस्तु भारतीयसभ्यतायाः शाश्वतधारिका पोषिका चैयं देव भाषा ऋषिकवैः श्रीरवीन्द्रनाथस्य प्राणस्वरूपा। रवीन्द्रनाथः स्वयमेव प्राह, बाल्यै

वयसि कदाचिद् गायत्रीमन्त्रं श्रुत्वैवाकारणम् अजस्रं तस्याश्रुधारा धरणीतलं सिक्तं मकरोत्।

'नहीं, नहीं देवी। अभ्यास करने पर यह भाषा कठिन नहीं लगती। विशेषकर भारतीय सभ्यता की शाश्वत धारा की पोषण करने वाली यह देव भाषा ऋषि कवि रवीन्द्रनाथ की मानों प्राण स्वरूप थी। रवीन्द्रनाथ स्वयं ही कहा करते थे कि एक बार गायत्री मन्त्र सुनने पर अनायास ही उनकी अश्रुधारा बहने लगी और उन अश्रुओं से धरती सिक्त हो गई।'

लेखक स्वयं अपनी बात की दृढ़ता को प्रमाणित करते हुए स्वयं कवि रवीन्द्रनाथ के शब्दों को जो उन्होंने शान्ति निकेतन में कहे थे उद्धृत करता है।

जीवनस्यान्तिमे भागे विश्वगुरुर्विश्वकविरसौ शान्तिनिकेतन एकदा पुनः प्राह– भारतवर्षस्य शाश्वतचितस्याश्रयः संस्कृत भाषा। अस्या भाषायास्तीर्थपथेन वयं देशस्य चिन्मय प्रकृतैः स्वर्श प्राप्नुमः, तं स्पर्शम् अन्तरेण गृहीमः।[4]

'जीवन के अन्तिम भाग में विश्वगुरु और विश्व कवि (रवीन्द्रं) ने शान्ति निकेतन में एक बार कहा था– संस्कृत भाषा भारतवर्ष का चिरन्तन चित का आश्रय है। इस भाष के पवित्र रास्ते से हम देश की चिन्मय प्रकृति का स्पर्श प्राप्त करते हैं, उस स्पर्श को अन्तर से ग्रहण करते हैं।'

इसी उद्धरण से सिद्ध होता है कि नाटककार और नाटक के नायक दोनों ही संस्कृत के अनन्य प्रेमी हैं।

नाटककार स्वयं भाग्य की अटलता में विश्वास करता है, देवेन्द्रनाथ के निम्न शब्द मानो स्वयं लेखक के अपने शब्द हैं–

इशेन प्रेरितो जन्तुस्तदिच्छामनुवर्तते।

स्वेच्छयाा नहि शक्रोति तृणमप्येष कर्तितुम्।[5]

'ईश्वर की प्रेरणा से ही जीव वैसी ही इच्छा करने लगता है। अपने आप तो वह एक तिनका भी नहीं तोड़ सकता।'

किन्तु यदि इस संसार में रहना है तो मनुष्य को गृहस्थ होना ही चाहिये, उसका चित्त यदि गृहासक्त होगा तभी वह संसार के कार्य अच्छी प्रकार कर सकेगा। अन्यथा उसे वन में ही चले जाना चाहिए।

स्थातव्यं यदि संसारे गृहासक्तं मनः कुरु।

---

4 (प्रस्तावना, पृ0 3)

5 प्र0 अं0, पृ0 6, श्लो0 8।

अनासक्तमनस्कस्य विततता वनपद्धतिः ।[6]

'यदि संसार में रहना है तो मन को गृह में आसक्त करो, जिसका मन घर में आसक्त नहीं है उसे तो वन का ही आश्रय लेना चाहिए ।'

इसी को दूसरे रूप में बताते हुए वे कहते हैं–

संसार मार्गे चरणशीलस्य निरन्तरसत्यभाषणेन विपत् संभाव्यते खलु ।[7]

'संसार मार्ग में चलने वाला यदि सदैव सत्य भाषण करे तो उस पर विपत्ति आने का भय रहता है ।'

इस छोटे से वाक्य में भाषा सौष्ठव के साथ ही साथ जीवन के सत्य का निचोड़ भी है ।

इन श्लोकों और छोटे छोटे सुन्दर वाक्यों के अतिरिक्त कुछ ऐसे मुहावरे जो हिन्दी, अंग्रेज़ी और बंगला में प्रयुक्त होते हैं उनका बड़ा सुन्दर प्रयोग किया है । उन मुहावरों का संस्कृत रूपान्तर इतना स्वाभाविक है कि वे अनुवाद लगते ही नहीं ।

शुभावहं भगवद्विधानमिति सर्वदा मन्तव्यम् ।[8]

'भगवान् जो कुछ करता है अच्छा ही करता है, सदैव इस बात में विश्वास करना चाहिए ।'

- सर्वे वयं तुल्यतरण्या आरोहिणो ध्रुवम् ।[9]

'हम एक ही नाव पर चढ़े हुए हैं ।'

- तव वदनारविन्दं पुष्पचन्दनविभूषितं जायताम् ।[10]

'(तुम्हारे मुंह में घी शक्कर) शाब्दिक अनुवाद– तुम्हारा मुख चन्दन और पुष्पों से सुशोभित हो ।'

नाटक के कवि रवीन्द्र तो प्रत्येक बात काव्यमयी भाषा में करते ही हैं । नाटक का प्रत्येक पात्र भी बहुत स्थलों पर काव्यमय भाषा का ही प्रयोग करता है । रमणीय सन्ध्या का वर्णन करते हुए स्वर्णकुमारी कितनी सुन्दर उपमा देती है–

कीदृश्यपूर्वा सन्ध्या । काचित् पूजारता नारीव दृश्यते ।[11]

सांझ की उपमा एक पूजा में लीन नारी से दी है । किन्तु उपमा यहीं समाप्त नहीं हो जाती, अगले श्लोक में

---

6 द्वि० अं०, श्लो० 12, पृ० 8 ।
7 द्वि० अं०, पृ० 11 ।
8 पं० अं०, पृ० 30
9 नवम् अं०, पृ० 58 ।
10 पञ्चदश अं०, पृ० 94
11 पृ० 32 ।

उसने एक रूपक का रूप धारण कर लिया है–

प्रीतिस्तेऽतुलना समक्तिसुषमा सन्ध्ये नमः शोमने

कं वा पूज्यसे क्षणे शुभतमे ध्यानस्थिता निर्जने।

मेघश्चन्द्रनलेपनं सुविशदा पुष्पावली कौमुदी

धूपः स्निग्ध समीरणो ऽतिसुरभिर्तन्त्रश्च झिल्लीरवः।।[12]

'अरी आकाश को सुशोभित करने वाली सन्ध्या, भक्ति मिश्रित तेरी प्रीति अद्वितीय है। तू निर्जन स्थान में इस शुभ तम क्षण में ध्यानमग्न हो कर किस की पूजा कर रही है। (तेरे पास पूजा के सब साधन हैं) मेघ चन्दन का लेप है, चांदनी खिली हुई पुष्पमाला है। अति सुगन्धित मन्द समीर धूप है और झिल्लियों की ध्वनि मन्त्र हैं।'

कहीं कहीं पर लेखक ने हास्य रस के भी सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। कवि बिहारीलाल रवीन्द्रनाथ के यहां भोजन करने आते हैं किन्तु कादम्बरी भाभी के साथ रवीन्द्रनाथ का मीठा-मीठा झगड़ा होने लगा, और सरस व्यंग्य वाण छूटने लगे। समय का ध्यान ही नहीं रहा किन्तु अन्तर की भूख की ज्वाला तो अपना अस्तित्व जताये बिना नहीं रहती। इसीलिए बिहारीलाल जी कहते हैं–

उदरे दहनस्तीव्रो बहिस्तोव्रो दिवाकरः।

मन्ये ऽधुना बहिः शत्रोरन्तः शत्रुर्मयोत्तरः।।[13]

'उदर में (पेट में) तीव्र जलन हो रही है और बाहर सूर्य का ताप है किन्तु अब लगता है बाहर के शत्रु से अन्दर का शत्रु अधिक भयानक हो गया है, अर्थात् बाहर के शत्रु से अधिक भय अन्दर के शत्रु से है।'

इन शब्दों से बिहारीलाल ने अपनी भूख की तीव्रता प्रकट कर दी किन्तु शब्दों के चुनाव से पाठक को हंसी आये बिना नहीं रहती।

इसी प्रकार– 'वानर औरसे जन्म राक्षसी उदरे'– इस वाक्य का सरल भाषा में अर्थ होगा कि इंग्लैण्ड देश के निवासी वानर और राक्षस हैं किन्तु उनका संस्कृत भाषा में धातुओं के प्रयोग से बिल्कुल दूसरा ही रूप दे देना हास्य का एक सुन्दर उदाहरण है–

'वा नरः विशेषो नरः महापुरुषः इत्यर्थः। राक्षसी रक्षति या सा इति रक्ष धातुना असुन् प्रत्यययोगेन रक्षः,

---

12 पञ्चम अं0, पृ0 33।

13 नवम अं0, पृ0 54।

ततः स्वार्थे अण्; स्त्रियां राक्षसी।'

'इस व्यत्पत्ति से वाक्य का अर्थ बिल्कुल बदल जाता है, और उसी के साथ हास्य की उद्भावना भी होती है।

कवि रवीन्द्र का जीवन स्वयं एक इतिहास तो है ही साथ ही साथ उस समय की अन्य विषमताओं और ऐतिहासिक तथ्यों का विवरण भी है। कवि अपनी उन्नति का प्रयास स्वयं ही करें और अर्थ की दृष्टि से भी स्वावलम्बी हो तभी उसे संसार से यश मिल सकता था। सरकार की ओर से किसी प्रकार की कोई सहायता उन दिनों प्राप्त नहीं थी। इसी तथ्य की और दृष्टिपात करते हुए कवि रवीन्द्र के पिता कहते हैं—

'अद्यतनः शासनकर्तृपक्षो ऽस्मद्येशीयां भाषां न जानाति, साहित्यञ्च न बहु मन्थते। अत एक राजपक्षतः किमपि नास्माभिराशास्यम्। तेन च मयैव तत् कृत्यं सम्पादनीयम्। मयानन्दपरिचायकं तव चौत्साहहेतुकं पञ्चशतमुद्रामितमर्थपत्रं तुभ्यं ददामि।'

इससे सिद्ध होता है कि राष्ट्र का बड़ा से बड़ा कवि भी उन दिनों राज्य से किसी प्रकार की सहायता प्राप्त नहीं कर सकता था।

ततः स्वार्थे अण्; स्त्रियां राक्षसी।'

'इस व्यत्पत्ति से वाक्य का अर्थ बिल्कुल बदल जाता है, और उसी के साथ हास्य की उद्भावना भी होती है।

कवि रवीन्द्र का जीवन स्वयं एक इतिहास तो है ही साथ ही साथ उस समय की अन्य विषमताओं और ऐतिहासिक तथ्यों का विवरण भी है। कवि अपनी उन्नति का प्रयास स्वयं ही करें और अर्थ की दृष्टि से भी स्वावलम्बी हो तभी उसे संसार से यश मिल सकता था। सरकार की ओर से किसी प्रकार की कोई सहायता उन दिनों प्राप्त नहीं थी। इसी तथ्य की और दृष्टिपात करते हुए कवि रवीन्द्र के पिता कहते हैं–

'अद्यतनः शासनकर्तृपक्षो ऽस्मद्येशीयां भाषां न जानाति, साहित्यञ्च न बहु मन्थते। अत एक राजपक्षतः किमपि नास्माभिराशास्यम्। तेन च मयैव तत् कृत्यं सम्पादनीयम्। मयानन्दपरिचायकं तव चौत्साहहेतुकं पञ्चशतमुद्रामितमर्थपत्रं तुभ्यं ददामि।'

इससे सिद्ध होता है कि राष्ट्र का बड़ा से बड़ा कवि भी उन दिनों राज्य से किसी प्रकार की सहायता प्राप्त नहीं कर सकता था।

# 'शृंगारनारदीयम्' प्रहसन'

पौराणिक कथा के आधार पर श्री वाई0 महालिंगशास्त्री द्वारा रचित 'शृंगारनारदीयम्' प्रहसन नारद के लिंग परिवर्तन जैसी रोचक घटना से सम्बन्धित है। देवी भागवत में नारद की कथा वर्णित है। नारायण का अनन्य भक्त वैवाहिक जीवन व्यतीत करता है, पहले तो पुरुष के रूप में और बाद में स्त्री के रूप में। देवीभागवत की यही कथा जिससे नारद स्त्री रूप में परिवर्तित हो जाता है। 1544 की 'अमृतवाणी' पत्रिका में दक्षिणमूर्ति द्वारा गद्य में प्रकाशित की गई थी। श्री महालिंगशास्त्री ने उसी कथा के आधार पर प्रस्तुत प्रहसन की रचना की है किन्तु उन्होंने पौराणिक कथा का पूर्ण रूपेण अनुसरण नहीं किया। नारद के अतिरिक्त एक अन्य पौराणिक रक्षरजा का लिंग परिवर्तन हुआ था, लेखक उसका उल्लेख भी अपने नाटक में करते हैं। इस प्रहसन को प्रस्तुत करने में लेखक का उद्येश्य संस्कृत साहित्य संसार को एक हास्य युक्त नवीन रचना भेंट करना ही है, वह पौराणिक खोजबीन के झंझट में नहीं पड़ना चाहता।

## कथानक—

प्रस्तावना में नान्दी के पश्चात् सूत्रधार नेपथ्य में खड़े हुए, समाचार पत्र हाथ में लिए हुए विदूषक की प्रफुल्ल मुद्रा देख कर उसे सम्बोधन करता है कि अकेले ही नहीं हंसना चाहिए, यदि कोई हंसी की बात हो तो मिल कर हंसेंगे। विदूषक स्त्रीवेश धारण किये हुए प्रवेश करता है। सूत्रधार उसे स्त्रीवेश में देख कर आश्चर्यचकित हो कर पूछता है कि वह स्त्री रूप में क्यों है। विदूषक हंस कर उत्तर देता है कि नाटक के अवसर पर स्त्रीरूप धर लेना कोई अनोखी बात नहीं, किन्तु सूत्रधार इसे परिहासयुक्त होने पर भी अनुचित कार्य समझता है इसलिए अनुमोदन नहीं करता। विदूषक उसे कहता है कि स्त्रीरूप धारण कर लेना अनुचित नहीं है। द्रुपद का पुत्र शिखण्डी भी तो स्त्री बन गया था। और अब योरुप का समाचार है कि एक जर्मन कोमलांगी पुरुष बन गई है। इसके पश्चात् वे महालिंगशास्त्री द्वारा प्रणीत 'शृंगारनारदीयम्' का अभिनय प्रस्तुत करने के प्रयत्न में संलग्न हो जाते हैं। प्रस्तावना के पश्चात् मुख्य कथानक में गन्धर्व मिथुन परस्पर रतिक्रीडा में रत दिखाई देते हैं। युवक अपनी सुन्दरी स्त्री के सौन्दर्य और यौवन की प्रशंसा करके उसे प्रसन्न करने का प्रयत्न करता है लेकिन नायिका मान किये बैठी रहती है और रूठ कर दूर चली जाती है। गन्धर्व युवक उसे ढूंढने के लिए इधर-उधर घूमता है। फिर अचानक उसे स्मरण हो आता है कि वह अपने चिरपरिचित संकेत स्थान कन्द जलाशय के किनारे वाली कन्दरा में गई होगी। वह स्वयं भी वहीं पहुंच कर रूठी हुई पत्नी को मना कर काम केलि में रत हो जाता है। दूसरी तरफ नारद आकाश से उतरते हैं

# 'शृंगारनारदीयम्' प्रहसन'

पौराणिक कथा के आधार पर श्री वाई0 महालिंगशास्त्री द्वारा रचित 'शृंगारनारदीयम्' प्रहसन नारद के लिंग परिवर्तन जैसी रोचक घटना से सम्बन्धित है। देवी भागवत में नारद की कथा वर्णित है। नारायण का अनन्य भक्त वैवाहिक जीवन व्यतीत करता है, पहले तो पुरुष के रूप में और बाद में स्त्री के रूप में। देवीभागवत की यही कथा जिससे नारद स्त्री रूप में परिवर्तित हो जाता है। 1544 की 'अमृतवाणी' पत्रिका में दक्षिणमूर्ति द्वारा गद्य में प्रकाशित की गई थी। श्री महालिंगशास्त्री ने उसी कथा के आधार पर प्रस्तुत प्रहसन की रचना की है किन्तु उन्होंने पौराणिक कथा का पूर्ण रूपेण अनुसरण नहीं किया। नारद के अतिरिक्त एक अन्य पौराणिक रक्षरजा का लिंग परिवर्तन हुआ था, लेखक उसका उल्लेख भी अपने नाटक में करते हैं। इस प्रहसन को प्रस्तुत करने में लेखक का उद्येश्य संस्कृत साहित्य संसार को एक हास्य युक्त नवीन रचना भेंट करना ही है, वह पौराणिक खोजबीन के झंझट में नहीं पड़ना चाहता।

## कथानक—

प्रस्तावना में नान्दी के पश्चात् सूत्रधार नेपथ्य में खड़े हुए, समाचार पत्र हाथ में लिए हुए विदूषक की प्रफुल्ल मुद्रा देख कर उसे सम्बोधन करता है कि अकेले ही नहीं हंसना चाहिए, यदि कोई हंसी की बात हो तो मिल कर हंसेंगे। विदूषक स्त्रीवेश धारण किये हुए प्रवेश करता है। सूत्रधार उसे स्त्रीवेश में देख कर आश्चर्यचकित हो कर पूछता है कि वह स्त्री रूप में क्यों है। विदूषक हंस कर उत्तर देता है कि नाटक के अवसर पर स्त्रीरूप धर लेना कोई अनोखी बात नहीं, किन्तु सूत्रधार इसे परिहासयुक्त होने पर भी अनुचित कार्य समझता है इसलिए अनुमोदन नहीं करता। विदूषक उसे कहता है कि स्त्रीरूप धारण कर लेना अनुचित नहीं है। द्रुपद का पुत्र शिखण्डी भी तो स्त्री बन गया था। और अब योरुप का समाचार है कि एक जर्मन कोमलांगी पुरुष बन गई है। इसके पश्चात् वे महालिंगशास्त्री द्वारा प्रणीत 'शृंगारनारदीयम्' का अभिनय प्रस्तुत करने के प्रयत्न में संलग्न हो जाते हैं। प्रस्तावना के पश्चात् मुख्य कथानक में गन्धर्व मिथुन परस्पर रतिक्रीडा में रत दिखाई देते हैं। युवक अपनी सुन्दरी स्त्री के सौन्दर्य और यौवन की प्रशंसा करके उसे प्रसन्न करने का प्रयत्न करता है लेकिन नायिका मान किये बैठी रहती है और रूठ कर दूर चली जाती है। गन्धर्व युवक उसे ढूंढने के लिए इधर-उधर घूमता है। फिर अचानक उसे स्मरण हो आता है कि वह अपने चिरपरिचित संकेत स्थान कन्द जलाशय के किनारे वाली कन्दरा में गई होगी। वह स्वयं भी वहीं पहुंच कर रूठी हुई पत्नी को मना कर काम केलि में रत हो जाता है। दूसरी तरफ नारद आकाश से उतरते हैं

और सुन्दर जलाशय देख कर वहीं पर थोड़ी देर विश्राम करने लगते हैं। किन्तु बाहर खुली जगह पर संगीत अभ्यास अभ्यास अच्छी प्रकार नहीं हो पायगा इसलिए वे उसी कन्दरा में प्रवेश करते हैं जहां पर गन्धर्व मिथुन अस्व व्यस्त वस्त्रों से बाहर निकल जाते हैं। नारद यह देख कर बहुत खिन्न होते हैं और मन में सोचते हैं कि मेरे संगीत प्रारम्भ करने और विश्राम करने के पहले ही यह अशुभ निमित्त हो गया किन्तु दूसरी तरफ वे यह भी सोचते हैं कि जिस प्रकार मेरे लिए ये अशुभ लक्षण स्वरूप प्रतीत हुए उसी प्रकार इनके लिए मैं विघ्नस्वरूप बना। कामरत दम्पती की काम लीला में जो विघ्नस्वरूप बनने का पाप लगा उसका क्षय करने के लिए नारद जलाशय में स्नान कर दोष मुक्त होना चाहते हैं। कपड़े उतार कर और वीणा किनारे पर रख कर वे जलाशय में स्नानार्थ उतरते हैं। उधर कृक्षरजा का आगमन होता है। उसे यह मालूम होता है कि जो भी कोई भी इस सरोवर में स्नान करेगा वह अवश्य स्त्री बन जायगा और उसकी पत्नी के रूप में रहेगा। कृक्षरजा, वीणा वादन द्वारा, नहाने के लिए उतने हुए नारद का रमणी के रूप में आह्वान कर अपनी काम वासना का प्रदर्शन करता है। नारद उसकी बात का विश्वास नहीं करता और उसे तिरस्कार पूर्ण भाषा में कहता है कि मैं स्त्री नहीं नारद हूं। तब कृक्षरजा उसे बताता है कि वह चाहे कोई भी हो अब तो वह स्त्री अवश्य बन जायगा क्योंकि एक बार स्वयं स्नान करने पर वह स्त्री बन चुका है। इतने में नारद स्वयं अनुभव करते हैं कि उनके अंग प्रत्यंग स्त्रियों जैसे हो चुके हैं। कृक्षरजा उसे अपनी काम वासना तृप्त करने के लिए बाहर बुलाता है किन्तु चतुर नारद उसे यह कह कर कि वह स्वयं आ कर उसे ले जाय उसे तालाब में बुला लेता है। कामवासना से जलता हुआ कृक्षरजा बिना सोचे समझे जलाशय में चला जाता है किन्तु जल में घुसते ही स्वयं स्त्री रूप को प्राप्त हो जाता है। नारद उससे कहते हैं कि अब तो स्त्री कृक्षरजा को रदना (पहले नारद) को उपभोग करने की इच्छा नहीं होती होगी। अब तो वह रदना की मदन दूती ही बन सकती है। कृक्षरजा को शीघ्रता से किये गये अपने मूर्खतापूर्ण व्यवहार से बड़ा खेद होता है और स्त्री रूप प्राप्त करके बड़ी खिन्नता होती है। स्वयं नारद अपने स्त्री रूप पर बड़े दुःखी होते हैं। किन्तु स्त्री रूप में भी वह अन्य किसी की कामना न कर भगवान् नारायण की ही कामना करती है। वीणा लेकर वह भगवान् की उपासना करती हे। अब वह नारद नहीं रूपवती रदना है। रदना का आह्वान सुन कर नारायण स्वयं उपस्थित हो जाते हैं। रदना अपनी दूरवस्था श्री नारायण के सम्मुख रखती है। नारायण उसे सान्त्वना प्रदान करते हैं कि रदना उनकी पत्नी बन के रहेगी और उनसे उसे 40 पुत्रों की प्राप्ति होगी। नारायण पुनः सान्त्वना प्रदान करते हैं कि स्त्री रूप परिवर्तित होना कोई बहुत अनोखी बात नहीं है उन्हें स्वयं दानवों को दण्डित करने के लिए मोहिनी का रूप धारण करना पड़ा था। उस समय महेश्वर उनके पति बने थे। इसके पश्चात् नारायण कृक्षरजा के बारे में पूछते हैं। रदना बताती है कि वह लज्जित सी होकर कन्दरा के अन्दर बैठी हुई है। भगवान् उसे देखने की इच्छा प्रकट करते हैं और उसे उसके पूर्ण पुरुष भाव को प्रदान करने की प्रतिज्ञा करते

हैं। रदना हंस कर कहती हैवह पुरुष भाव को प्राप्त करके तुम्हारी स्त्री का अपहरण कर लेगा। इतने में कृक्षरजा स्वयं उनके सामने उपस्थित हो जाती है। नारायण उससे कहते हैं कि उसके लिए वे स्वयं वैकुण्ठ से आये हैं अब कृक्षरजा यदि चाहे तो उसे पुंभाव झट से प्राप्त हो सकता है किन्तु कृक्षरजा अपने स्त्री रूप में ही स्थित रहना चाहती है। नारायण स्वयं रदना जैसी पत्नी पाकर अपना सौभाग्य सराहते हैं। अन्त में नारायण द्वारा भरत वाक्य का उच्चारण किया जाता है और प्रहसन की समाप्ति होती है।

## चरित्रचित्रण–

प्रहसन में नारद का चरित्र भगवान् के अनन्य भक्त के रूप में प्रदर्शित किया गया है। किन्तु होनी के आगे उनकी एक नहीं चलती। उन्हें स्त्रीरूप धारण करना ही पड़ता है। कृक्षरजा का चरित्र भी ऐसा ही है, वह वैसे तो भगवान् का अनन्य भक्त है किन्तु स्त्री के लिए निर्बलता उसके हृदय में है। स्वयं भगवान् को भी स्त्री रूप धारण करना पड़ा था और मोहिनी रूप में महेश्वर को पतिस्वरूप मान कर कुछ काल व्यतीत करना पड़ा था। सभी चरित्र पौराणिक हैं, अतः उनके चारित्रिक गुण काफी अंशों तक सर्व प्रसिद्ध हैं। नाटककार ने उनके चरित्र में अधिक गुणों का समावेश करना उचित भी नहीं समझा। एक बात अवश्य है कि सभी चरित्र भगवान् नारायण के हाथ में खिलौना मात्र हैं इसीलिए नारद 'रदना' नामक स्त्री बन कर स्वयं ही कहती है।

सुष्ठु भोः, यन्नारदत्ये समीहितं तद्रदनात्वे पुरारिभजनं पूरयिष्यते

अथवा स्त्री खलु वीणया गायन्ती शोभते इति भगवतः संकल्पस्यैदं पारतन्त्र्यम्।[1]

'बहुत ठीक भाई, नारदरूप में जो मुरारि का भजन चाहा था वह रदनारूप में पूर्ण हुआ। अथवा वीणा के साथ गाती हुई स्त्री अच्छी लगती है इसलिए भगवादिच्छा की ही यह अधीनता है।'

## भाषा और शैली

महालिंग शास्त्री, संस्कृत के अत्यन्त विद्वान्, 'किंकणीमाला' नामक कविता संग्रह के लेखक तथा अन्य कितनी ही रचनाओं के कर्ता हैं। उनकी भाषा में प्राचीनता और आधुनिकता का इतना अद्भुत सामन्जस्य है कि

---

1 पृ0 17

देखते ही बनता है। कहीं-कहीं पर किसी एक ही भाव को चित्र के रूप में प्रकट कर देने की उनमें अद्भुत क्षमता है। विदूषक के हाथ में समाचार पत्र है, नया समाचार और वह भी ऐसा सनसनीखेज़ कि उसके मुंह पर आश्चर्य के भाव अनायास आ जाते हैं। किन्तु उनका आभास सूत्रधार को कैसे लगा, इसके प्रदर्शन के लिए लेखक द्वारा चित्रित विदूषक का निम्नलिखित शब्द-चित्र जो उसके सामने था–

उत्फुल्लनयनयुग्मं विकासिगण्डं गुहुः स्रुटद्वासम्।

अन्तवेगेनिरोधादुद्धता विचेष्टते किमिदम्।[2]

'यह क्या हिल रहा है, इस के दोनों नयन फैले हुए हैं, गाल फूले हुए हैं, बार बार हंसी फूट रही हे, आन्तरिक आवेग को रोकने के कारण अंग ऊपर की ओर उठ रहे हैं।'

लेखक ने कहीं-कहीं सुन्दर आलंकारिक प्रयोग भी किये हैं। गन्धर्व युवा मदन सन्तप्त हैं, उसकी प्रिया उससे रूठी हुई है, मनाने के अतिरिक्त कोई रास्ता ही नहीं है। मदन के वाण उसे किस प्रकार और किस आलम्बन का ग्रहण कर वैध रहे हैं, यह गन्धर्व के अपने शब्दों में ही सुनिए–

अहो विचित्रा मदनस्य माया धनुर्लता त्वं श्लकोशिकज्यम्।

विधूयसे विभ्रमताऽनिलन विध्यन्ति भर्माणि तु सायकौधाः।।[3]

'आह, कामदेव की माया विचित्र है जिसमें तुम धनुष (तुम्हारी) एक ढीली सी लट प्रत्यञ्चा है। तुम तो बहते हुए पवन से उड़ाई जा रही हो पर बाणों की बौछार (मेरे) मर्मी को बांध रही है।'

प्रकृति वर्णन में तो लेखक ने अपने हृदय का सम्पूर्ण रस उडेल कर रख दिया है। जड़ प्रकृति लेखक की लेखनी का स्पर्श पा मानो सजीव बन कर आलोकित हो रही है। नारद के लिये हिमाचल की शीतल उपत्थका से अधिक रमणीय स्थल विश्राम के लिये कौन सा होता है।

---

2 पृ0 1।

3 पृ0 5, श्लोक 4।

प्रान्तोन्नमज्जरठदुर्गेषच्चतुष्क-प्रत्यग्रदर्पणदशामवलम्बमाने।

अस्मिंस्तुषारभरवैष्टित कृ शोभामालोकयन्निव विभाति हिमालयो ऽयम्।[4]

4 पृ0 7, पद्य 14।

# 'प्रेक्षणकत्रयी'

प्रो० राघव

संस्कृत साहित्य की तीन विदुषियां जिनका नाम प्राचीन संस्कृत साहित्य में बड़े आदर के साथ लिया जाता है वे हैं– विजयांका, विकटनितम्बा और अवन्तिसुन्दरी। विद्वान् लेखक ने उन नारियों के जीवन चरित्र की कतिपय महत्वपूर्ण घटनाओं को नाट्यरूप में प्रदर्शित कर इनके जीवन पर प्रकाश डाला है। तीनों प्रेक्षणक अत्यन्त सुन्दर, प्रौढ़ भाषा में रचित तथा ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। यह सभी आकाशवाणी से प्रसारित हो चुके हैं।

विजयांका– संस्कृत काव्यजगत् की एक सर्वप्रमुख कवियित्री। उसकी कोई भी पूर्ण कविता उपलब्ध नहीं होती किन्तु अलंकार ग्रन्थों में अलंकारों के उदाहरण स्वरूप को उसके कितने ही सुन्दर सुन्दर पद्य उपलब्ध हैं। वहीं से उसके व्यक्तित्व की झलक मिलती है। टीकाकार राजशेखर ने तो उसे कालिदास के समकक्ष रखा है। उसे विद्या, विज्जिका, विजयांका इन तीनों नामों से जाना जाता है। उसे राजा चन्द्रादित्य की पत्नी और पुलिकैशी द्वितीय की पुत्रवधू के रूप में समझा जाता है जिससे उसका काल सप्तमी शताब्दी ईसा पश्चात् स्थिर होता है। एक पद्य से यह भी सिद्ध होता है कि वह सांवले रंग की थी और दाक्षिणात्य थी।

कथानक–

राजा चन्द्रादित्य के प्रासाद के सरस्वती मन्दिर में राजकवि एक ग्रन्थ पढ़ने में लीन हैं। इतने में राजा चन्द्रादित्य आकर अपने गुरु को प्रणाम करता है। उसे मालूम है कि उसकी विदुषी पत्नी विजयांका सदैव सरस्वती मन्दिर में ही अध्ययन रत रहती है इसलिए उसे ढूंढ़ता हुआ वह वहां आता है। कुछ समय पश्चात् विजयांका भी वहीं आ जाती है। परस्पर साहित्यिक वार्तालाप चलता है। कई स्थानों पर विजयांका बड़ेबड़े कवियों और साहित्य शास्त्रियों के दोष निकाल देती है। इस पर सभी अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। फिर वह स्वयं अपनी रचनाओं से राजा को और राजगुरु को चमत्कृत कर देती है, प्रत्येक रचना में अत्यन्त सूक्ष्म भाव और सुन्दर पदावली होती है। तभी उसके विषय में सखी कहती है–

सरस्वती कार्णटी विजयांका जयत्यसौ।

या वैदर्मनिरां वासः कालिदासादनन्तरम् ।।[1]

'साक्षात् सरस्वती जैसी कर्णाट प्रदेश की उस विजयांका की जय हो जो कि कालिदास के बाद की वैदर्मी रीति में रचित वाक्यविन्यास की वासस्थली है।'

विजयांका दाक्षिणत्य थी और इसी कारण सांवले रंग की थी। यह स्वयं उसके अपने पद्य से भी विदित होता है—

नीलोत्पलदलश्यामां विज्जिकां मामजानता।
वृथैव दण्डिना प्रोक्तं सर्वशुक्ला सरस्वती।।[2]

'नीले कमल के समान सांवली विज्जिका को न जानते हुए दण्डी ने व्यर्थ ही कह दिया कि सरस्वती सर्वशुक्ला है।'

विकटनितम्बा—

विजया के पश्चात् विकटनितम्बा का स्थान है। विजया की ही भांति इसकी सम्पूर्ण कृति कोई भी उपलब्ध नहीं होती किन्तु अलंकार तथा सुभाषित संग्रहों में इसका नाम आता है। एक स्थान पर इसके छः श्लोक प्राप्त होते हैं। उसकी शैली की विशेषता यह है कि वह जो भी सिद्धान्त प्रतिपादित करती है उसे बड़े ही निर्भीक ढंग से प्रस्तुत करती है, प्रेम की विभिन्न स्थितियां और प्रकार के वर्णन में तो वह सिद्धहस्त है। उसकी कहीं-कहीं पर बिखरी हुई कृतियों से द्योतित होता है कि उसका गुरु गोविन्दस्वामी था जिससे उसने सम्पूर्ण विद्या प्राप्त की थी और जो उसे पिता की भांति प्रेम करता था। किन्तु जहां साहित्य उसके अत्यन्त विदुषी होने का प्रमाण प्रस्तुत करता है वहां यह दुःखद सत्य भी कि वह जहां स्वयं इतनी विदुषी थी, उसका पति अत्यन्त मूर्ख और असंस्कृतज्ञ था। कवि राजशेखर उसकी अत्यधिक प्रशंसा करता है।

कथानक—

कवियित्री विकटनितम्बा, अपनी लेखनी लिए हुए सखी सहित कमरे में बैठी है। इतने में उसका गुरु

---

1 प्रेक्षणकत्रयी —— पृ0 7।
2 प्रेक्षणकत्रयी (विजयांका) पृ0 4।

गोविन्दस्वामी आता है। गोविन्दस्वामी अपनी शिष्या की विद्वता से अत्यधिक प्रभावित है। विकटसिनतम्बा अपनी कविता को गुण दोष विवेचन के लिये गोविन्दस्वामी को सुनाती है, गोविन्दस्वामी कविता सुन कर अत्यन्त प्रसन्न होता है और कहता है कि वह व्यक्ति अत्यन्त भाग्याशाली और विद्वान् होगा जो तुम्हारे साथ विवाह सूत्र में बंधेगा। इसके उत्तर में विकटनितम्बा कहती है कि मुझे लगता है कि मेरा विवाह किसी मूर्ख के साथ होगा। इतने में उसी सखी सूचना लेकर आती है कि उसके पिता ने उसे लिए वर ढूंढ लिया है। विकटनितम्बा कहती है कि उसका विवाह काव्य पुरुष के साथ हो चुका है। अब उसे विवाह की आवश्यकता नहीं किन्तु फिर भी उसके पिता उसका संबंध निश्चित कर चुका होता है इसलिए उसका विवाह एक ऐसे मूर्ख के साथ हो जाता है जो अच्छी तरह संस्कृत बोल भी नहीं सकता। सखियां उसे अपने पास बुला कर उसका नाम पूछती हैं तो वह कहता है मैं विकटनितम्बा का पति हूं। संस्कृत में बात करती हैं तो उत्तर वह प्राकृत भाषा में देता है। इस पर उसका गुरु गोविन्दस्वामी बहुत दुःखी होता है। और सखियां भी भवितव्यता बलवती है यह सोच कर चुप हो जाती हैं।

अवन्तिसुन्दरी–

यह कवि नाटककार, टीकाकार तथा चैदि और कन्नौज के राज दरबार के कवि राजशेखर की पत्नी थी। राजशेखर ने तीन नाटक, एक काव्य और एक काव्यमीमांसा नामक आलोचनात्मक ग्रन्थ लिख हैं। कर्पूरमन्जरी नाम अपने नाटक (पूर्णतया प्राकृत में होने के कारण वहस ट्टक की कोटि में आता है) में राजशेखर लिखता है कि यह प्राकृत भाषा का नाटक उसने अपनी पत्नी अवन्तिसुन्दरी की प्रेरणा से लिखा था। काव्यमीमांसा नामक ग्रन्थ में उसका साहित्यिक व्यक्तित्व और अधिक उभर कर आया है जबकि राजशेखर तीन विषयों पर उसका मत लिखते हुए कहता है कि अवन्तिसुन्दरी इन तीन विषयों की जानकार थी। ये तीन विषय थे– अभिव्यंजनाशक्ति की परिपक्वता, काव्यात्मक भावना और किसी दूसरे की काव्य से भावनाओं, शब्दों, अलंकारों का ग्रहण करना। राजशेखर स्वयं तो ब्राह्मण था लेकिन उसकी पत्नी अवन्तिसुन्दरी चौहान वंश की राजकुमारी थी। इससे लगता है कि उन दोनों का प्रेम विवाह हुआ होगा, किन्तु उनके प्रेम की कथा का न तो राजशेखर ने अपने और न ही अवन्तिसुन्दरी के उद्धरणों से पता चलता है।

कथानक–

अवन्तिसुन्दरी एक हस्तलिखित ग्रन्थ हाथ में लिए हुए उसे दत्तचित्त होकर देख रही है। इतने में राजकवि राजशेखर कुछ कागज़ और लेखनी हाथ में लिए हुए आते हैं और अवन्तिसुन्दरी से पूछते हैं कि वह किस

ग्रन्थ को इतने ध्यान से पढ़ रही है। अवन्तिसुन्दरी ग्रन्थ की अत्यधिक प्रशंसा करती है किन्तु ग्रन्थकार का नाम नहीं बताती। अन्त में जब राजशेखर को मालूम होता है कि यह उसी का ग्रन्थ है जिसकी अवन्तिसुन्दरी अत्यधिक प्रशंसा कर रही है तो दोनों अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। राजशेखर अवन्तिसुन्दरी से कहते हैं कि कर्पूरमञ्जरी केवल सुनने में ही सुन्दर नहीं अपितु इसमें अभिनेयता भी पूर्ण रूपेण है। इसलिए राजशेखर उसके अभिनय का प्रबन्ध करते हैं। राजा की संगीतशाला में उसके अभिनय की तैयारी होती है, दोनों परस्पर साहित्यिक वादविवाद करते हैं, इतने में नाटक के पात्र सज्जीभूत हो जाते हैं और दोनों ही नाटक का अभिनय देखने चले जाते हैं।

वै राघव ने इन तीन छोटे-छोटे एकांकियों में संस्कृत कवियित्रियों के जीवन पर प्रकाश डाला है, ऐसा प्रयास प्रथम होने के नाते अत्यन्त स्तुत्य है। हमारे साहित्य की नारी लेखिकायें उपेक्षित सी थीं, उनके जीवन के विषय में कम ही लोगों को ज्ञात था। इसलिए उस सूचना को साहित्यिक रूप प्रदान करने का श्रेय श्री राघवन को है।

वै0 राघवन के कथोपकथन बड़े ही रोचक हैं–

विकटनितम्बा– (उत्थान) आचार्य, वन्दे।

गोविन्दस्वामी– अलमुपचारेण। विद्याप्रकषति् त्वामाचार्यी प्यहं सखीं भावयामि। पठयतां श्लोकः। त्वरेत मे हृदयं त्वदीयसारस्वतसुधीस्वादनाय।

विकटनितम्बा– नूनं लज्जापयति भामाचार्यः। किन्तु भवानेव गुणदोष प्रकाशाय समुचितो निकषाश्मेति कृत्वा पठामि। अथवा इयं लेखिका मे सखी गान्धर्वे च शिक्षिता, सा तंशास्यति। तिमिराभिसारिकां वर्णत्ययं श्लोकः संवादरूपः।[3]

विकटनितम्बा– (उठकर) आचार्य नमस्कार।

गोविन्दस्वामी– आदर बहुत हो चुका। तुम तो विद्या में इतनी उन्नति कर चुकी हो कि शिष्या न समझ कर मैं तुम्हें सखी ही समझता हूं। श्लोक पढ़ो। मेरा हृदय तुम्हारे द्वारा रचित सरस्वती का आस्वादन करना चाहता है।

विकटनितम्बा– इस कथन से मुझे आचार्य लज्जित कर रहे हैं किन्तु आपके गुण-दोष के विवेचन के लिए मैं अवश्य पढ़ती हूं। अथवा यह मेरी लेखिका सखी गन्धर्व गान में निष्णात है, यह उसी श्लोक को गा कर सुनाएगी। तिमिर

---

3 प्रेक्षणकत्रयी (विकटनितम्बा) पृ0 2–3

अभिसारिका का वर्णन करने वाला यह संवाद रूपक श्लोक है।

किसी-किसी स्थान पर अवन्तिसुन्दरी के पद्य अत्यन्त प्रौढ़ हैं–

किं द्वारि दैवहतिकै सहकारकेण
संबधितेन विषवृक्षक एष पापः।
यस्मिन् मनागपि विकासविकार भाजि
घोरा भवन्ति मदनज्वरसंनिपाताः।।[4]

'इस दुष्ट सहकार वृक्ष को द्वार पर रोपने से क्या लाभ जिसमें थोड़ा सा भी विकास हो तो मदनज्वर बहुत अधिक हो जाता है।'

विकटनितम्बा स्वयं तो बहुत अधिक विदुषी है लेकिन उसे भय है कि उसका पति मूर्ख होगा जिसे व्याकरण का सरल से सरल सिद्धान्त भी नहीं आता होगा, उसके साथ उसका निर्वाह कैसे होगा, उसे इसी की चिन्ता बार-बार सताती है। अपने इन्हीं भावों को वह निम्नलिखित पद्य में बहुत ही कलात्मक ढंग से करती है–

यस्य षष्ठी चतुर्थी च विहस्य च विहाय च।
अहं कथं द्वितीया स्याद् द्वितीया स्यामहं कथम्।।[5]

'जिसके लिये विहस्य यह रूप षष्ठी विभाक्ति का है और विहाय यह चतुर्थी का। द्वितीया का रूप अहम् कैसे बन सकता है। मैं द्वितीया कैसे बन सकती हूं। (अर्थात् ऐसे वज्रमूर्ख के साथ मैं कैसे विवाह कर सकती हूं)।'

अवन्तिसुन्दरी के शब्दों में कर्पूरमञ्जरी केवल कर्णमधुर ही नहीं वरन सम्पूर्ण अभिनय गुणों से युक्त है। वाणी से उसका वाग्वैदग्ध्य और आलोचना शक्ति का पूर्ण परिचय मिलता है–

अवन्तिसुन्दरी– तथा पठितमनुभूतञ्च। रसपरिमलमैदुरैयं कर्पूरमञ्जरी न केवलं कर्णवतंसयोग्या, अपि तु दृश्यविधयापि सहृदयलौकमानन्दयिष्यति। आशुकविता विनोदविलसितैः हिन्दोलवटसावित्रीक्रीडोत्सव मनोहरैः

4 प्रेक्षणकत्रयी (विकटनितम्बा) – पृ0 4। 2– प्रै0 (वि0) पृ0 5
5 (टवन्तैसुंदरी)– पृ0 6।

यौगिनीवलया दिनर्तनमयैश्च सन्दर्भैः चित्रितैयम्। तद्रंगे प्रयोज्य स्तस्या रसमनुबुभूषामि।

'अवन्तिसुन्दी– मैंने पढ़ा है और अनुभव किया है कि रस से युक्त कर्पूर मञ्जरी केवल कानों को ही नहीं है वरन दृश्य की विधि से भी सदृश्य जनों को आनन्दित करेगी। आशुकविता के विनोद से युक्त हिन्दौल वट सावित्री जैसे उत्सव से मनोहर योगिनी वलय के नृत्य संदर्भ से चित्रित होने के कारण (यह अभिनय के सर्वथा योग्य है) अतः इसका रंग मंच पर अभिनय करके इसके रस का अनुभव करूंगी।

वे० राघवन ने विषय के अनुरूप ही बड़ी प्रवाहमयी और सरल भाषा में इन छोटी-छोटी किन्तु महत्वपूर्ण एकांकियों की रचना की है। तीनों नाटक कवियित्रियों के जीवन एक या दो घटनाओं को लेकर रचे गये हैं फिर भी ऐसा कभी नहीं लगता कि वे अपूर्ण हैं। कलेवर छोटा होते हुए भी वे अपने में पूर्ण हैं। इसीलिए जिस उद्येश्य को लेकर लिखे गये थे, उसे पूर्ण करते हैं।

# प्रशान्त रत्नाकरम्

## कालिदास तर्काचार्य

कालिदास तर्काचार्य द्वारा विरचित प्रशान्त रत्नाकरम् संस्कृत साहित्य परिषद द्वारा 1939 में प्रकाशित हुआ है। इसका प्राक्कथन डा0 अमरेश्वर ठाकुर ने लिखा है तथा पुस्तक परिचय अशोकनाथ शास्त्री ने दिया है। कालिदास तर्काचार्य स्वयं कलकत्ते के राजकीय संस्कृत महाविद्यालय के न्यायशास्त्र के अध्यापक रह चुके हैं। डा0 अमरेश्वर ठाकुर के शब्दों में यह नाटक तो है ही किन्तु नाटककारों के मतानुसार भी यह पूर्णरूपेण नाटक की परिधि के अन्तर्गत आता है या नहीं इस विषय में उन्हें सन्देह है। किन्तु उस सन्देश का परिहार करने के लिये इसे प्रयोगानुगुणकम ही समझा जाय तो अत्युत्तम है। नाटक के कथानक का आधार आध्यात्म रामायण का अयोध्या काण्ड है। बंगाली भाषा में लिखित कृतिवास रामायण भी इस नाटक के कथानक की आधारशिला है किन्तु फिर भी नाटक में लेखक ने नायक के चरित्र, घटनाओं के कम और विकास में इतना परिवर्तन और परिवर्धन किया है कि वह एक नवीन व्यक्तित्व के रूप में पाठक के समक्ष आता है और इसीलिये नाटक अपनी एक स्वतन्त्र छाप लिये हुए है। कालिदास तर्काचार्य, पण्डित मधुसूदन सरस्वती ( सोलहवीं शताब्दी ) जो कि अपने समय के बहुत बड़े अद्वैतवादी और भक्त थे तथा धुरन्दर संस्कृत विद्वान् थे उनके वंशज हैं। इस विद्वद्-परिवार का निवास स्थान कौटाली पाड़ा, फरीद पुर था। स्वयं तर्काचार्य की शिक्षा दीक्षा भट्ट पाली नामक स्थान में हुई थी। महामहोपाध्याय पण्डित शिवचन्द्र सार्वभौम की देखरेख में इन्होंने अपना अध्ययन कम जारी रखा था। अपनी वृद्धावस्था में भी उन्होंने साहित्यिक कार्यकम पूर्ववत अक्षुण्ण रखा। वे संस्कृत विश्वपरिषद के संस्थापकों में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते थे, उन्हीं के अनथक परिश्रम से संस्कृत विश्व परिषद इतनी उन्नति कर सकी। प्रशान्त रत्नाकर पहले संस्कृत विश्व परिषद की मासिक पत्रिका में कमशः निकलता रहा है। नाटक की अनेक विशेषताओं में से एक यह भी विशेषता है कि लेखक ने प्राकृत का पूर्णतया परिहार किया है, नाटक के सभी पात्र संस्कृत भाषा का उच्चारण करते हैं और यदि देखा जाय तो आधुनिक काल की प्रवृत्ति देखते हुए यह उचित भी है क्योंकि संस्कृत सम्पूर्ण भारतवर्ष के किसी भी भाग में पढ़ी और समझी जा सकती है जबकि प्राकृत भाषाओं का प्रयोग चतुर्थ और पन्चम शताब्दि में ही समाप्त हो गया था।

## कथानक

प्रथम अंक –

अकाल ग्रस्त देश में भिक्षुक रत्नाकर भिक्षा के लिये एक द्वार से दूसरे द्वार पर भटकता फिरता है किन्तु उसे कहीं से भी भिक्षा की प्राप्ति नहीं होती। घर में उसके वृद्ध माता – पिता, पत्नी और पुत्र भूख से व्याकुल हो रहे होंगे, यह सोच कर वह बहुत दुःखी होता है। सारे दिन घूमने के पश्चात् भी उसे अन्न का एक दाना प्राप्त नहीं होता, तब उसे उन लोगों पर बहुत कोध आता है जिनके पास बहुत अधिक धन है लेकिन वह किसी को एक दाना भी देना नहीं चाहते। अमीर तो अमीर ही रहते हैं किन्तु गरीब नष्ट हो जाते हैं। एक क्षण के लिये वह सोचता है कि वह चोरी द्वारा आवश्यकता से अधिक धन और अन्न वालों को लूट कर गरीबों को बांट दे और अपने भूख से तड़पते हुए परिवार की क्षुधा शान्त करे किन्तु इस बात के लिये उसकी अन्तरात्मा नहीं मानती, इसलिये वह ऐसा करने से अपने को रोक लेता है। उधर नैपथ्य से सुमति ( सुबुद्धि का प्रतीकात्मक रूप ) द्वारा गाया हुआ गीत भी उसे बोध करवाता है कि उसे चोर वृत्ति नहीं अपनानी चाहिये। किन्तु भूख और संसार की विचित्र गति से उसे इतना निर्वेद होता है कि वह आत्महत्या करने की सोचता है। वृक्ष से कर्पद बांध कर अपने आपको समाप्त करने का उपकम करता है। किन्तु उसी समय उसे एक स्त्री के चिल्लाने की ध्वनि आती है जिसे एक दस्यु तंग कर रहा होता है और उसे मारने की

धमकी देता है। वह सम्पूर्ण आभूषण उतार देती है किन्तु आभूषण लेकर भी वह सन्तुष्ट नहीं होता और बलात्कार करना चाहता है, किन्तु रत्नाकर ठीक समय पर उपस्थित होकर उसे कृपाण से घायल कर देता है। संयोग से दस्यु से दस्यु एक बहुत बड़े दस्यु सम्प्रदाय का प्रधान वीरबल है, वह रत्नाकर की वीरता से प्रभावित होकर उसे अपने ही संघ का प्रधान बनाना चाहता है और उसे सलाह देता है कि इस तरह वह इस गरीबी से छुटकारा पा जायगा। रत्नाकर भी अत्यन्त दुःखी होने के कारण उसकी बात मान लेता है। इस तरह से उसे अपने परिवार का भरण – पोषण करने की सुविधा भी मिल सकेगी और अन्य गरीब परिवारों की सहायता करने का अवसर भी प्राप्त हो सकेगा। दोनों की सहमति हो जाती है और दोनों पक्के मित्र बन जाते हैं। वे दुष्ट राजा कामेश्वर को जिसके कारण गरीब भूखे मर रहे हैं नष्ट करके नया राजा स्थापित करने की योजना बनाते हैं, जिसमें गरीबों को भी भर पेट भोजन मिल सकेगा और कोई दुःखी नहीं होगा।

द्वितीय अंक –:

राजा कामेश्वर के राजदरबार का दृश्य है। राजा के मुंह और शरीर से ही कठोरता, कुटिलता और दुष्टता टपकती है। उसी के कारण देश में अकाल भी फैला हुआ है। वह इतना अधिक ऐश्वर्य में डूबा हुआ है कि उसे अपनी प्रजा की कोई चिन्ता नहीं। वहीं एक दुःखी ब्राह्मण आता है और भूख के कारण त्रस्त होकर राजा को शाप देता है कि उसका सम्पूर्ण राज्य नष्ट – भ्रष्ट हो जायगा। कामेश्वर ये सब बातें सुनता है और उसे मालूम भी है कि जो कुछ हो रहा है उसका कारण वह स्वयं है लेकिन उसका कोई उपाय न ढूंढ़ कर अपनी प्रिया लीलावती के पास जाना चाहता है। लीलावती अत्यधिक सुन्दरी थी किन्तु बाल्यकाल में ही विधवा हो जाने के कारण राजा की दृष्टि में पड़ जाने के कारण राजा उसे जिस किसी तरह भी हस्तगत करना चाहता था। लीलावती का पिता इस बात का विरोध करता था इस पर कामुक राजा ने लीलावती के पिता का वध करवा दिया और लीलावती को बलपूर्वक अपने अन्तःपुर में ले आया था। प्रजा की दुर्दशा से चिन्तित राजा कामेश्वर मदिरा में ही शान्ति ढूंढ़ता है और काफी मात्रा में उसका पान कर लेता है। लीलावती के पास जा कर रमण करता है किन्तु उसे प्रजा के उपद्रव की सूचना वहां भी मिलती है कि जो निर्धन राज कर नहीं दे सके उनकी झोपड़ियां राजपुरुषों ने जला दी हैं। राजा इस बात की ओर भी कोई ध्यान नहीं देता। किन्तु जब उसे यह सूचना मिलती है कि लीलावती के लिये हीरे का हार बना कर लाते हुए स्वर्णकार को महिषी ने पकड़ कर कारावास में डाल दिया है तो लीलावती को प्रसन्न करने के लिये वह विश्वावसु को मुक्त करवाने के लिये चला जाता है।

तृतीय अंक–:

रत्नाकर छल द्वारा राजा कामलेश्वर की राजधानी के समीप एक शैल दुर्ग के आविष्ठाता सिंह – वर्मा द्वारा लिखा हुआ झूठा पत्र ( जो वास्तव में स्वयं रत्नाकर ने किसी से लिखवाया था ) जिसमें यह लिखा होता है कि शत्रुओं ने उस पर चढ़ाई कर दी है इसलिये उसे सेना चाहिए, राजा कामेश्वर के पास भिजवा देता है। पत्र को सच्चा समझ कर कामेश्वर अपनी सम्पूर्ण सेना उधर भेज देता है। उधर एक दिन अन्धकारमयी रात्रि में रत्नाकर राजप्रासाद में घुस कर सम्पूर्ण राज्य द्रव्य की चोरी कर लेता है और अन्य भी बहुत कुछ नष्ट भ्रष्ट कर डालता है। राजा को इस बात पर बड़ा कोध आता है और वह रत्नाकर को बन्दी करने की घोषणा कर देता है।

चतुर्थ अंक –:

थोड़े दिन पहले जब रत्नाकर भिक्षावृत्ति करता था तब उसके ऊपर महाजन का दो सौ रुपये का ऋण था। अब जब धन आया जो रत्नाकर का पिता ऋषि च्यवन और उसका पुत्र आत्रेय ऋण चुकाने के लिये जाते हैं। रत्नाकर, अपने पिता के यह पूछने पर कि इतने अधिक धन की प्राप्ति अकस्मात् ही कैसे हो गई वह बताता है कि उसके एक धनवान् मित्र ने उसकी सहायतार्थ ये धन दिया है किन्तु वह अपना नाम प्रकाश में नहीं लाना चाहता।

जिस समय च्यवन और आत्रेय महाजन को ऋण का धन एक दम से लौटाते हैं तो पास ही खड़े गुप्तचर ( राजा की आज्ञा से चोरों का पता लगाने के लिये जहां तहां गुप्तचर छोड़े हुए थे ) को सन्देह हो जाता है कि उन दोनों का सम्बन्ध चोरों से है। राजपुरुष उन दोनों को पकड़ कर बहुत बुरी तरह पीटते हैं ताकि वे बता दें कि उन्होंने धन कहां से प्राप्त किया है। उसी समय रत्नाकर अपने दल के सदस्यों सहित वहां पहुंच जाता है। राजपुरुषों को उसी समय मार डालता है और अपने पिता तथा पुत्र को जो कि कशाघात से मूर्छित हो गये थे उठा कर अपने नये स्थापित किये नगर रत्नपुर में ले जाता है।

पंचम अंक—:

सुमति और दुर्मति नामक दो स्त्रियों में परस्पर वार्तालाप होता है। सुमति सत्य, अहिंसा, करुणा, सहानुभूति और विश्वमैत्री आदि भावनाओं की प्रतीक है। दुर्मति हिंसा, वध, अत्याचार , चोरी – डकैती का प्रतिनिधित्व करती है। रत्नाकर के कार्य – कलाप देख कर दुर्मति अत्यधिक प्रसन्न होती है क्योंकि वह दुर्मति के मार्ग पर चल रहा है। सुमति रत्नाकर की दशा देख कर बहुत दुःखी होती है किन्तु फिर भी उसे विश्वास है कि रत्नाकर किसी न किसी दिन अच्छे और सत्य मार्ग पर अवश्य चलेगा। उधर रत्नाकर रत्नपुर में जिस समय अपने पुत्र से रत्नपुर के बारे में बता रहा होता है कि रत्नपुर एक ऐसा स्थान है जहां सभी निर्धन और दुःखी मनुष्यों को खाने के लिये अन्न और रहने के लिये आश्रय मिलता है उसी समय एक व्यक्ति आकर सन्देश देता है कि उसने किस प्रकार अपनी ज्योतिष विद्या से कामेश्वर के राज्य के कई उच्च पदाधिकारियों का वध कर दिया है और अब कामेश्वर का समाचार यह है कि वह शीघ्र ही किसी दिन सरयू नदी पर नौका विहार करने के लिये आएगा तभी उसको बन्दी बनाने का उचित अवसर है। रत्नाकर उस अवसर के लिये प्रयत्नशील हो जाता है क्योंकि उसे अपने पिता और पुत्र पर किये गये अमानुषिक अत्याचार का प्रतिशोध लेना था।

षष्ठ अंक —:

दो मछुये नदी में मछली पकड़ने का प्रयत्न करते हैं इतने में उन्हें राजा की नाव अन्य कितनी ही नावों के साथ आती दिखाई देती है। वे मछली पकड़ना छोड़ कर राजा का नौका विहार देखने में लीन हो जाते हैं। इतने में रत्नाकर अपने दलबल सहित वहां पहुंच कर छल द्वारा एक व्यक्ति को डूब जाने के बहाने कामेश्वर की नौका के पास भेज देता है और बाद में उसे लेने के बहाने स्वयं कामेश्वर की नौका पर आकर सबको नष्ट कर देता है। केवल कामेश्वर को जीवित पकड़ कर भोर होने से पहले ही ले चलता है। उधर रत्नाकर का पिता ऋषि च्यवन अपनी पत्नी सहित आता है। पत्नी उसकी उदास मुद्रा को देखकर प्रश्न करती है कि अब तो रत्नाकर के प्रयत्नों से धन समृद्धि है, सब तरफ सुख और आनन्द है फिर भी वह इतने उदास क्यों रहते हैं। उसकी मुख कान्ति तो अत्यन्त दरिद्रावस्था में भी ऐसी कभी नहीं हुई थी अब क्या बात है? ऋषि च्यवन पहले तो इस बात को छिपाता है किन्तु पत्नी के बहुत पूछने पर बताता है कि उसके पुत्र रत्नाकर ने दस्युकर्म करना आरम्भ कर दिया है, इस बात का उसे बहुत दुःख है, अब आत्म – हत्या करने पर भी यदि उसका पुत्र सुधर जाय तो वह प्रसन्नतापूर्वक प्राण त्याग कर देगा।

सप्तम अंक —:

रत्नाकर बन्दी कामेश्वर को पकड़ कर बड़े उल्लासपूर्वक अपना प्रण पूर्ण करने के लिये लाता है। उसका प्रण था कि कामेश्वर के तप्त रक्त से वह अपने पिता का पद पक्षालन करेगा। बन्दी कामेश्वर को रत्नाकर अपने पिता के पास ले आता है और उसे एक पेड़ के साथ बांध देता है। इसके पश्चात् थके हुए सैनिक तथा स्वयं रत्नाकर भी विश्राम करने के लिये चले जाते हैं।

अष्टम अंक —:

च्यवन रात के अंधेरे में राजा कामेश्वर को बन्धन मुक्त कर देता है और रत्नाकर को एक पत्र लिखता है कि वह आत्महत्या इसलिये कर रहा है कि शायद इससे रत्नाकर यह गर्हित मार्ग छोड़ दे, इसके पश्चात् वह वृक्ष से फांसी लगा कर मर जाता है। प्रातःकाल रत्नाकर बड़ी प्रसन्नता से अपना कार्य करने के लिये आता है किन्तु यहां की परिस्थिति देख कर उसे अत्यन्त दुःख होता है। उसी समय घटनास्थल पर उसकी मां, पत्नी और पुत्र भी आ जाते हैं और पिता की मृत्यु देख कर बहुत विलाप करते हैं।

नवम अंक —:

इस दुर्घटना के पश्चात् रत्नाकर की मां, पत्नी तथा पुत्र तीनों की एक के बाद करके मृत्यु हो जाती है। अब रत्नाकर में पहले से बहुत अधिक परिवर्तन हो गया है। वह पुनः बन्दी बनाये गये राजा कामेश्वर को बिल्कुल छोड़ देता है, सभी निर्धन और दुःखी मनुष्यों के रहने और खाने का अच्छा प्रबन्ध कर देता है। अपने दल को तोड़ देता है तथा उनसे शपथ लेता है कि आगे से चोरी नहीं करेंगे। ये सब कार्य करने के पश्चात् वह एक बार फिर आत्महत्या करने की सोचता है लेकिन उसी समय सुमति आकर उसे आश्वासन देती है कि उसे ऐसा नहीं करना चाहिये, इसके स्थान पर उसे किसी अच्छे गुरु से दीक्षा लेनी चाहिये। इसके बाद स्वर्ग से आये हुए नारद उसे दीक्षा देते हैं, जिससे वह पवित्र जीवन यापन करने लगता है।

## चरित्रचित्रण —:

जैसा कि कथानक से ज्ञात होता है ' प्रशान्त रत्नाकरम् ' नाटक का नायक वाल्मीकि है, वाल्मीकि ऋषि का पहला जीवन बहुत = कुछ इसी तरह का था लेकिन उसका नाम रत्नाकर श्री तर्काचार्य ने बंगाली भाषा में लिखित रामायण से लिया है क्योंकि इसके अतिरिक्त और कहीं भी उसका रत्नाकर नाम नहीं आता। इस बंगाली रामायण का आधार भी आध्यात्म रामायण ही है। आध्यात्म रामायण में यह उल्लेख मिलता है कि ऋषि वाल्मीकि रामचन्द्र से अपना पूर्व इतिहास बताते हुए कहते हैं कि वह स्वयं ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुआ थे किन्तु कुसंगति में पड़ कर चोरी आदि करने लग गये किन्तु फिर जब सात ऋषि उसी रास्ते होकर गये और उनको भी उसने लूटना चाहा तो उनकी सत्संगति से उसके सभी पूर्व पाप नष्ट हो गये और वह उनसे अपने उद्धार की याचना करने लगा। ऋषियों ने उसे राम का विपरीत ' मरा ' शब्द उच्चारण करने के लिये कहा। इसके पश्चात् वह अपनी साधना में इतना लीन हुआ कि सदियां बीत गयीं किन्तु वह वहीं ध्यान मग्न हो कर बैठा रहा और उसके ऊपर चींटियों ने अपने बिल बनाने आरम्भ कर दिये। बहुत समय व्यतीत हो जाने पर वहीं ऋषि फिर वहां से होकर जाने लगे तो उन्हें मिट्टी के ढेर के नीचे से राम — राम की ध्वनि सुनाई दी। मिट्टी खोदकर उन्होंने उसे समाधि से जगाया और उसका वाल्मीकि नामकरण कर दिया। इसके पश्चात् यह तो सर्व विदित है कि उन्हीं ऋषि वाल्मीकि ने सम्पूर्ण राम चरित्र लिखा।

एक दस्यु का सन्त वाल्मीकि के रूप में परिवर्तित होने का उल्लेख ब्रह्म-वैवर्त-पुराण के एक अंश में भी है इसका संकेत रामानुज और गोविन्द राज द्वारा की गई मूल रामायण की टीका के परिचयात्मक भाग में मिलता है। वाल्मीकि के पूर्व जन्म की कथा सर्वत्र यही है। थोड़ा बहुत भेद चाहे हो। उदाहरण के लिये करणाल में यह कथा प्रसिद्ध है कि ऋषि वाल्मीकि ने ' मार ' के स्थान पर ' मरा ' शब्द का उच्चारण किया था। अन्य सभी साम्य होते हुए भी केवल एक ही विशिष्टता है कि उसका पहला नाम रत्नाकर हमें और कहीं नहीं प्राप्त होता।

कहानी चाहे कुछ रही हो लेकिन इस बात का पक्का निश्चय है कि विद्वान् लेखक ने अपने नाटक के लिये केवल बाह्य रूपरेखा ही ली है आन्तरिक रंग उसने स्वयं भरे हैं। अत्यन्त प्रसिद्ध कथानक को भी उन्होंने ऐसे सांचे

में ढ़ाला है कि उसका एक नया रूप ही प्रकाश में आया है। परम्परागत कहानी का कठोर रत्नाकर इस नाटक में एक पूर्ण मानव बन कर पाठक के समक्ष आता है। वह चोरी का कार्य इसलिए नहीं अपनाता कि इसमें उसे आनन्द आता था वरन उसके बच्चे, पत्नी और माता – पिता क्षुत्रा से तड़प रहे थे। उनको बचाने के लिये तथा उन जैसे अन्य निर्धन व्यक्तियों को भूख से मरने से बचाने के लिये यह कार्य आरम्भ किया। श्री तर्काचार्य का नायक रत्नाकर पाश्चात्य जगत के रोबिनहुड की तरह है जो अमीरों को इसलिए लूटता है कि गरीब भूखे न मरें। यह सत्य है कि पाठक की सहानुभूति सदैव नायक के साथ ही रहती है किन्तु यह सहानुभूति कार्य के अच्छे उद्येश्य से ही उसको प्राप्त हुई है। स्वयं नाटककार उसके किसी भी कार्य को अच्छा या बुरा नहीं कहता। हालांकि उस अच्छे उद्येश्य की पूर्ति के लिये जो साधन वह अपनाता है वे निश्चय ही बुरे हैं। रत्नाकर के पहले दुष्कर्मों को देखते हुए उसका एक दम से ऋषि जीवन में पदार्पण करना उचित चाहे न लगे किन्तु इतना अवश्य ध्यान में रहना चाहिये कि बिना इतना कष्ट उठाये, बिना किसी त्याग के ऐसा होना सम्भव ही नहीं था। रत्नाकर का सम्पूर्ण पहला व्यक्तित्व उस साधना में घुल गया और उस बाल्मीकि से एक नया व्यक्तित्व उभरा यही महर्षि वाल्मीकि थे।

मनुष्य अपना दुःख सह लेता है लेकिन अपने परिवार को दुःखी देख कर बड़े से बड़े धैर्य शील व्यक्ति का हृदय भी हिल उठता है। महाराणा प्रताप सिंह का हृदय शिला की भांति दृढ़ था लेकिन जब पुत्री इन्दिरा को एक रोटी के लिये रोते देखा तो उनका हृदय धैर्य नहीं धर सका और उन्होंने अकबर के साथ सन्धि करने का निश्चय कर लिया इसी प्रकार रत्नाकर जब अपने परिवार की ऐसी दशा देखता है तो सोचने लगता है ––

तथापि धनिकाः सर्वतो हीनान् दीनान् मन्येरन्नित्यत्र किं वा बीजं विधिनिसृष्टादर्थवैभवादन्यत् ? स्मरामि हन्त स्मरामि प्रतिदिवसं पथि क्रीडतो धनिकं तनुजैरल तैदीन इति धिक्कृतस्य वत्सव्य आत्रेयस्य में सास्त्रं दुःखान्धकारमलिनं वदनम् ! ताी स्मरामि धनिक पत्नी गणैः सुम हत्या सम्पदा परिपूजितैन देवायतन गुरुणा तदादर व्यापृतेन दैन्यादेव प्रतिरुद्ध दैवायतन प्रवेशायाः प्रियाया माध्व्या जनन्याश्च मे गभीरदुःखनिवेदनवैशसम्।

इस पर भी धनिक सभी को दीन – हीन समझें यहां मुझे खूब अच्छी तरह स्मरण है कि प्रत्येक दिन रास्ते में खेलते हुए धनिक लोगों के सजे हुए पुत्रों द्वारा मेरे पुत्र को दीन कह कर धिक्कारना और उसका दुःख के अन्धकार में मलिन मुख होना। इसी प्रकार मुझे यह भी अच्छी तरह स्मरण है कि धनिक लोगों की पत्नियां तो बहुत सी सामग्री से देवालय में पूजा करने के लिये आती थी लेकिन मेरी पत्नी माधवी और मेरी माता को केवल इसीलिये वहां प्रवेश करने का अधिकार नहीं था क्योंकि उनके वस्त्र मलिन और दीनता के परिचायक थे।

दिन भर उसने भिक्षा के लिये प्रयत्न किया किंतु फिर भी उसे कहीं कुछ न मिला तो थक कर वह थोड़ा विश्राम करने लग गया किन्तु इस पर भी उसकी आत्मा उसे धिक्कारती है कि वह अपना कर्तव्य पालन क्यों नहीं करता। उसके मन में होने वाले ऊहापोह, अपने माता – पिता और पत्नी तथा बच्चे के पालन – पोषण के प्रति उसकी कर्तव्यनिष्ठा यही व्यक्त करते हैं कि वास्तव में उसका हृदय बहुत शुद्ध था लेकिन परिस्थितियों के वश में होकर उसने ऐसा गर्हित कार्य हाथ में लिया ––

त्वं तातं जननीं तथा पतिरतां पत्नी सुतं वत्सलं
हित्वा क्षुत्परिपीडितानपि गृहे विश्रामभावा सि ?
धिग् धिग् त्वां निजशान्ति मात्र निरतं जातं वृधा भूतले
प्रोतिष्ठ प्रतिकर्त्तुमात्मकरणैः सर्वक्षा विषदक्रमम् ।।

तुम पिता माता पतिव्रता स्त्री और प्यारे पुत्र को घर में भूख से तड़पते छोड़ कर स्वयं विश्राम की इच्छा करते हो तुम्हें धिक्कार है। केवल अपनी शान्ति की चिन्ता करने वाले तुम व्यर्थ ही पृथ्वी पर रह रहे हो, उठो और अपने विषाद को कार्य द्वारा दूर करो।

रत्नाकर वीर है इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं तभी तो दस्यु दल का नेता वीरबल भी उसकी वीरता का लोहा मानता है और उसे दस्यु दल का नेता बन जाने की सलाह देता है।

पुरुष :

भद्र रत्नाकर, भवतः शौर्य साहसं निपुणतां लोकोत्तरौदार्यं विलक्षणं च क्लेवरसंस्थायनमीक्षमाणः परतन्त्रीकृतोस्मि प्रेम्ण विस्मयाम्। तदाकर्णय यावत् सभासेन कथयामि। अनन्तरितं शात्रववृत्तं विस्मृत्य कृपया श्रोतमर्हति।

भाई रत्नाकर आपका शौर्य, साहस, निपुणता तथा अत्यधिक उदारता और शारीरिक गठन देख कर मैं प्रेम और विस्मय से अभिभूत हो गया हूं, अतः अब मैं जो कहूंगा वह सुनो, बीच की शत्रुता को भुला दो।

रत्नाकर के लिये परस्त्री माता के समान थी। दस्यु जिस स्त्री को तंग कर रहा था रत्नाकर के लिये वह माता के समान थी उसने उसकी सुरक्षा के लिये पूर्ण प्रयत्न किया इसीलिए वह स्त्री भी उससे स्नेह करने लगती है तभी कहती है –

भद्रस्य मातृबहुमानेन गौरवं गमिता किंचिदिव वक्तुमिच्छामि।

उसके सौजन्य के विषय में भी सभी लोगों को पूर्ण विश्वास है। उस स्त्री को जब मालूम होता है कि वह रत्नाकर है तो अनायास ही उसके मुंह से निम्नलिखित शब्द निकल पड़ते हैं–

स्त्री – अये एष रत्नाकरः, यस्य दैन्यं गतस्यापि सौजन्यप्रभवां कीर्ति समुद्घोषयन्ति पौर जानपदाः। अथवा कुतः खलु सुधाकरादन्यतः पीयूषवृष्टिः ?

अरे यह वही रत्नाकर है जिसकी दीन होते हुए भी सौजन्यता की कीर्ति सभी नगरवासी करते हैं अथवा सुधाकर के बिना पीयूष वृष्टि और कहां हो सकती है।

रत्नाकर के इन सभी गुणों को लक्ष्य करने पर यही निश्चित होता है कि रत्नाकर का हृदय बहुत शुद्ध था किन्तु जटिल परिस्थितियों से उसे मनुष्य से पशु बना दिया किन्तु अन्त में जब पिता ने आत्म हत्या द्वारा उसे उद्बोध कराया तो मानो उसकी सोई हुई आत्मा जाग उठी। और बाद में माता पत्नी और पुत्र की मृत्यु के शोक ने दस्यु रत्नाकर को ऋषि बाल्मीकि में परिवर्तित कर दिया। उसका इस असार संसार से वैराग्य इतनी तीव्रता से और शीघ्रता से हुआ कि जीते जी ही उसकी आत्मा मानो ऋषि की आत्मा में परिवर्तित हो गई तभी तो वह रामायण जैसे अमर काव्य की रचना कर सका।

## भाषा तथा शैली –

विद्वान् लेखक के विचार इतने क्रान्तिकारी थे कि उसने कई स्थानों पर बिलकुल नवीन शैली को जन्म दिया। यदि प्राचीन नाट्याचार्यों की पद्धति के दृष्टिकोण से देखा जाय तो नाटक के स्त्री पात्र तथा

अन्य नीच पात्रों में प्राकृत भाषा का प्रयोग करना चाहिए था किन्तु सम्पूर्ण नाटक में प्राकृत भाषा का प्रयोग हमें कहीं नहीं मिलता। लेखक ने साधारणतया प्रयुक्त छन्द जैसे अनुष्टुभ उपजाति (इन्द्र वज्रा और उपेन्द्र वज्रा के संयोग से बनने वाली तथा वंशस्थ और इन्द्रवंश के संयोग से बनने वाली) वसन्ततिलका शालिनी, शार्दूलविक्रीडित आदि का प्रयोग किया है। गीतों में जाति छंद के नवीन रूपों का भी प्रयोग किया है। एक सुन्दर गीत देखिए —

कुञ्जवने कुसुमकुलं किरति सुस्मितम्
मलयपवनकम्पित तनु पतति पुञ्जितम् ।
कुरु सुमधुरमालिकां हृदय दयितरञ्जिकां
दयितककण्ठमपि शोभय सुखय शाश्वतम्।
सुरया कुरु मानसं विरहितघनतामसम्
अधरे धर मधुराधरयेंतु ललित नन्दितम् ।

कुञ्जवन में फूलों के ढ़ेर अपनी मनोहर मुस्कान बिखेर रहे हैं। मलयसमीर से डुलाये जाने पर वे ढ़ेर के ढ़ेर गिर पड़ते हैं। एक प्यारी सी माला बनाओ जोकि प्रियतम के मन को भा उसे सदैव सुख दे। सुरा से मन को गहन अन्धकार से विमुक्त करो। अधर पर मधुर अधर रखो जिससे मीठा – मीठा आनन्द मिल जाय।

कहीं कहीं पर लेखक ने भारतीय संस्कृति के उच्चतम विचारों को एक छोटे से श्लोक में भावबद्ध कर दिया है। हमारी भारतीय संस्कृति में उपकार का बहुत अधिक महत्व है। यहां तक कि महाभारत में तो लिखा है –

अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम् ।।

इसी भाव को लेकर नाटककार ने उपकार कर्ता को बहुत ऊंचा उठा दिया है। उसके मत में उपकारकर्ता का जितना कल्याण होता है उतना उपकृत जन का नहीं। जिस स्त्री को रत्नाकर ने दस्यु के चुंगुल से बचाया था उसके बार – बार धन्यवाद देने पर रत्नाकर उसे कहता है कि वास्तव में लाभ तो स्वयं उसी का ही हुआ है –

उपकाराय सामर्थ्यं धात्रा यस्मै वितायते।
स एव सुतरां धन्यो न त्वेवोपकृतो जनः।।

विधाता जिसे उपकार करने की सामर्थ्य प्रदान करता है वही मनुष्य धन्य है, जिस पर उपकार किया जाता है वह नहीं।

उपकार की कितनी उच्च भावना है।

जहां पर हमें लेखक की क्रान्तिकारी और भावनाओं के समक्ष विस्मित रह जाना पड़ता है वहां उसकी परम्परा के प्रति आदर की भावना से नतमस्तक हुए बिना नहीं रहते। आधुनिकता के प्रति लेखक का मोह इतना अधिक नहीं है कि वह प्राचीन परम्परा को बिलकुल भुला बैठे। सूत्रधार और नटी द्वारा लेखक का परिचय तथा नाटक का परिचय। नाटक को अंकों और दृश्यों में विभाजित करना तथा गद्य और पद्य का सुन्दर सम्मिश्रण घोषित करता है कि नाटककार प्राचीन रूढ़ि पर चलते हुए भी नवीन भावों को अपनाने की शक्ति रखता है।

सम्पूर्ण नाटक पर विहंगम दृष्टि डालने से ऐसा प्रतीत होता है कि नाटक दुःखान्त है किन्तु उस दुःख में शान्ति है, वैराग्य है इसीलिए वह दुःख उतना चुभने वाला नहीं लगता। यह सत्य है कि नायक अपना सब कुछ खो

देता है किन्तु सब कुछ खोने पर भी जिस अध्यात्मिक शान्ति की उसे प्राप्ति होती है, वह उससे बहुत बड़ी वस्तु है, इसलिए इसे पूर्णतया दुःखान्त मान लेना असंगत होगा। लेखक स्वयं इसे पूर्णतया दुःखान्त बनाने के पक्ष में नहीं था तभी तो इस नाटक का नाम रखा हैं –– प्रशान्त रत्नाकरम्। जो नायक की मानसिक अवस्था का प्रतीक है। अर्थात रत्नाकर सब सांसारिक वस्तुओं को चाहे खो बैठा हो लेकिन उसमें से उसे बहुत बड़ी उपलब्धि हुई वह थी तिरन्तन शान्ति।

## तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियां –:

नाटक ने उस समय की सामाजिक परिस्थितियों का जैसा दिग्दर्शन करवाया है उसका पूर्णतया अवलोकन किये बिना नाटक का पर्यावलोकन अधूरा ही रह जायगा। कुछ घटनायें हैं जिससे उस समय के समाज की झलक मिलती है। भिक्षुक रत्नाकर सारे नगर में भिक्षा मांगने के पश्चात् थक कर एक निर्जन स्थान पर विश्राम हेतु बैठ जाता है और थोड़ी की देर के पश्चात् उसे हृदय विदारक क्रन्दन सुनाई देती है। एक दस्यु एक स्त्री का सर्वस्व हरण करना चाहता है। इससे सिद्ध होता है कि उस समय के समाज में स्त्री का सतीत्व सुरक्षित नहीं था। दूसरी ओर स्वयं कामेश्वर अपनी प्रिया लीलावती को जो न्याय की दृष्टि से दूसरे की पत्नी को बलपूर्वक हस्तगत करने के लिये कपटपूर्ण व्यवहार करता है। लीलावती को प्राप्त करने में जो भी मनुष्य बाधक हुआ उसका वध करवा दिया गया, इसी लिये लीलावती के पिता को अपने जीवन से हाथ धोना पड़ा। आमोद – प्रमोद के साधनों में उस समय नौकाविहार का भी बड़ा ऊंचा स्थान था। स्वयं राजा कामेश्वर अपने दलबल सहित और नृत्य – संगीत के सम्भार सहित नौका विहार करने के लिये अक्सर जाया करता था और नौकाविहार के समय नृत्य संगीत और मद्यपान काफी मात्रा में होता था। यहां तक कि विदूषक जो जाति का ब्राह्मण है उसे भी जबरदस्ती मद्यपान करवा दिया जाता है। वैसे तो वैश्य जाति सदैव धन को बहुत अधिक महत्व देती है लेकिन अकाल के समय तो उसका धन के प्रति मोह अधिक बढ़ जाता है इसीलिए जिस बनिए से रत्नाकर का पिता ऋषि च्यवन ऋण लेता है वह सभी लोगों को दुत्कार देता है। किसी से अच्छी तरह बात नहीं करता किसी की दुर्दशा पर द्रवीभूत नहीं होता, दुर्भिक्ष पीड़ित जनता पर दया नहीं करता, उसे तो केवल धन संचित करने की ही प्रबल इच्छा है। इन सभी सामाजिक स्थितियों के प्रति लेखक जागरूक है और उसने इनका वर्णन बड़े ही सुन्दर ढ़ंग से किया है।

# हर्ष दर्शनम् --- पं० डेग्वेकर पांडुरंग शास्त्रि विरचितं

## 1961 की शारदा पत्रिका में प्रकाशित ( वासन्तिक विशेषांक )

आधुनिक काल में संस्कृत भाषा में लिखे गये नाटकों की कितनी अल्प संख्या के इस ओर दृष्टिपात करवाते हुए डेग्वेकर महाशय लिखते हैं –

सूत्रधार – मारीष। चिरकालं राजाश्रयाभावात् वाऽन्यकारेणेन बा संस्कृत भाषामधिकृत्य नव नाटक निर्मितः अत्यल्पप्रमाणा। किं बहुना उदुंबर कुसुमप्रायेव। क्वचित दिष्ट्या दृष्टिपथं आयाति। एतादृशी दशां वर्तते। अस्यामपि दशायां संस्कृत – भाषया विरचितस्य ' हर्षदर्शनाख्यस्य ' नव नाटकस्य प्रयोगो वर्तत इति घोषणां श्रुत्वैव किमिद नव नाटक मित्ति दर्शन कुतूहलिनी विद्वत्प्रचुरा परिषदेना सोत्सवकं तिष्ठति।

जिस वस्तु का प्रचार बहुत कम हो जाता है और यदा – कदा ही दृष्टिगोचर होती है, उसे देखने का कौतूहल लोगों में बहुधा हो जाता है। आधुनिक समय में यही अवस्था संस्कृत नाटक की हो रही है। बहुत ही कम संख्या में लिखे जाने के कारण और उससे भी कम अभिनय के योग्य होने के कारण यदि कहीं भी संस्कृत नाटकों का अभिनय प्रदर्शित किया जाता है तो वहां दर्शक केवल इस कौतूहल के लिये जाते हैं कि संस्कृत नाटक में कैसा और किस प्रकार अभिनय किया जाता है। उसे पूरा समझ कर उसकी प्रशंसा करना तो बहुत ही कम लोगों के भाग्य में होता है। ऐसी भावना की ओर ही दृष्टिपात करवाना ही लेखक का उद्देश्य है।

नाटक का कथानक – महाराज हर्षवर्धन की उत्तर भारत की दिग्विजय से सम्बन्धित है। सूत्रधार लेखक का परिचय निम्नलिखित शब्दों में देता है –

तस्मादस्मिन् सारस्वतानुकूलकाले विद्वज्जनानुरोधात् पुष्यपत्तनवासिना कुलपरम्परागत साहित्यादि - विरचय्य विद्या प्रवीणेन, डेग्वेकरोपनामकेन पांडुरंगाख्येन कविना कुरुक्षेत्र नामकं महाकाव्यं रचयित्वा सर्गबन्धात्मककाव्यरचनारुचिं किंचित् विहाय, इदं हर्षदर्शनाख्यं नव नाटकं व्यरचि।

इतने में ही नेपथ्य से सूचना मिलती है कि महाराज उत्तर दिग्विजय के लिये प्रस्थान करेंगे। उसके लिये उत्सव का दिवस कल है। अतः कल ही शाम को सभी लोग सपरिवार आकर राजा का अभिनन्दन करें। सूत्रधार स्वयं भी इस शुभ अवसर पर अपना प्रयोग कौशल दिखाने के लिये प्रस्तुत होता है किन्तु इतने में दूसरी ओर से उसे दो स्त्रियों का वार्तालाप सुनाई देता है। पहले तो, उसे स्वर अपरिचित सा लगता है किन्तु बाद में स्मरण करके कहता है कि अब मुझे मालूम हो गया है। उद्यान में राजा शान्ति वर्म की कन्या प्रतिमा है तथा उसके सचिव की कन्या चन्द्रिका हैं। राजा शान्ति वर्मा का सम्पूर्ण राज्य चरुदेव ने अपहरण कर लिया है इसलिए शान्ति वर्मा की कन्या प्रतिमा अपने बाल्यकाल से ही मामा के पास ही रही है और वहीं युद्ध विद्या की शिक्षा ग्रहण की है। अब आश्रय के अभाव में कुटुम्ब सहित राजा हर्ष के आश्रय में आ गये हैं। प्रतिमा का मातुल पूज्य भर्गाचार्य का शिष्य है। इतना कहकर सूत्रधार तो चला जाता है। उद्यान में प्रतिमा और चन्द्रिका परस्पर वार्तालाप करती हैं। उन्होंने राजकीय उद्यान में बिना आज्ञा के प्रवेश किया है इसलिए वे भयभीत हैं। उद्यानरक्षक आकर उन्हें सूचना देता है कि बिना आज्ञा के वे उद्यान के भीतर क्यों आ गई हैं। अब उन्हें रास्ता छोड़ कर दूर खड़ा होना चाहिए क्योंकि अभी राजोद्यान में महाराज हर्ष पधार रहे हैं। उसके इतना कहते ही महाराज हर्ष अपने मित्र चकोर के साथ उद्यान में प्रवेश करते हैं। दोनों सखियां उन्हें दिखाई पड़ जाती हैं। प्रतिमा राजा हर्ष की ओर चन्द्रिका चकोर की ओर आकर्षित होती है।

# हर्ष दर्शनम् --- पं० डेग्वेकर पांडुरंग शास्त्रि विरचितं

## 1961 की शारदा पत्रिका में प्रकाशित ( वासन्तिक विशेषांक )

आधुनिक काल में संस्कृत भाषा में लिखे गये नाटकों की कितनी अल्प संख्या के इस ओर दृष्टिपात करवाते हुए डेग्वेकर महाशय लिखते हैं –

सूत्रधार – मारीष। चिरकालं राजाश्रयाभावात् वाऽन्यकारेणेन बा संस्कृत भाषामधिकृत्य नव नाटक निर्मितः अत्यल्पप्रमाणा। किं बहुना उदुंबर कुसुमप्रायेव। क्वचित हिष्टया दृष्टिपथं आयाति। एतादृशी दशां वर्तते। अस्यामपि दशायां संस्कृत – भाषया विरचितस्य ' हर्षदर्शनाख्यस्य ' नव नाटकस्य प्रयोगो वर्तत इति घोषणां श्रुत्यैव किमिद नव नाटक मित्ति दर्शन कुतूहलिनी विद्वत्प्रचुरा परिषदेना सोत्सवकं तिष्ठति।

जिस वस्तु का प्रचार बहुत कम हो जाता है और यदा – कदा ही दृष्टिगोचर होती है, उसे देखने का कौतूहल लोगों में बहुधा हो जाता है। आधुनिक समय में यही अवस्था संस्कृत नाटक की हो रही है। बहुत ही कम संख्या में लिखे जाने के कारण और उससे भी कम अभिनय के योग्य होने के कारण यदि कहीं भी संस्कृत नाटकों का अभिनय प्रदर्शित किया जाता है तो वहां दर्शक केवल इस कौतूहल के लिये जाते हैं कि संस्कृत नाटक में कैसा और किस प्रकार अभिनय किया जाता है। उसे पूरा समझ कर उसकी प्रशंसा करना तो बहुत ही कम लोगों के भाग्य में होता है। ऐसी भावना की ओर ही दृष्टिपात करवाना ही लेखक का उद्देश्य है।

नाटक का कथानक – महाराज हर्षवर्धन की उत्तर भारत की दिग्विजय से सम्बन्धित है। सूत्रधार लेखक का परिचय निम्नलिखित शब्दों में देता है –

तस्मादस्मिन् सारस्वतानुकूलकाले विद्वज्जनानुरोधात् पुष्यपत्तनवासिना कुलपरम्परागत साहित्यादि - विरचय्य विद्या प्रवीणेन, डेग्वेकरोपनामकेन पांडुरंगाख्येन कविना कुरुक्षेत्र नामकं महाकाव्यं रचयित्वा सर्गबन्धात्मककाव्यरचनारुचिं किंचित विहाय, इदं हर्षदर्शनाख्यं नव नाटकं व्यरचि।

इतने में ही नेपथ्य से सूचना मिलती है कि महाराज उत्तर दिग्विजय के लिये प्रस्थान करेंगे। उसके लिये उत्सव का दिवस कल है। अतः कल ही शाम को सभी लोग सपरिवार आकर राजा का अभिनन्दन करें। सूत्रधार स्वयं भी इस शुभ अवसर पर अपना प्रयोग कौशल दिखाने के लिये प्रस्तुत होता है किन्तु इतने में दूसरी ओर से उसे दो स्त्रियों का वार्तालाप सुनाई देता है। पहले तो, उसे स्वर अपरिचित सा लगता है किन्तु बाद में स्मरण करके कहता है कि अब मुझे मालूम हो गया है। उद्यान में राजा शान्ति वर्म की कन्या प्रतिमा है तथा उसके सचिव की कन्या चन्द्रिका हैं। राजा शान्ति वर्मा का सम्पूर्ण राज्य चरुदेव ने अपहरण कर लिया है इसलिए शान्ति वर्मा की कन्या प्रतिमा अपने बाल्यकाल से ही मामा के पास ही रही है और वहीं युद्ध विद्या की शिक्षा ग्रहण की है। अब आश्रय के अभाव में कुटुम्ब सहित राजा हर्ष के आश्रय में आ गये हैं। प्रतिमा का मातुल पर पूज्य भर्गाचार्य का शिष्य है। इतना कहकर सूत्रधार तो चला जाता है। उद्यान में प्रतिमा और चन्द्रिका परस्पर वार्तालाप करती हैं। उन्होंने राजकीय उद्यान में बिना आज्ञा के प्रवेश किया है इसलिए वे भयभीत हैं। उद्यानरक्षक आकर उन्हें सूचना देता है कि बिना आज्ञा के वे उद्यान के भीतर क्यों आ गई हैं। अब उन्हें रास्ता छोड़ कर दूर खड़ा होना चाहिए क्योंकि अभी राजोद्यान में महाराज हर्ष पधार रहे हैं। उसके इतना कहते ही महाराज हर्ष अपने मित्र चकोर के साथ उद्यान में प्रवेश करते हैं। दोनों सखियां उन्हें दिखाई पड़ जाती हैं। प्रतिमा राजा हर्ष की ओर चन्द्रिका चकोर की ओर आकर्षित होती है।

प्रतिमा और चन्द्रिका दोनों प्रार्थना करती हैं कि उन्हें आश्रय चाहिए। इस पर हर्ष कहते हैं कि यदि राजा के आश्रय में रहने की इच्छा है तो इच्छा पूर्ण होगी। इसके पश्चात् सभी लोग चले जाते हैं। भर्गाचार्य जी अपनी शिष्य मंडली के साथ प्रवेश करते हैं। भर्गाचार्य जी अपने शिष्यों से कहते हैं कि चाहे वैराग्य ग्रहण किया होने के कारण उन्हें संसार से अलग रहना चाहिए किन्तु फिर भी लोक कल्याण की भावना से संसार में कहां क्या हो रहा है इसका ध्यान रखना ही पड़ता है। इसलिए हर्ष को बचाने के लिये उसके शत्रु पक्ष ने क्या षडयंत्र किया है यह सूचना उसे देनी है। वे चकोर से पूछते हैं कि उत्सव में आसनों की व्यवस्था ठीक तरह से कर दी है इस पर चकोर उन्हें आश्वासन देता है कि सम्पूर्ण कार्य ठीक तरह से किया गया है। भर्गाचार्य बताते हैं कि उत्तर प्रदेश का भ्रमण करते समय मैंने विश्वस्त सूत्रों से पता लगाया है कि हर्ष के उत्तर दिग्विजय की सूचना पाने पर जलन के मारे मगध का राजा शशांक चंडदेव को प्रोत्साहित कर रहा है। वे दोनों ही हर्ष के वध के लिये गुप्त योजना बना रहे हैं। योजना की सफलता के लिये उन लोगों ने हर्ष के राज्य में एक मंडल की स्थापना भी की है। यह सम्पूर्ण सूचना देने के लिये ही भर्गाचार्य वहां से शीघ्रातिशीघ्र चल कर आये हैं। चकोर सम्पूर्ण सूचना पाकर चला जाता है। इसके पश्चात् भर्गाचार्य अपने शिष्य वरुण और अरुण से कहते हैं कि वे मध्याह्न सन्ध्या के लिये जा रहे हैं। उनके शिष्य उनसे नालन्दा में उध्ययन करने के लिये आये हुए चीनी विद्यार्थी ह्वेन सांग के विषय में कुछ पूछते हैं। भर्गाचार्य उन्हें बताते हैं कि विदेशी छात्र हमारी संस्कृति का अध्ययन करने के लिये आते हैं, इस कार्य के लिये उनके देश वाले उन्हें धन और आदर से सम्मानित करते हैं।

द्वितीय अंक में – हर्ष के गुप्त प्रासाद मन्दिर में हर्ष चकोर गुप्तचर शात निशात और गुरू भर्गाचार्य सभी मिल कर मन्त्रणा करते हैं। हर्ष को इस बात की बड़ी प्रसन्नता है कि उसके गुरू भर्गाचार्य ने शत्रुओं के ऐसे गुप्त रहस्य का पता लगा लिया है जिसका उसे बड़े से बड़े गुप्त्चर भी पता नहीं लगा सके। इतने में एक रक्षक हर्ष को सूचना देता है कि हमारे द्वारा पकड़ा गया शत्रु पक्ष का एक व्यक्ति जहां पर बन्दी बना कर रखा गया है उसे शत्रुपक्ष के दो युवक बलपूर्वक हमारे रक्षकों को हटा कर उसे छुड़ा कर ले गये हैं। इस घटना से सभी को आश्चर्य होता है। गुप्तचर प्रमुख शात निशात इस घटना के सम्बन्ध में जांच करने की प्रतिज्ञा करते हैं। इसके पश्चात् भर्गाचार्य पारिजात प्रासाद में हर्ष के साथ चले जाते हैं और अरुण वरुण उत्सव में आये हुए चीन देशीय छात्र से वाग्विलास करते हैं किन्तु चतुर चीनी देशीय लोग उनके प्रत्येक प्रश्न का उत्तर बड़ी चतुरतापूर्वक देता है। इसके पश्चात् सभी लोग उत्सव देखने में और नगर की साजसज्जा देखने में प्रवृत्त हो जाते हैं। उधर महाराज हर्ष की भूरि भूरि प्रशंसा करते हैं। सबसे अन्त में गुरू भर्गाचार्य उनकी प्रशंसा करते हैं और उन्हें सर्वविजयी होने का आशीर्वाद देते हैं। हर्ष उल्लास पूर्वक दो घोषणाएं करते हैं। प्रथम यह कि वे उत्तर दिग्विजय के समय दुष्ट चंडदेव का दमन करेंगे और दूसरी सांकाश्येश्वर के स्थान पर अब राजधानी कान्यकुब्ज नगरी होगी।

तृतीय अंक में – चंडदेव के भवन में और मगध का राजा शशांक परस्पर विचार करते हैं। वे सोचते हैं कि हर्ष को कैसे वध किया जाय। शशांक चंडदेव को बताता है कि मेरे मित्र मालव के अधिपति ने हर्ष सजवर्धन के भगिनीपति गृह वर्मा को मार डाला था। इस पर कोधित होकर हर्षवर्धन ने मालवाधिप का वध कर दिया। मालवाधिप मेरा मित्र था इसलिए मैंने मित्रघाती राजवर्धन का शीघ्र ही वध कर दिया। इस पर राजा हर्ष अपने भाई का और भगिनीपति के वध का प्रतिशोध लेने के लिये उत्तर दिग्विजय करेगा। अब हर्ष का वध करने के लिये चंडदेव की सहायता की आवश्यकता है। वे हर्ष द्वारा फेलाये गये गुप्तचर जाल के प्रति भी चिन्ता प्रकट करते हैं। चंडदेव और शशांक द्वारा निकाले गये कितने ही सामन्त और योधा हर्ष की सेना में जा मिले हैं जिससे चंडदेव और शशांक का प्रत्येक रहस्य हर्ष को मालूम हो गया है। इतने में चंडदेव का मन्त्री उग्रसेन तीन व्यक्तियों को साथ लेकर आता है

जिनमें एक तो गुप्तचर तुषार है और दो अन्य व्यक्ति हैं। तुषार चण्डोक को बताता है कि उन दोनों ने मेरे प्राण बचाए हैं। चंडसेन के परिचय पूछने पर वे बताते हैं कि वे अश्व विद्या धनुर्विद्या में प्रवीण हैं और दक्षिण देश के निवासी हैं किन्तु वहां दुर्भिक्ष पड़ जाने के कारण आश्रय लेने के लिये राजा चंडदेव के पास आये हैं क्योंकि राजा हर्ष के पास तो धार्मिक पाखंडी लोग ही आश्रय पाते हैं। योद्धा अपना नाम कीर्ति सेन बताता है और दूसरे का नाम महासेन है। राजा चंडदेव अपनी प्रशंसा सुन कर बड़ा प्रसन्न होता है और अश्व परीक्षा के उपरान्त उन्हें अपनी सेना में रख लेते हैं। कीर्ति सेन महासेन राजा चंडदेव के आश्रय में रहता है और महासेन राजा शशांक के आश्रय में। तुषार चंडदेव को बताता है कि उनके द्वारा फेलाया हुआ सम्पूर्ण कपटजाल छिन्न भिन्न हो गया है क्योंकि हर्ष के गुरु भर्गाचार्य और उनके शिष्यों ने सम्पूर्ण रहस्य खोल दिया है तथा हमारे द्वारा निष्कासित सामन्तों ने भी सम्पूर्ण रहस्य भेद कर दिया है। चंडदेव पूछता है कि स्थाणवीश्वर के बाह्य भाग से लेकर हर्ष के प्रसाद तक जो सुरंग निर्माण का कार्य यशस्वी कालिय आदि को समर्पण किया था उसका क्या परिणाम निकला, इस पर तुषार कहता है कि वे कालिय आदि तो शत्रुपक्ष के थे आपके पास भेद लेने के लिये आये थे। आज जब मैं सुरंग का वृत्तान्त जानने के लिये गया तो उन्होंने मुझे पकड़ लिया। तब इन्हीं दो वीरों ने मुझे छुड़ा कर मेरी जान बचाई है और मुझे यहां तक लाये हैं। यह बात सुन कर चंडसेन का कीर्तिसेन और महासेन नामक दोनों सुन्दर योद्धाओं पर अधिक विश्वास बढ़ जाता है।

चतुर्थ अंक में – अश्वविद्या में युवक तरुण को देखकर महाराज चंडसेन की रानी कलावती उस पर रीझ जाती है और अपनी दासी चतुरा से कीर्तिसेन को अपने पास बुला लेने की युक्ति सोचती है। चतुरा कीर्तिसेन को बुलाने भी जाती है किन्तु कीर्तिसेन बहुत उदासीनता से उत्तर देता है कि उसे महारानी से मिलने की इच्छा नहीं है। उसे तो अपना कार्य ठीक तरह से करना है। इस पर चतुरा एक दूसरी युक्ति सोचती है। जिस समय राजा चंडदेव उद्यान में अपनी रानी कलावती से मिलने जाता है उस समय रानी कलावती राजा को देखकर भी न देखने जैसे अभिनय करके अपनी सखी चतुरा को झूठ मूठ ही एक घटना सुनाती है कि उस दिन वाटिका में अकेली भ्रमण कर रही थी। उधर से सेनापति ने आकर मुझ पर कुदृष्टि डाली। मैंने सहायता के लिये शोर मचाया तो संयोग से कीर्तिसेन उधर से निकल आया और उसे देखते ही सेनापति भाग खड़ा हुआ। इस तरह कीर्तिसेन के कारण वह बच गई। चतुरा भी बनावटी रूप में कहती है कि यह रहस्य की बात तुम राजा से कहो। रानी उत्तर देती है कि मुझे यह बात राजा से कहते हुए डर लगता है। राजा उद्यान में प्रवेश करते सम्पूर्ण बात सुन चुकता है और प्रकट होकर रानी से कहता है कि उसने पुनः दोनों की सम्पूर्ण वार्तालाप सुन लिया है। वह शीघ्र ही सेनापति को जेल में डाल देगा और उसके स्थान पर कीर्तिसेन को सेनापति बनाएगा। रानी और चतुरा अपनी युक्ति की सफलता पर बहुत प्रसन्न होती हैं किन्तु इतने में ही कुंचकी आकर चंडदेव को एक पत्र देता है जिसे पढ़ कर घबराहट में चंडदेव मन्त्री को बुलाने की आज्ञा देता है। मन्त्री के आने पर उसे सेनापति को शशांक राज्य सीमा पर भेजने की और उसके स्थान पर कीर्तिसेन को सेनापति नियुक्त करने की आज्ञा देता है। दूसरी ओर राजा हर्ष और उनका मित्र चकोर शशांक राज्य की सीमा पर अपना शिविर डाल कर क्रोधित मुद्रा में शशांक के नाश और वध की घोषणा करते हैं। हर्ष अत्यन्त क्रोध में भर कर कहता है कि जिस व्यक्ति ने मेरे भगिनीपति और भाई का वध किया है मैं उसका समूल नाश कर दूंगा। इतने में द्वारपाल आकर चकोर को एक पत्र देता है जिसमें एक रहस्य श्लोक लिखा होता है। यह श्लोक वास्तव में चन्द्रिका नामक लड़की का लिखा होता है जिसने हर्ष और चकोर की पहले पहल उद्यान में भेंट होती है। वे दोनों पत्र का रहस्य जान वैसे ही कार्य करते हैं और युद्ध की तैयारी में लग जाते हैं।

पंचम अंक में – चंडदेव और उसका मित्र नन्दन परस्पर वार्तालाप करते हैं। नन्दन चंडदेव को बताता है कि कांकायन और शलंकायन जो आपके और शशांक के पर मित्र थे वे शत्रु पक्षीय हो गये हैं। इस पर चंडदेव बहुत

जिनमें एक तो गुप्तचर तुषार है और दो अन्य व्यक्ति हैं। तुषार चण्डोक को बताता है कि उन दोनों ने मेरे प्राण बचाए हैं। चंडसेन के परिचय पूछने पर वे बताते हैं कि वे अश्व विद्या धनुर्विद्या में प्रवीण हैं और दक्षिण देश के निवासी हैं किन्तु वहां दुर्भिक्ष पड़ जाने के कारण आश्रय लेने के लिये राजा चंडदेव के पास आये हैं क्योंकि राजा हर्ष के पास तो धार्मिक पाखंडी लोग ही आश्रय पाते हैं। योद्धा अपना नाम कीर्ति सेन बताता है और दूसरे का नाम महासेन है। राजा चंडदेव अपनी प्रशंसा सुन कर बड़ा प्रसन्न होता है और अश्व परीक्षा के उपरान्त उन्हें अपनी सेना में रख लेते हैं। कीर्ति सेन महासेन राजा चंडदेव के आश्रय में रहता है और महासेन राजा शशांक के आश्रय में। तुषार चंडदेव को बताता है कि उनके द्वारा फेलाया हुआ सम्पूर्ण कपटजाल छिन्न भिन्न हो गया है क्योंकि हर्ष के गुरु भर्गाचार्य और उनके शिष्यों ने सम्पूर्ण रहस्य खोल दिया है तथा हमारे द्वारा निष्कासित सामन्तों ने भी सम्पूर्ण रहस्य भेद कर दिया है। चंडदेव पूछता है कि स्थाणवीश्वर के बाह्य भाग से लेकर हर्ष के प्रसाद तक जो सुरंग निर्माण का कार्य यशस्वी कालिय आदि को समर्पण किया था उसका क्या परिणाम निकला, इस पर तुषार कहता है कि वे कालिय आदि तो शत्रुपक्ष के थे आपके पास भेद लेने के लिये आये थे। आज जब मैं सुरंग का वृत्तान्त जानने के लिये गया तो उन्होंने मुझे पकड़ लिया। तब इन्हीं दो वीरों ने मुझे छुड़ा कर मेरी जान बचाई है और मुझे यहां तक लाये हैं। यह बात सुन कर चंडसेन का कीर्तिसेन और महासेन नामक दोनों सुन्दर योद्धाओं पर अधिक विश्वास बढ़ जाता है।

चतुर्थ अंक में – अश्वविद्या में युवक तरुण को देखकर महाराज चंडसेन की रानी कलावती उस पर रीझ जाती है और अपनी दासी चतुरा से कीर्तिसेन को अपने पास बुला लेने की युक्ति सोचती है। चतुरा कीर्तिसेन को बुलाने भी जाती है किन्तु कीर्तिसेन बहुत उदासीनता से उत्तर देता है कि उसे महारानी से मिलने की इच्छा नहीं है। उसे तो अपना कार्य ठीक तरह से करना है। इस पर चतुरा एक दूसरी युक्ति सोचती है। जिस समय राजा चंडदेव उद्यान में अपनी रानी कलावती से मिलने जाता है उस समय रानी कलावती राजा को देखकर भी न देखने जैसे अभिनय करके अपनी सखी चतुरा को झूठ मूठ ही एक घटना सुनाती है कि उस दिन वाटिका में अकेली भ्रमण कर रही थी। उधर से सेनापति ने आकर मुझ पर कुदृष्टि डाली। मैंने सहायता के लिये शोर मचाया तो संयोग से कीर्तिसेन उधर से निकल आया और उसे देखते ही सेनापति भाग खड़ा हुआ। इस तरह कीर्तिसेन के कारण वह बच गई। चतुरा भी बनावटी रूप में कहती है कि यह रहस्य की बात तुम राजा से कहो। रानी उत्तर देती है कि मुझे यह बात राजा से कहते हुए डर लगता है। राजा उद्यान में प्रवेश करते सम्पूर्ण बात सुन चुकता है और प्रकट होकर रानी से कहता है कि उसने पुनः दोनों की सम्पूर्ण वार्तालाप सुन लिया है। वह शीघ्र ही सेनापति को जेल में डाल देगा और उसके स्थान पर कीर्तिसेन को सेनापति बनाएगा। रानी और चतुरा अपनी युक्ति की सफलता पर बहुत प्रसन्न होती हैं किन्तु इतने में ही कुंचकी आकर चंडदेव को एक पत्र देता है जिसे पढ़ कर घबराहट में चंडदेव मन्त्री को बुलाने की आज्ञा देता है। मन्त्री के आने पर उसे सेनापति को शशांक राज्य सीमा पर भेजने की और उसके स्थान पर कीर्तिसेन को सेनापति नियुक्त करने की आज्ञा देता है। दूसरी ओर राजा हर्ष और उनका मित्र चकोर शशांक राज्य की सीमा पर अपना शिविर डाल कर क्रोधित मुद्रा में शशांक के नाश और वध की घोषणा करते हैं। हर्ष अत्यन्त क्रोध में भर कर कहता है कि जिस व्यक्ति ने मेरे भगिनीपति और भाई का वध किया है मैं उसका समूल नाश कर दूंगा। इतने में द्वारपाल आकर चकोर को एक पत्र देता है जिसमें एक रहस्य श्लोक लिखा होता है। यह श्लोक वास्तव में चन्द्रिका नामक लड़की का लिखा होता है जिसने हर्ष और चकोर की पहले पहल उद्यान में भेंट होती है। वे दोनों पत्र का रहस्य जान वैसे ही कार्य करते हैं और युद्ध की तैयारी में लग जाते हैं।

पंचम अंक में – चंडदेव और उसका मित्र नन्दन परस्पर वार्तालाप करते हैं। नन्दन चंडदेव को बताता है कि कांकायन और शलंकायन जो आपके और शशांक के पर मित्र थे वे शत्रु पक्षीय हो गये हैं। इस पर चंडदेव बहुत

दुखी होता है। इतने में महामन्त्री आकर सूचना देता है कि हर्ष की सेना ने सम्पूर्ण मगध राज्य को अपने अधीन कर लिया है और एक विशाल व्यक्ति जो कहीं से आकर महाराज शशांक के आश्रय में रह रहा था पहले तो उसने अपना विश्वास जमा लिया लेकिन बाद में उसी ने शशांक को हर्ष के अधीन करवा दिया। और अब हर्ष की सेना आपके राज्य की सीमा पर आकमण कर रही है। इस समाचार से चंडदेव को बहुत दुःख होता है और वह अपने नये नियुक्त सेनापति को युद्ध के लिये भेजना चाहता है किन्तु वही पुरुष बताता है कि आज प्रातः काल से ही नये सेनापति का कुछ पता नहीं है। इस पर चंडदेव स्वयं युद्ध के लिये उद्यत होता है।

दूसरी ओर से शिष्यों सहित भर्गाचार्य प्रवेश करके सभी नागरिकों का आश्वासन देते हैं कि अब दुःशासन से तुम्हारी मुक्ति हो गई। अब तुम महाराज हर्ष की प्रजा हो। अब तुम्हें किसी प्रकार का दुःख नहीं होगा। इतने में चंड को मार कर हर्ष आते हुए दिखाई देते हैं और उनके साथ ही शरीर को ढक कर आने वाला एक अन्य व्यक्ति आता है। भर्गाचार्य के पूछने पर आवृत शरीर वाली स्त्री बोलती है कि वह पुरुष नहीं है। हर्ष और भर्गाचार्य इत्यादि सभी को इस बात का आश्चर्य होता है। इतने में कपड़ा उतार कर प्रतिमा सम्मुख खड़ी होकर कहती है कि मैं वही लड़की हूं जिसकी पहले पहल उपवन में आपसे भेंट हुई थी। दूसरी ओर से चकोर भी अपनी प्रिया चन्द्रिका के साथ आता है। चन्द्रिका और प्रतिमा परस्पर गले मिलती हैं और एक दूसरे द्वारा अभिनीत नाटक की प्रशंसा करती हैं। भर्गाचार्य हर्ष को बताते हैं कि चंड और शशांक द्वारा मारे गये शन्ति वर्मा की कन्या प्रतिमा है ओर उसके मन्त्री की कन्या चन्द्रिका है। इन्होंने बचपन में ही युद्ध विद्या का अध्ययन किया था, अपने राज्य में विप्लव हो जाने के कारण आश्रय लेने के लिये सीवीश्वर आई थीं। अब तुम इस प्रतिमा नामक कन्या को पत्नी रूप में ग्रहण करो और चकोर भी चन्द्रिका को पत्नी के रूप में स्वीकार करें। इसके पश्चात् भर्गाचार्य नागरिकों को सम्बोधित करके कहते हैं कि जिनके प्रताप से तुम दुष्ट चंड के शासन से मुक्त हुए हो ये वही महाराज हर्ष हैं। इसके पश्चात् भरत वाक्य के उच्चारण के साथ ही इस नाटक की समाप्ति होती है।

## चरित्र चित्रण

**हर्ष** – ' हर्ष दर्शनम् ' का नायक हर्ष, एक ऐतिहासिक व्यक्ति है और प्रस्तुत लेखक ने नायक के चरित्र के साथ पूर्णतया न्याय किया है। ' हर्ष दर्शनम् ' का नायक अत्यधिक वीर और कूटनीतिज्ञ तो है ही साथ ही अत्यन्त धार्मिक, दानी और गुरूजनों का आदर सत्कार करने वाला भी है। आश्रय चाहने वालों के लिये उसका द्वार सदैव खुला है तभी दो लड़कियों प्रतिमा और चन्द्रिका के आश्रय मांगने पर वह कहता है–

हर्ष – आश्रयाभवात् राजपरिग्रहस्य इच्छा चेत् तदनुरूपं भवेदेव।
अर्थात् आश्रय के अभाव में यदि राज्य की सहायता की अपेक्षा हो तो ऐसा ही हो।

हर्ष के गुरू भर्गाचार्य उसे प्रत्येक कार्य में सहायता देते हैं तो हर्ष के लिये भी गुरू से बढ़ कर और कोई शक्ति नहीं है। इतने बड़े साम्राज्य में कहां क्या हो रहा है इस रहस्य का ज्ञान कुछ तो गुरू अपनी दिव्य दृष्टि से ही लगा लेते हैं और कुछ अपने विस्तृत शिष्य मंडल के द्वारा। हर्ष के शत्रु चंडदेव और शशांक द्वारा जो कपट जाल फैलाया गया था उसका रहस्योद्घाटन भर्गाचार्य ने ही किया था। इसलिए गुरू के प्रति कृतज्ञता से भर कर हर्ष कहता है –

हर्ष – अहो देवेन्द्रस्यापि गुरोरपेक्षा। किं पुनर्मानवानाम् ।

गुरूदेव दृढ़ा नौकां यवा धरपिवासवाः । सुखेनैवाभवन् लोके राज्यसागरपारगाः ।

अर्थात् इन्द्र को भी गुरु की अपेक्षा होती है ऐसी अवस्था में मनुष्यों का क्या कहना। गुरु ही एक ऐसी दृढ़ नौका है जिस पर पृथ्वी के वासी राज्य रूपी सागर से सुखपूर्वक पार हो जाते हैं। गुरु के आदर – सत्कार करने में तो हर्ष अद्वितीय हैं ही, सभा पंडित और कवियों के प्रति उनकी सद्भावना भी अत्यन्त स्तुत्य है। उनकी सभा सदैव विद्वज्जनों से सुशोभित रहती थी।

पश्यन्तु तत्र भवन्तः सभ्याः । सम्राजः हर्षदेवस्य इयं पंडित रत्नमंडिता सभा आसेन वीरमयी, मयूरेण चित्रमयी, मातंगेन श्रीमयी दिवाकरेण तेजोमयीति भाति।

हे सभ्यो इधर ज़रा ध्यान दीजिए। सम्राट हर्ष देव की यह पंडित रूपी रत्नों से मंडित सभा बाके कवि से वीरमयी हैं। मयूर कवि के कारण चित्रमयी है। मातंग के कारण श्रीमयी है। दिवाकर के कारण तेजोमयी है।

हर्ष स्वयं भी अत्यन्त विद्वान् उदार और दानी थे किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि उनमें वीर रस की उतनी उद्दामता नहीं थी जब उन्हें क्रोध आता था तो शत्रु का बच निकलना असंभव होता था। शशांक ने उनके बड़े भाई राज्यवर्धन का वध किया था। अब हर्ष उसका प्रतिशोध लेने आते हैं तो उसका वध करके और उसका राज्य तहस नहस करके ही जाते हैं। उनके क्रोध के सामने ठहरने की किसे हिम्मत है ?

हर्षः – ( सप्तक्रोधम् ) रे रे नराधम। अस्मत्परमपूज्यस्य ज्येष्ठभ्रातुः राज्यवर्धनस्य उपांशुघातिन् इदानी क्व गच्छसि। रे क्षुद्रपशो। अद्यत्यमात्मानं व्याघ्रा घातं जानीहि ।

न त्वं क्षत्रिय वीर्य जोऽसि पिशुनः प्रच्छन्न शाला वृकः ।
मित्राणां हितकांक्षिणामपि महान् विश्वासघाती खलः ।।
हिंस्त्रेभ्यः किल भोजनार्थमचिरात दोस्यामि हस्तास्फुरत ।
खड्गाऽऽघात विभिन्नवर्ष्म। विगल द्रवताऽऽक्त गात्राणि ते ।।

अर्थात् तुम क्षत्रिय नहीं हो वरन् तुच्छ छिपे हुए श्रृगाल हो। अपने मित्रों के और हित चाहने वालों के साथ महान् विश्वासघात करने वाले हो। शीघ्र ही खड्ग के आघात से काटे गये और रक्त से सने हुए तुम्हारे अंगों को हिंस्र जन्तुओं को भोजन के लिये हाथ से फेंक फेंक कर दूंगा।

सम्पूर्ण उत्तर दिग्विजय कर चुकने के पश्चात् हर्ष अपने हृदय की अपार विशालता का परिचय देते हैं। वे नगर भर में घोषणा करवा देते हैं।

भोः भोः । मे प्रियपौराः । श्रीमत्कृतसत्कारं स्वीकृत्य श्रीमत्प्रदत्तं यद्धनं तत्सर्वमपि लोककल्याणायात्रैव स्थापितमिति सानन्दं समुदघुष्यते। तथा व साम्राज्यान्तर्गतानां लोकानां हिताय प्रतिवर्ष पंचकोटि संख्याकस्य धनराशेः व्ययोभवतीति घोषणाऽपि क्रियते।

हर्ष का मित्र चकोर भी आरम्भ से अन्त तक हर्ष का साथ देता है और प्रत्येक स्थिति में सहायता पहुंचाता है।

भर्गाचार्य —— जिस प्रकार चन्द्रगुप्त मौर्य पर चाणक्य का वरद हस्त था उसी प्रकार हर्ष को भर्गाचार्य का संरक्षण प्राप्त था। मुनि वृत्ति होने पर भी लोक कल्याण की भावना से वे सम्पूर्ण देश का भ्रमण करते थे और प्रत्येक बुरे कार्य को रोकने का प्रयत्न करते थे। राज्य विषयक सम्पूर्ण षड्यन्त्रों की सूचना उन्हें अपने शिष्य मंडल से मिलती रहती थी और वे सभी सूचनायें राजा हर्ष के पास भेज दिया करते थे। यही कारण था कि शत्रुओं का कोई भी षड्यंत्र सफल नहीं हो सकता था। इस विषय में स्वयं भर्गाचार्य कहते हैं :

सर्वोत्कर्ष भजति भुवने यः सदा तं दिवषन्ति, ये नो लोके प्रबल नृपतेः सत्पदं गन्तुमीशाः ।

तैः स्वार्थांधैः विपुलविभवैः, मत्सरग्रस्त चितैः मन्दाक्रान्तं कृतमिति परैर्ज्ञायते राज्यभेतत ।।

राज्य कार्य को देखते हुए भी और चतुर्दिक अपनी दिव्य दृष्टि का प्रसार करते हुए भी वे अपने दैनिक जीवन में आचार व्यवहार के विषय में सजग थे। मध्याह्न पूजा का समय होने पर वे सभी अन्य कार्य स्थगित कर देते हैं और स्नान के लिये चले जाते हैं ——

भर्गाचार्यः — वत्सौ वरुणारुणौ । अयं मध्याह्न = सन्ध्यासमयः इति विभाकरः करैर्मां निबोधयति। तस्मादहं अस्याः सरस्वत्याः तीरात् स्नानविधि समाप्य यावदागच्छामि तावत् युवाभ्यां अस्य महतः शाल्मली तरोरथस्ताद् आसनमास्तीर्य कानिचित फलानि आहर्तव्यानि।

अर्थात् हे वत्स वरुण और अरुण अपनी किरणों द्वारा मुझे सूचित कर रहा है कि अब मध्याह्न सन्ध्या का समय हो गया है इसलिए मैं सरस्वती के तट पर जब तक स्नान करके आता हूं तब तक तुम दोनों इस बड़े शाल्मली वृक्ष के नीचे आसन फैला कर कुछ फल ले आओ।

इस प्रकार आध्यात्मिक जीवन को अक्षुण्ण रखते हुए और साथ ही साथ राज्य कार्य करते हुए प्राचीन राज्य गुरू अपना जीवन यापन करते थे।

प्रतिमा और चन्द्रिका कलावती —— नाटक की तीन स्त्री पात्रियां भी अपनी अपनी विशेषता रखती हैं। प्रतिमा और चन्द्रिका कमशः राजपुत्री और सचिव पुत्री हैं। और अपने वंश और अधिकार के अनुसार ही प्रतिमा राजा हर्ष के प्रति आकर्षित होती है और चन्द्रिका हर्ष के मित्र चकोर के प्रति। किन्तु वे सभी आसक्त न होकर अपने कर्तव्य को पूरी तरह निभाती हैं और जब पूर्णतया अपना कर्तव्य कर चुकती हैं तो अपने अभीष्ट को प्राप्त करती हैं। उन्हें आरम्भ से ही लेकर युद्ध की शिक्षा दी जाती है जिससे वे अपना कार्य करने में सफल होती हैं। दोनों ही कन्यायें बहु कुशाग्र बुद्धि हैं तभी तो उनके द्वारा खेले गये नाटक को बड़े गुप्तचर भी न पकड़ पाये और सबसे बड़ी बात यह है कि लड़की हो कर लड़के का वेश बनाना और फिर शत्रुओं के घर रह कर उन पर पूर्णतया अपना विश्वास जगा कर अपनी अभीष्ट सिद्धि करना यह द्योतित करता है कि हर्ष के समय में लड़कियों को कितनी सर्वांगीण शिक्षा दी जाती थी। वे केवल गृहिणी के कार्य में ही कुशल नहीं होती थी वरन् समय आने पर अश्व पर चढ़कर तलवार चलाने और युद्ध करने में भी वे पीछे नहीं हटती थीं। उनके सभी कार्य रहस्यमय थे, शत्रु पक्ष के गुप्तचर तुषार को छुड़ा कर उसे शत्रुओं के

पास पहुंचाना शत्रुओं में अपने विश्वास दिलाने का एक सबल कारण था और इसी के आधार पर वे लगातार सफल होती गई।

सूत्रधार प्रतिमा और चन्द्रिका का परिचय देते हुए स्वयं कहता है –

बाल्ये वयसि एव प्रतिभा स्वमातुलात् अतिनिपुरातया युद्धशिक्षां गृहीत वती। तत्रैव चन्द्रिका मि ——

एक और चामत्कारिक बात यह है कि दोनों कन्याएं प्रथम अंक में और अन्तिम पंचम अंक में ही प्रकट होती हैं किन्तु उनका कार्य लगातार चलता रहता है और वे सम्पूर्ण कार्य अदृष्ट होकर ही करती हैं। उनका रहस्योद्घाटन अन्त में जाकर होता है कि वे पहले जो कुछ भी रहस्य मय हुआ उनकी कार्यकत्री ये दोनों कन्याएं थीं।

कलावती —— शत्रु पक्ष के दुष्ट राजा चंडदेव की पत्नी है। वह एक कामुक स्त्री है। अपने पति को कामुकता के प्रतिशोध स्वरूप वह भी किसी सुन्दर पुरुष से काम केलि करना चाहती है और किसी भी सुन्दर पुरुष को यदि वह चाहती है तो किसी न किसी प्रकार उसे पाने का प्रयत्न करती है। पुरुष वेश धारी प्रतिमा पर रीझ कर वह उसे अपनी चेटी चतुरा द्वारा अपने पास बुलाती है। जब वह उदासीनता प्रकट करती है तो एक और कपट जाल बिखेरती है जिसमें फंस कर चंडदेव प्रतिमा को सेनापति बना देता है। किन्तु रानी कलावती उपने कार्य में सफल नहीं हो पाती —— एक तो प्रतिमा के उसके प्रति उदासीन होने से (क्योंकि वह स्वयं स्त्री थी) और दूसरे चंडदेव के ऊपर आ पड़ी युद्ध की आपत्ति के फल स्वरूप।

कलावती उन अनेक रानियों का प्रतिनिधित्व करती है जो कामुक राजाओं की रानी कहलाने का अधिकार तो रखती हैं लेकिन स्वयं किसी न किसी अन्य व्यक्ति में आसक्त होकर समय – यापन करती हैं। उसके लिए उनका नैतिक स्तर अत्यन्त गिर भी जाये तो इसकी उन्हें चिन्ता नहीं होती।

## भाषा और शैली

विषय, भाषा और कथानक के दृष्टिकोण से नाटक उत्तम कोटि का है। लेखक की वर्णन शक्ति अद्भुत है एक दृश्य का या व्यक्तित्व का वर्णन करते समय एक चित्र सा खिंच जाता है। नगर की रचना का कितना सुन्दर चित्रण है –

प्रोत्तुंगमेरु शिखराग्रसमान हर्म्य काम्यं सुरैरपि च यत् रचना विशेषात।
रम्यं विकासि वनितावदनारविन्दैः साम्यं यदीय नगरं सरसां विधत्ते ।।

और साथ ही कविवर मयूर द्वारा हर्ष की प्रतिमा का चित्र कितना भव्य है ——

राजन् विभावसुरिवात्र करैः समग्रैः आदाय लोकजलधेर्धनतोयमुच्चैः।
तस्य स्थितं प्रकुरुमे धनकोषमध्ये काले तु तुंगवति लोक हितार्थमेव ।।

लेखक का अनुप्रास प्रिय अलंकार है। इसका एक सुन्दर उदाहरण देखिए — केवल अनुप्रास ही नहीं सुन्दर वनिताओं के यौवन का चित्रण होने के कारण श्रृंगार रस का उद्दीपक भी है —

कश्चित्कांचनकांचि किंकिणिरवैः कुर्वन्ति कर्णोत्सवम् (अनुप्रास)
कासां नुपुर सिंजित कलरवं हंसादिका ऽऽ कर्षकम् ।
कासां सलिनितम्बमन्दगमनं यत्रेत्रयोः कौतुकम।
काश्चित् कूणित दीक्षरौः सुललितैः चित्तव्यथं कुर्वते ।।

'ल' का अनुप्रास भी दर्शनीय है —

प्रमदा मदुवल्लरीः मृदुहस्तेन लुनन्ति लीलया।
मृदुभिस्तु कटाक्षपातनैः युवचित्तं दलयन्त्यपि हरुवम् ।।

(चीन देश के वासियों का भारत में आने का क्या प्रयोजन होता था इसकी ओर लेखक ने प्रकाश डाला है। भर्गाचार्य से उनके शिष्य पूछते हैं कि ह्वेन सांग का भारत आने का क्या प्रयोजन हो सकता है तब भर्गाचार्य बताते हैं —

विदेशीयनां विषये तु एवं प्रतिभाति। एते खलु केवलं स्वदेश – प्रेरण एव परदेशं प्राप्य तत्र संस्कृते गाढ़तरं अध्ययनं कुर्वन्ति। प्रसंगवशात् शिक्षा सौकर्यार्थन् अभिमत धर्मस्यदीक्षामपि गृहन्ति। सर्वत्र आहि यमानाः देशेस्मिन् कीदृशः आचारविचारः धर्मग्रन्था प्रजासुकिपती धर्म श्रद्धा अनुशासननिष्ठा राजाप्रजयोः परस्पर विषयेः कीदृशः आदरः कियत् सैन्यबलं लोकेषु धैर्य शौर्य वर्तते वा न वा मन्त्रिमंडलस्य च सेनापतेः कीदृगैकमत्यं, ज्ञानविज्ञानयोः कीदृशी संपन्नता प्रगतिश्च इत्यादिकं किं बहुना सर्वमपि निपुरातरं समीचीनासमीचीनं निरीक्ष्य विलिस्य च प्रकाशयन्ति। ऐतिस्यदृष्टया अस्य महानुपयोगः इति ते मन्वते।

कहीं कहीं पर रूपक की अनुपम छटा है —

निशोद्गतेन तमसा ग्रस्येत प्रागमुखं यदा।
तदा तद् ध्वंसनं कर्तुं कः शब्तो भानुना विना।।

# विश्वमोहनम्

गेटे के 'फाउस्ट' नामक नाटक पर आधारित यह एक सामाजिक नाटक है। नाटक सात अंकों में विभाजित है। इसके लेखक एस0 एन0 ताडपत्रीकर हैं।

पाश्चात्य भाषा से अनूदित होने पर भी नाटक की यह विशेषता है कि इसमें भास, कालिदास और भवभूति जैसे नाटककारों की नाटक सरणि का अनुसरण किया गया है जबकि संस्कृत भाषा में ऐसे नाटकों का सर्वथा अभाव ही दृष्टिगोचर होता है।

गेटे का नाटक एक ऐसे व्यक्ति पर आधारित है जिसके विषय में यह विश्वास किया जाता है कि वह मध्यकालीन युग का एक ऐतिहासिक व्यक्ति था। किसी किसी के मत में वह अर्धविक्षिप्त सा था और किसी के अनुसार उसे औषध और इन्द्रजाल की विद्या का अच्छा ज्ञान था। किंवदन्ती है कि उसका सम्बन्ध निशाचरों के साथ था। प्रेतात्मा के साथ बन्धन होने के कारण उसे सभी भौतिक सुखों की उपलब्धि थी किन्तु जब समय समाप्त हुआ तो उसी प्रेतात्मा ने उसे अपना शिकार बनाया। सब कुछ होने पर भी अन्त में वह एक अत्यन्त निराश व्यक्ति होकर मरा। संक्षेप में कहा जाय तो कहानी का भावाशय यह होगा कि यदि संसार की सम्पूर्ण सम्पत्ति मिल जाय किन्तु मनुष्य की आत्मा खो जाय तो इसका क्या परिणाम होगा। गेटे ने जो अनुभव किया था वह अपने में इतना विशाल था कि उसे नाटक के दो भाग करने पड़े। ताडपत्रीकर ने नाटक के प्रथम भाग के आधार पर ही नाटक लिखा है। नाटक अक्षरश गेटे के नाटक का अनुवाद है यह कहना अनुचित होगा क्योंकि कई स्थानों पर मूल नाटक में और प्रस्तुत नाटक में भेद है, इस भेद के दो कारण हैं। एक तो यह कि प्रस्तुत नाटक की पृष्ठभूमि है भारत और दूसरे लेखक कालिदास आदि प्राचीन महान् नाटककारों के पथ का अनुसरण करते हुए नायक को इतना गिराना नहीं चाहता जितना कि मूल नाटक में वह गिर जाता है।

मूल नाटक के पांच प्रधान पात्र हैं : —

फास्ट — नायक

| | | |
|---|---|---|
| मारग्रेट | – | नायिका |
| मार्था | – | दूती |
| वेलन्टाईन | – | मारग्रेट का भाई |
| मेफिस्ट्रोफिलस | – | प्रेतात्मा |

प्रस्तुत नाटक में वही चरित्र, प्रभाकर, हरिणी, राघा, तारक और मोहन के रूप में आते हैं।

नाटक लिखते समय लेखक के सामने सदैव भारतीय जीवन के आदर्श और दार्शनिक विश्वास रहे हैं। इसीलिए कई भेद लेखक ने जान बूझ कर किये हैं।

मूल नाटक में नायक प्रत्यक्ष रूप से नायिका के भाई की मृत्यु का कारण है क्योंकि वह इन दोनों के प्रेम में बाधक-स्वरूप है। नायक ही नायिका की मां और स्वयं नवजात शिशु सहित नायिका का घातक है। किन्तु प्रस्तुत नाटक का नायक प्रभाकर इनमें से किसी भी दोष का भागी नहीं है। ताडपत्रीकर ने अन्त में नायक और नायिका दोनों को ही जीवित, और सुन्दर जीवन यापन करने के योग्य बना कर नाटक को दुःखान्त बनने से रोक लिया है। विश्वमोहन के नायक नायिका जो दुःख भोगते हैं वह पूर्णतया वास्तविक जगत की उपज हैं। मोहन और राधा भी पाश्चात्य जगत के प्रेतात्माओं के सदृश नहीं। वे केवल मनुष्य की क्षुद्र वासनायें हैं जिनके वश में होकर मनुष्य बुरा कार्य करता है और दुःख उठाता है किन्तु वही दुःख उसे पवित्र जीवन व्यतीत करने के योग्य बनाते हैं। प्रस्तुत नाटक का यही उद्‌देश्य है।

सात अंकों का होने पर भी नाटक का कलेवर छोटा है इसलिए अभिनय की दृष्टि से सर्वथा उपयुक्त है।

## कथानक

नायक प्रभाकर अत्यन्त अध्ययनशील होने पर भी, प्रगाढ़ पंडित होने पर भी, शान्ति नहीं प्राप्त कर सकता। इसका उसे बहुत दुःख है। उसका शिष्य आकर उसे समझाता है कि आप इतने विद्वान् होने पर भी अशान्त चित्त

क्यों रहते हैं? आपके सम्मान में विद्वत्परिषद् ने एक सभा का आयोजन किया है जहां आपको सबसे उच्च विद्वान् घोषित किया जाएगा। प्रभाकर को इस समाचार से बड़ी प्रसन्नता होती है। सम्मानित होकर लौटते समय उसकी भेंट अपने मित्र मोहन से होती है जो सदैव उसकी विद्वता की हंसी उड़ाया करता है और उसे संसार के सुखों के प्रति जागरूक होने की सलाह दिया करता है। इस समय फिर मोहन उसे जबरदस्ती घुमाने के लिए ले जाता है। फिर थक जाने पर उसे पान गृह में भी ले जाता है। वहां पर लोगों की शृंगार चेष्टाएं देख कर प्रभाकर का चित्त बड़ा खिन्न होता है। परिचारिका के अपमानित करने पर भी एक व्यक्ति अपनी कामुक चेष्टाएं नहीं छोड़ता। इस तरह के दृश्य देखकर प्रभाकर को बहुत दुःख होता है। किन्तु थोड़ी ही देर के बाद उसका साक्षात्कार एक ऐसी युवती से होता है जिसके प्रति वह स्वयं आकर्षित हो जाता है। हरिणी नाम की वह युवती अपनी सखी से बिछुड़ जाती हे इसलिए चकित सी इधर उधर देख रही होती है। प्रभाकर उससे बात करना चाहता है किन्तु किसी युवती से बात करने का अभ्यास न होने के कारण उसकी हिम्मत नहीं पड़ती। इतने में मोहन, जो अपनी सखी से मिलने के लिये बाहर गया था, प्रभाकर के पास लौट आता है। प्रभाकर को अन्यमनस्क देखकर कारण पूछता है और परिणाम स्वरूप हरिणी का परिचय पूछता है। इसके पश्चात् हरिणी प्रभाकर के प्रति आकर्षित हो जाय इसलिए वह कट्टिनी राघा का आश्रय लेता है। राधा के घर हरिणी आती-जाती थी। इसलिए राधा इस कार्य में सफल हो जाती है। प्रभाकर और हरिणी प्रति दिन मिलते हैं। उनका परिचय घनिष्ठता में बदल जाता है। प्रभाकर हरिणी के जाल में ऐसा फंसता है कि उसे अपना अध्ययन-अध्यापन कुछ भी स्मरण नहीं रहता। वह सदैव हरिणी का सान्निध्य चाहता है। इस बात का पता हरिणी के भाई को लग जाता है। हरिणी और उसका भाई निर्धन हैं। इसलिए भाई उसे बहुत कोसता है कि तूने धन और काम के वश में होकर अपने पुरखों की इज्जत मिट्टी में मिला दी। हरिणी अनजाने में पाप कर चुकी थी। अब उसे बड़ा पश्चाताप होता है। वह कुएं में डूब मरती है। इधर हरिणी का भाई तारक अपनी बहन की मृत्यु के लिए प्रभाकर को दोषी ठहराता है और जन समूह इकट्ठा करके प्रभाकर को बुरा भला कहता है। प्रभाकर यह सोच कर कि कहीं यह मुझे मार न डाले चुपचाप एकान्त पथ द्वारा शहर से बाहर आ जाता है और एक आश्रम में शरण लेता है। दूसरी ओर उसी आश्रम का शिष्य जब हरिणी के कुएं में गिरने की आवाज सुनता है तो हरिणी को उठा लेता है और परिचर्या द्वारा उसे स्वस्थ कर लेता है। आश्रम में प्रभाकर और हरिणी का पुनः साक्षात्कार होता है। उसी समय आश्रम के उपाध्याय ऋषि विवेक पहुंच जाते हैं। वे इन दोनों को समझाते हैं कि पहले किये गये दुष्कर्मो के प्रभाव को, वर्तमान के अच्छे कार्य मिटा सकते हैं। प्रभाकर के यह पूछने पर कि मुझे दुष्कर्म में प्रवृत्त करने वाला मोहन और हरिणी को पथ-भ्रष्ट करने वाली राधा कहां है। विवेक कहता है कि उनका

प्रत्यक्ष दर्शन करना तो असम्भव है क्योंकि वे सबके मन के अन्दर रहते हैं। विवेक योग द्वारा प्रभाकर और हरिणी को मोहन और राधा का प्रत्यक्षीकरण करवाते हैं। राधा और मोहन के परस्पर संवाद से स्पष्ट हो जाता है कि स्वर्ग और नरक अपनी मानसिक उत्पत्ति हैं जो जिसे अच्छा लगता है वह वही करता है।

अन्त में मोहन और राधा दोनों यम के पास जाते हैं। यम उन दोनों की बड़ी प्रशंसा करते हैं कि वे जगत् में बड़ा महान् कार्य कर रहे हैं। राधा द्वारा भरत वाक्य कहलवा कर नाटक की समाप्ति होती है।

## चरित्र चित्रण

लेखक ने यद्यपि कथा-सूत्र पाश्चात्य जगत् से लिया है तथापि उसने सभी पात्रों का भारतीयकरण कर दिया है। अब वे भारतीय भूमि पर चलने वाले पात्र हैं। उनके विश्वास, उनके क्रिया कलाप सभी भारतीय हैं।

नायक प्रभाकर तो मानो भारतीय दार्शनिकता का अक्षरशः अनुसरण करने वाला विद्वान् है। वह सदैव गूढ़ तत्त्वों की खोज में लगा रहता है। किन्तु इस उच्च चिन्तन के पश्चात् भी अब जब उसे सुख या शान्ति की प्राप्ति नहीं होती है तो वह विक्षुब्ध हो उठता है और कहता है –

मीमांसा न सुखाय पाणिनिनयोऽप्यार्तस्य संक्रन्दितं
चर्चा पर्वतवह्निधूमबहुला व्यर्था, न सा शान्तये।
न्यायस्था अपि संगता घटपटा नष्टाः समस्ताः परे
वेदान्तोऽपि न रज्जुसर्पसदृशः शन्तिं ददातीह मे।।

अर्थात् मीमांसा सुख के लिए नहीं है, पाणिनि का न्याय भी आर्त (=पीडित, दुःखी) व्यक्ति का क्रन्दन मात्र है। पर्वत, आग, धुआं इनकी चर्चा भी व्यर्थ है, वह शान्ति प्रदान नहीं कर सकती। समस्त नैयायिक भी घट और पट में पड़कर नष्ट हो गये हैं। (वेदान्त भी) रज्जुसर्प सदृश मुझे यहां शान्ति नहीं दे रहा।

यह तो ठीक है कि शास्त्र उसे आन्तरिक शान्ति नहीं दे पाते। किन्तु यह बात भी उतनी ही सत्य है कि शास्त्र के बिना वह जीवित भी नहीं रह सकता।

शैली तथा साहित्यिक दृष्टिकोण–

श्री ताडपत्रीकर का 'विश्वमोहनम्' पूर्णतया भारतीय है। कथानक इसका पाश्चात्य से युक्त होने पर भी प्रस्तुति इसकी भारतीय है। नायक प्रभाकर हरिणी को देखने से पहले अत्यन्त विद्वान्, सदैव अध्ययन में रत रहने वाला और सांसारिक भोग विलासों से दूर भागने वाला था किन्तु हरिणी को देखने के पश्चात् वह अत्यन्त कामी, अध्ययन से विमुख, बिल्कुल साधारण पुरुषों की तरह व्यवहार करने लगता है। ऐसी अवस्था में शिष्य उसके परिवर्तित व्यवहार को बड़ी शीघ्रता से देख लेते हैं। पहले के स्नेहमय आचार्य अब एक साधारण पुरुष बन गये हैं यह शिष्यों की दृष्टि से जब छिपा नहीं रहता तब वे अत्यन्त संतप्त होकर कहते हैं–

आचार्योऽयं स्नेहपूर्वं प्रपश्यं –

स्तन्वंग्यास्तान्मुग्धलीलाविलासान्।

विश्वामित्रो मेनकायां तपस्वी

कामाविष्टस्तद्यथेदं तथैव।।

[1]

हमारे आचार्य अत्यन्त स्नेह से उस तन्वंगी की विलास लीलाएं देख रहे हैं। उन्हें देख कर ऐसा प्रतीत होता है मानों तपस्वी विश्वामित्र मेनका के इन्द्रजाल में फंस गया हो।

तपस्व विद्वान् की विश्वामित्र से उपमा देने में मानो सम्पूर्ण वातावरण ही भारतीय हो जाता है।

यदि नीति का अवलोकन किया जाय तो प्रेम का महत्व ही न रह जाय। प्रेम तो सभी बन्धनों को तोड़ कर स्वच्छन्दता का अनुमोदक है। इसीलिए प्रभाकर और हरिणी परस्पर समत्व की भावना से पूर्णतया रहित हैं लेकिन

---

1 प्रथम अंक, श्लोक, पृ0 3

उसी ( प्रेम-प्राप्ति ) के लिये हैं।

[2]

लेखक ने स्थान स्थान पर सुन्दर सूक्तियों का भी प्रयोग किया है यथा ––

इदं श्रेय इदं श्रे इत्यत्र यव्युत्थितो जनः।

यस्तु यत्रैव रमते स तं धर्ममुपासते।।[3]

अर्थात् यह कल्याणकारी है, यह कल्याणकारी है, लोग इसी में फंसे हुए हैं, (वास्तविकता तो यह है कि) जिसको जो कार्य अच्छा लगता है वह वही कार्य करता है।

लेखक गीता से अत्यन्त प्रभावित है। इसलिए गीता के श्लोक को उद्धृत करना नहीं भूलता। जिस समय प्रभाकर और हरिणी अपने पहले जीवन को समाप्त कर नवीन और पवित्र जीवन यापन करने की शपथ लेते हैं उस समय लेखक स्वयं दृढ़ विश्वास के साथ कहता है कि मनुष्य और समाज जब बुराई की अच्चतम सीमा पर पहुंच जाता है तो भगवान् स्वयं अवतार लेकर अधर्म का नाश और धर्म की स्थापना करते हैं। गीता का प्रसिद्ध श्लोक –:

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।

धर्मसंस्थापनार्थाय संभवेच्च युगे युगे।।[4]

लेखक को उसी में किञ्चित् परिवर्तन कर (सम्भवामि के स्थान पर सम्भवेच्च पाठ बना कर) उसने अपनी कृति में इसे अपना लिया। सबसे उपयुक्त लगा।

---

2तृतीय अंक, श्लोक, पृ0 15

2 वही, पृ0 16

3 वही, पृ0 15

3 स्पतम अंक, श्लोक, पृ0 34

उपासते बहुवचन का प्रयोग है। सः इस एकवचनान्त सर्वनाम के साथ उसका प्रयोग अनुचित है।

4 स्पतम अंक, श्लोक, पृ0 34

फिर भी उनमें परस्पर प्रेम हो जाता है। हरिणी इसी तथ्य को भयभीत होकर प्रभाकर के सन्मुख रखती है ——

समं न वित्तं न कुलं न वा श्रुतं
यदावयोः प्रेम कथं भवेत्तदा।
समेषु मैत्री विषमेषु नो कदा–
प्यनीतिकृत्यं त्वति दुष्करं हि मे।।

अर्थात् हमारा धन, कुल विद्या आदि कुछ भी समान नहीं है फिर भला हममें प्रेम कैसे हो सकता है। यह तो विदित है कि मैत्री सदैव एक जैसों में ही होती है, विषम (= अलग प्रकार के) लोगों में नहीं। इसलिए यह अनीति मेरे लिए अति दुष्कर होगी अर्थात् मैं इस प्रेम के योग्य नहीं हूं।

किन्तु फिर भी अन्त में हम देखते हैं कि उन दोनों में परस्पर इतनी विषमताएं होते हुए भी एक दूसरे के प्रति जो प्रबल आकर्षण था उसके समक्ष दोनों को झुकना पड़ा।

प्रेम अत्यन्त नीरस व्यक्ति को भी अत्यन्त सरस बना देता है। अत्यन्त भावना विहीन व्यक्ति को भी काव्य मय बना देता है। इस तथ्य की प्रतीति प्रभाकर को स्वयं प्रेम में डूब कर ही होती है। इसी भावना को ताडपत्रीकर ने बड़े ही सरस शब्दों में व्यक्त किया है ——

सर्व नीरसमेव जीवितमिदं यच्छन्नमद्यावधि
तत्ते प्रेमकटाक्षशासनबलाद्रम्यं क्षणाजायते।
स्त्रीप्रेम्णा सरसं विलासमधुरं येषां सदा जीवितं
ते धन्या भुवि यत्प्रयत्नकरणं सर्व तदर्थं किल।।

अर्थात् आज तक मेरा सम्पूर्ण जीवन शून्य ही था, तुम्हारे प्रेम के कटाक्ष के बल से एक क्षण में ही वह रमणीय बन गया है। स्त्री के प्रेम से जिनका जीवन सदैव सरस और मधुर रहा है वही धन्य है क्योंकि विश्व के सब प्रयत्न

# विश्वमोहन नाम नाटकम्

गेटे के ' फाउस्ट ' नामक नाटक पर आधारित यह एक सामाजिक नाटक है। नाटक सात अंकों में विभाजित है। इसके लेखक एस0 एन0 ताडपत्रीकर हैं। पुस्तक का प्रकाशन ओरियन्टल बुक एजेंसी द्वारा हुआ है।

पाश्चात्य भाषा से अनूदित होने पर भी नाटक की यह विशेषता है कि इसमें भास, कालिदास और भवभूति के जैसे नाटककारों की नाटक सरणि का अनुसरण किया गया है जबकि संस्कृत भाषा में ऐसे नाटकों का सर्वथा अभाव ही दृष्टिगोचर होता है।

गेटे का नाटक एक ऐसे व्यक्ति पर आधारित है जिसके विषय में यह विश्वास किया जाता है कि वह मध्यकालीन युग का एक ऐतिहासिक व्यक्ति था। किसी किसी के मत में वह अर्धविक्षिप्त सा था और किसी के अनुसार उसे औषध और इन्द्रजाल की विद्या का अच्छा ज्ञान था। किंवदन्ती है कि उसका सम्बन्ध निशाचरों के साथ था। प्रेतात्मा के साथ बन्धन होने के कारण उसे सभी भौतिक सुखों की उपलब्धि थी किन्तु जब समय समाप्त हुआ तो वही प्रेतात्मा ने उसे अपना शिकार बनाया। सब कुछ होने पर भी अन्त में वह एक अत्यन्त निराश व्यक्ति होकर मरा। संक्षेप में कहा जाय तो कहानी का भावाशय यह होगा कि यदि संसार की सम्पूर्ण सम्पत्ति मिल जाय किन्तु मनुष्य की आत्मा खो जाय तो इसका क्या परिणाम होगा। गेटे ने जो अनुभव किया था वह अपने में इतना विशाल था कि उसे नाटक के दो भाग करने पड़े। ताडपत्रीकर जी ने नाटक के प्रथम भाग के आधार पर ही नाटक लिखा है। नाटक अक्षरश गेटे के नाटक का अनुवाद है यह कहना अनुचित होगा क्योंकि कई स्थानों पर मूल नाटक में और प्रस्तुत नाटक में भेद है, इस भेद के दो कारण हैं। एक तो यह कि प्रस्तुत नाटक की पृष्ठभूमि है भारत और दूसरे लेखक कालिदास आदि प्राचीन महान नाटककारों के पथ का अनुसरण करते हुए नायक को इतना गिराना नहीं चाहता जितना कि मूल नाटक में नायक गिर जाता है।

मूल नाटक के पांच प्रधान पात्र हैं : —

| | | |
|---|---|---|
| फास्ट | — | नायक |
| मारग्रेट | — | नायिका |
| मार्था | — | दूती |
| वेलन्टाईन | — | मारग्रेट का भाई |
| मेफिस्ट्रोफिलस | — | प्रेतात्मा |

प्रस्तुत नाटक में वही चरित्र, प्रभाकर, हरिणी, राघा, तारक और मोहन के रूप में आते हैं।

नाटक लिखते समय लेखक के सामने सदैव भारतीय जीवन के आदर्श और दार्शनिक विश्वास रहे हैं। इसीलिए कई भेद लेखक ने जान बूझ कर किये हैं।

मूल नाटक में नायक प्रत्यक्ष रूप से नायिका के भाई की मृत्यु का कारण है क्योंकि वह इन दोनों के प्रेम में बाधक — स्वरूप है। नायक ही नायिका की मां और स्वयं नवजात शिशु सहित नायिका का घातक है। किन्तु प्रस्तुत

# विश्वमोहन नाम नाटकम्

गेटे के ' फाउस्ट ' नामक नाटक पर आधारित यह एक सामाजिक नाटक है। नाटक सात अंकों में विभाजित है। इसके लेखक एस0 एन0 ताडपत्रीकर हैं। पुस्तक का प्रकाशन ओरियन्टल बुक एजेंसी द्वारा हुआ है।

पाश्चात्य भाषा से अनूदित होने पर भी नाटक की यह विशेषता है कि इसमें भास, कालिदास और भवभूति के जैसे नाटककारों की नाटक सरणि का अनुसरण किया गया है जबकि संस्कृत भाषा में ऐसे नाटकों का सर्वथा अभाव ही दृष्टिगोचर होता है।

गेटे का नाटक एक ऐसे व्यक्ति पर आधारित है जिसके विषय में यह विश्वास किया जाता है कि वह मध्यकालीन युग का एक ऐतिहासिक व्यक्ति था। किसी किसी के मत में वह अर्धविक्षिप्त सा था और किसी के अनुसार उसे औषध और इन्द्रजाल की विद्या का अच्छा ज्ञान था। किंवदन्ती है कि उसका सम्बन्ध निशाचरों के साथ था। प्रेतात्मा के साथ बन्धन होने के कारण उसे सभी भौतिक सुखों की उपलब्धि थी किन्तु जब समय समाप्त हुआ तो वही प्रेतात्मा ने उसे अपना शिकार बनाया। सब कुछ होने पर भी अन्त में वह एक अत्यन्त निराश व्यक्ति होकर मरा। संक्षेप में कहा जाय तो कहानी का भावाशय यह होगा कि यदि संसार की सम्पूर्ण सम्पत्ति मिल जाय किन्तु मनुष्य की आत्मा खो जाय तो इसका क्या परिणाम होगा। गेटे ने जो अनुभव किया था वह अपने में इतना विशाल था कि उसे नाटक के दो भाग करने पड़े। ताडपत्रीकर जी ने नाटक के प्रथम भाग के आधार पर ही नाटक लिखा है। नाटक अक्षरश गेटे के नाटक का अनुवाद है यह कहना अनुचित होगा क्योंकि कई स्थानों पर मूल नाटक में और प्रस्तुत नाटक में भेद है, इस भेद के दो कारण हैं। एक तो यह कि प्रस्तुत नाटक की पृष्ठभूमि है भारत और दूसरे लेखक कालिदास आदि प्राचीन महान नाटककारों के पथ का अनुसरण करते हुए नायक को इतना गिराना नहीं चाहता जितना कि मूल नाटक में नायक गिर जाता है।

मूल नाटक के पांच प्रधान पात्र हैं : —

| | | |
|---|---|---|
| फास्ट | — | नायक |
| मारग्रेट | — | नायिका |
| मार्था | — | दूती |
| वेलन्टाईन | — | मारग्रेट का भाई |
| मेफिस्ट्रोफिलस | — | प्रेतात्मा |

प्रस्तुत नाटक में वही चरित्र, प्रभाकर, हरिणी, राघा, तारक और मोहन के रूप में आते हैं।

नाटक लिखते समय लेखक के सामने सदैव भारतीय जीवन के आदर्श और दार्शनिक विश्वास रहे हैं। इसीलिए कई भेद लेखक ने जान बूझ कर किये हैं।

मूल नाटक में नायक प्रत्यक्ष रूप से नायिका के भाई की मृत्यु का कारण है क्योंकि वह इन दोनों के प्रेम में बाधक — स्वरूप है। नायक ही नायिका की मां और स्वयं नवजात शिशु सहित नायिका का घातक है। किन्तु प्रस्तुत

नाटक का नायक प्रभाकर इनमें से किसी भी दोष का भागी नहीं है। ताडपत्रीकर जी के अन्त में नायक और नायिका दोनों ही जीवित, और सुन्दर जीवन यापन करने के योग्य बना कर नाटक को दुःखान्त बनने से रोक लिया है। विश्वमोहन नामक नाटक के नायक नायिका जो दुःख भोगते हैं वह पूर्णतया वास्तविक जगत की उपज हैं। मोहन और राधा भी पाश्चात्य जगत के प्रेतात्माओं के सदृश नहीं। वे केवल मनुष्य ही क्षुद्र वासनायें जिनके वश में होकर मनुष्य बुरा कार्य करता है और दुःख उठाता है किन्तु वही दुःख उसे पवित्र जीवन व्यतीत करने के योग्य बनाते हैं। प्रस्तुत नाटक का यही उद्देश्य है।

सात अंकों का होने पर भी नाटक का कलेवर छोटा है इसलिए अभिनय की दृष्टि से सर्वथा योग्य है।

## नाटक का कथानक

नायक प्रभाकर अत्यन्त अध्ययनशील होने पर भी प्रगाढ़ पंडित होने पर भी शान्ति नहीं प्राप्त कर सकता। इसका उसे बहुत दुःख है। उसका शिष्य आकर उसे समझाता है कि आप इतने विद्वान् होने पर भी अशान्त चित्त क्यों रहते हैं आपके सम्मान में विद्वत्परिषद् ने एक सभा का आयोजन किया मय जहां आपको सबसे उच्च विद्वान् घोषित किया जाएगा। प्रभाकर को इस समाचार से बड़ी प्रसन्नता होती है। सम्मानित होकर लौटते समय उसकी भेंट अपने मित्र मोहन से होती है जो सदैव उसकी विद्वता की हंसी उड़ाया करता है और उसे संसार के सुखों के प्रति जागरूक होने की सलाह दिया करता है। इस समय फिर मोहन उसे ज़बरदस्ती घुमाने के लिए ले जाता है। फिर थक जाने पर उसे पान गृह में भी ले जाता है। वहां पर लोगों की श्रृंगार चेष्टाएं देख कर प्रभाकर का चित्त बड़ा खिन्न होता है। परिचारिका के अपमानित करने पर भी एक व्यक्ति अपनी कामुक चेष्टाएं नहीं छोड़ता इसी तरह के दृश्य देखकर प्रभाकर को बड़ा दुःख होता है। किन्तु थोड़ी ही देर के बाद उसका साक्षात्कार एक ऐसी युवती से होता है जिसके प्रति वह स्वयं आकर्षित हो जाता है। हरिणी अपनी सखी से बिछुड़ जाती हे इसलिए चकित सी इधर उधर देख रही होती है। प्रभाकर उससे बात करना चाहता है किन्तु किसी युवती से बात करने का अभ्यास न होने के कारण उसकी हिम्मत नहीं पड़ती। इतने में मोहन, जो अपनी सखी से मिलने के लिये बाहर गया था, प्रभाकर के पास लौट आता है प्रभाकर को अन्यमनस्क देखकर कारण पूछता है और परिणाम स्वरूप हरिणी से परिचय पूछता है। इसके पश्चात् हरिणी प्रभाकर के प्रति आकर्षित हो जाय इसलिए वह कुट्टनी राघा का आश्रय लेता है। राधा के घर हरिणी आती जाती थी इसलिए राधा इस कार्य में सफल हो जाती है। प्रभाकर और हरिणी प्रति दिन मिलते हैं। उनका परिचय घनिष्ठता में बदल जाता है। प्रभाकर हरिणी के जाल में ऐसा फंसता है कि उसे अपना अध्ययन-अध्यापन कुछ भी स्मरण नहीं रहता। वह सदैव हरिणी का सान्निध्य चाहता है। इस बात का पता हरिणी के भाई को लग जाता है हरिणी और उसका भाई निर्धन हैं इसलिए भाई उसे बहुत कोसता है कि तूने धन और काम के वश में होकर अपने पुरखों की इज्जत मिट्टी में मिला दी। हरिणी अनजाने में पाप कर चुकी थी। अब उसे बड़ा पश्चाताप होता है। वह कुएं में डूब मरती है। इधर हरिणी का भाई तारक अपनी बहन की मृत्यु के लिए प्रभाकर को दोषी ठहराता है और कितना ही जन समूह इकट्ठा करके प्रभाकर को बुरा भला कहता है। प्रभाकर यह सोच कर कि कहीं यह मुझेको मार न डाले चुपचाप एकान्त पथ द्वारा शहर से बाहर आ जाता है और एक आश्रम में शरण लेता है। दूसरी ओर उसी आश्रम का शिष्य जब हरिणी के कुएं में गिरने की आवाज सुनता है तो हरिणी को उठा लेता है और परिचर्या द्वारा उसे स्वस्थ कर लेता है। आश्रम में प्रभाकर और हरिणी का पुनः साक्षात्कार होता है। उसी समय आश्रम के उपाध्याय ऋषि विवेक पहुंच जाते हैं। वे इन दोनों को समझाते हैं कि पहले किये गये दुष्कर्मो के प्रभाव को, वर्तमान के अच्छे कार्य मिटा सकते हैं। प्रभाकर के यह पूछने पर कि मुझे दुष्कर्म प्रवृत्त करने वाला मोहन और

हरिणी को पथ – भ्रष्ट करने वाली राधा कहां है। विवेक कहता है कि उनका प्रत्यक्ष दर्शन करना तो असम्भव है क्योंकि वे सबके मन के अन्दर रहते हैं। विवेक योग द्वारा प्रभाकर और हरिणी को मोहन और राधा का प्रत्यक्षीकरण करवाते हैं। राधा और मोहन के परस्पर संवाद से स्पष्ट हो जाता है कि स्वर्ग और नरक अपनी मानसिक उत्पत्ति हैं जो जिसको अच्छा लगता है वह वही करता है।

अन्त में मोहन और राधा दोनों यम के पास जाते हैं। यम उन दोनों की बड़ी प्रशंसा करते हैं कि वे जगत में बड़ा महान् कार्य कर रहे हैं। राधा द्वारा भरत वाक्य कहलवा कर नाटक की समाप्ति होती है।

## चरित्र चित्रण

लेखक ने चाहे कथा – सूत्र पाश्चात्य जगत से लिया है किन्तु उसने सभी पात्रों का भारतीयकरण कर लिया है। अब वे भारतीय भूमि पर बढ़ कर पहले वाले पात्र हैं। उनके विश्वास, उनके किया कलाप सभी भारतीय हैं।

नायक प्रभाकर तो मानो भारतीय दार्शनिकता का अक्षरशः अनुसरण करने वाला विद्वान् है। वह सदैव गूढ़ तर्कों की खोज में लगा रहता है। किन्तु इस उच्च चिन्तन के पश्चात् भी अब जब उसे सुख या शान्ति की प्राप्ति होती है तो वह विक्षुब्ध हो उठता है। और कहता है –

मीमांसा न सुखाय पाणिनिनयोऽप्यार्तस्य संकन्दितं चर्चा पर्वत वह्नि धूम बहुला व्यर्था, न सा शान्तये।
न्यायस्था अपि संगता घटपटा नष्टाः समस्ताः परे वेदान्तोऽपि न रज्जुसर्पसदृशः शन्तिं ददातीह मे।।[1]

अर्थात् मीमांसा सुख के लिए नहीं है, पाणिनि का न्याय भी आर्त व्यक्ति का कन्दन मात्र है। पर्वत, आग, धुआं इनकी चर्चा भी व्यर्थ है, शान्ति प्रदान नहीं कर सकती। नैयायिक भी घट और पट में पड़कर नष्ट हो गये हैं। वेदान्त भी रज्जुसर्प सदृश शान्ति नहीं देती।

यह तो ठीक है कि शास्त्र उसे आन्तरिक शान्ति नहीं दे पाते। किन्तु यह बात भी उतनी ही सत्य है कि शास्त्र के बिना वह जीवित भी नहीं रह सकता।

### शैली तथा साहित्यिक दृष्टिकोण ––

श्री ताडपत्रीकर का ' विश्वमोहनम् ' नामक नाटक पूर्णतया भारतीय है। पाश्चात्य कथानक से युक्त होने पर भी इसकी परिचय हमें पग पग पर मिलता है। नायक प्रभाकर हरिणी को देखने से पहले अत्यन्त विद्वान्, सदैव अध्ययन में रत रहने वाला और सांसारिक भोग विलासों से दूर भागने वाला था किन्तु हरिणी को देखने के पश्चात् वह अत्यन्त कामी अध्ययन से विमुख बिल्कुल साधारण पुरुषों की तरह व्यवहार करने लगता है। ऐसी अवस्था में शिष्य उसके परिवर्तित व्यवहार को बड़ी शीघ्रता से देख लेते हैं। पहले से स्तोह भय आचार्य अब एक साधारण पुरुष बन गये हैं यह शिष्यों की दृष्टि से जब छिपा नहीं रहता तब वे अत्यन्त संतप्त होकर कहते हैं ––

आचार्योऽयं स्नेह पूर्णं प्रपश्यं –

---

1. प्रथम अङ्क, 2 श्लोक 3, पृ० 2

स्तत्तन्वंगयास्तान्मुग्धलीलाविलासान्।
विश्वामित्रो मेनकायां तपस्वी
कामाविष्टस्तद्ययेद तथैव।। 1

हमारे आचार्य अत्यन्त स्नेह से उस तन्वंगी की विलास लीलाएं देख रहे हैं, उन्हें देख कर ऐसा प्रतीत होता है मानों तपस्वी विश्वामित्र मेनका के यन्द्रजाल में फंस गया हो।

तपस्वी विद्वान् की विश्वामित्र से उपमा देने में मानो सम्पूर्ण वातावरण ही भारतीय हो जाता है।

यदि नीति का अवलोकन किया जाय तो प्रेम का महत्व ही न रह जाय। प्रेम तो सभी बन्धनों को तोड़ कर स्वच्छन्दता का अनुमोदक है। इसीलिए प्रभाकर और हरिणी परस्पर समत्व की भावना से पूर्णतया रहित हैं लेकिन फिर भी उनमें परस्पर प्रेम हो जाता है हरिणी इसी तथ्य को भयभीत होकर प्रभाकर के सन्मुख रखती है ––

समं न वित्तं न कुलं न वा श्रुतं
यदावयोः प्रेम कथं भवेत्तदा।
समेषु मैत्री विषमेषु नो कदा –
प्यनीतिकृत्यं त्वति दुष्करं हिमे।।

अर्थात् हमारा धन कुल कीति आदि कुछ भी समान नहीं है फिर भला हममें प्रेम कैसे हो सकता है। यह तो विदित है कि मैत्री सदैव समान नहीं होती है, विषम में नहीं। इसलिए यह अनीति मेरे लिए अति दुष्कर होगी अर्थात् मैं इस प्रेम के योग्य नहीं हूं।

किन्तु फिर भी अन्त में हम देखते हैं कि उन दोनों में परस्पर इतनी विषमताएं होते हुए भी एक दूसरे के प्रति जो प्रबल आकर्षण था उसके समक्ष दोनों को झुकना पड़ा।

प्रेम के अत्यन्त नीरस व्यक्ति को भी अत्यन्त सरस बना देता है। अत्यन्त भावना विहीन व्यक्ति को भी काव्य मय बना देता है। इस तथ्य की प्रतीति प्रभाकर को स्वयं प्रेम में डूब कर ही होती है। इसी भावना को ताडपत्रीकर ने बड़े ही सरस शब्दों में व्यक्त किया है ––

सर्व नीरसमेव जीवितमिदं यच्छर्न्यमद्यावधि
तत्ते प्रेमकटाक्षशासनबलाद्रम्यं क्षणाजायते।
स्त्रीप्रेम्णा सरसं विलासमधुरं येषां सदा जीवितं
ते धन्या भुवि यत्प्रयत्नकरणं सर्व तदर्थ किल।।

अर्थात् आज तक मेरा सम्पूर्ण जीवन शून्य ही था, तुम्हारे प्रेम के कटाक्ष के बल से एक क्षण में ही वह रमणीय बन गया है। स्त्री के प्रेम से जिनका जीवन सदैव सरस और मधुर रहा है वही धन्य है क्योंकि विश्व के सब प्रयत्न उसी (प्रेम-प्राप्ति) के लिये हैं।

लेखक ने स्थान स्थान पर सुन्दर सूक्तियों का भी प्रयोग किया है यथा —

इदं श्रेय इदं श्रेय व्युत्थितो जनः। इत्यत्र ?
यस्तु यत्रैव रमते सतं धर्ममुपासते।।[1]

अर्थात् यह कल्याणकारी है, यह कल्याणकारी है, लोग इसी में फंसे हुए हैं, ( वास्तविकता तो यह है कि ) जिसको जो कार्य अच्छा लगता है वह वही कार्य करता है।

लेखक गीता के उद्धरण से अत्यन्त प्रभावित है। इसलिए गीता के श्लोक को उद्धरण देना नहीं भूले। जिस समय प्रभाकर और हरिणी अपने पहले जीवन को समाप्त करके नवीन और पवित्र जीवन यापन करने की शपथ लेते हैं उस समय लेखक स्वयं दृढ़ विश्वास के साथ कहता है कि मनुष्य और समाज जब बुराई की अच्चतम सीमा पर पहुंच जाता है तो भगवान् स्वयं अवतार लेकर अधर्म का नाश और धर्म की स्थापना करते हैं। गीता का प्रसिद्ध श्लोक —:

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवेच्च युगे युगे।।[2]

लेखक को सबसे उपयुक्त लगा। प्रकरणानुसार उसी में किंचित् परिवर्तन कर ( संभवामि के स्थान पर संभवेच्च पाठ बना कर) उसने अपनी कृति में इसे अपना लिया।

1. सप्तम अङ्क, श्लोक , पृ० ३४
उपासते बहुवचन का प्रयोग है। अतः इस एकवचनान्त सर्वनाम के साथ उसका प्रयोग अनुचित है।

2. सप्तम अङ्क, श्लोक , पृ० ३४

## ' श्रीसरोजिनी सौरभम् '

आन्ध्र प्रदेश के महीघर वेंकटराम शास्त्री द्वारा रचित श्री सरोजिनी सौरभम् नामक नाटक केवल काल की दृष्टि से ही नूतन नहीं, अपितु विषय और उसके प्रदर्शन के ढ़ंग से भी नूतन है। इससे आधुनिक संस्कृत-साहित्य रत्नाकर में एक और ग्रन्थ रत्न की समृद्धि हुई है इसमें सन्देह नहीं।

इसमें नौ अंक हैं। इसे प्रकरण की कोटि में रखा जा सकता है। आधुनिक समस्याएं जैसे प्रथा, जाति कलह, ग्रामोद्धार, जनता की समुन्नति, इत्यादि का वर्णन बहुत ही सुन्दर रूप में इसमें किया गया है।

### कथानक —:

नाटक का कथानक बहुत ही सरस है। इसमें शृंगार रस के साथ साथ वीर रस का भी प्रचुर परिपाक है। नायक गुणचन्द्र जहां नायिका सरोजिनी को उन्मत हाथी के चुंगल से वीरता पूर्वक मुक्त करता है, वहां उसके प्रेम के बंधन में स्वयं इतना बंध जाता है कि अनन्त स्वर्ण और धन-राशि देने वाले वैवाहिक सम्बन्ध को ठुकरा कर साधारण धन वाली सरोजिनी का ही वरण करता है। ऐसा करने में उसे अपने पैतृक धन से भी वंचित होना पड़ता है किन्तु उसे इस बात की तनिक भी चिन्ता नहीं है।

कथानक का प्रारम्भ इस प्रकार होता है— अत्यन्त धनवान् किन्तु साथ ही साथ अत्यन्त कृपण आढ्यपति का पुत्र गुणचन्द्र सम्पूर्ण गुणों की खान है। कुलगुरु देवव्रत भी उसके व्यवहार से अत्यन्त प्रसन्न और सन्तुष्ट है। उसका एक मित्र सुधापूर्ण है जोकि साधारण स्थिति का युवक है। एक बार सुधापूर्ण और गुणचन्द्र दोनों बैठे वार्तालाप कर रहे होते हैं कि इतने में शोर मच जाता है कि एक जंगली हाथी शहर के अन्दर आ गया है और उसने एक नवयुवती को अपनी सूंड में दबा लिया है। सम्पूर्ण नगरवासी त्रस्त हैं, उस लड़की को कोई भी नहीं मुक्त करवा सकता। गुणचन्द्र उसी समय जा कर शस्त्र प्रहार द्वारा हाथी का वध कर नवयुवती को मुक्त कर देता है, तथा मूर्च्छित युवती को अपने घर ले आता है। वहां उपचार करने पर युवती जब होश में आती हे तो गुणचन्द्र के प्रति बहुत कृतज्ञता प्रकट करती है। स्वयं गुणचन्द्र भी उसकी रूप-माधुरी और सुशीलता से प्रभावित हो उससे प्रेम करने लगता है। इधर

गुणचन्द्र का धनवान् किन्तु कृपण पिता उसका सम्बन्ध एक ऐसी कन्या से कर देता है जिसका पिता उसे मुंह मांगा धन देने को उद्यत है। गुणचन्द्र इस सम्बन्ध को अस्वीकार कर देता है। पिता अपनी बात की अस्वीकृति को सहन नहीं कर सकता। अतः क्रोध में आ कर कहता है कि यदि गुणचन्द्र पिता द्वारा किया हुआ सम्बन्ध स्वीकार नहीं करता तो उसे पैतृक सम्पत्ति पर तनिक भी अधिकार नहीं रहेगा। स्वतन्त्र विचारों वाला गुणचन्द्र पिता की सम्पत्ति की उपेक्षा कर घर छोड़ कर चल देता है। उसकी माता अपना वैयक्तिक धन उसे देती है जिससे वह कृषि कर्म द्वारा अपनी जीविका चलाता है। दूसरी तरफ सरोजिनी जिसकी गुणचन्द्र ने हाथी से रक्षा की थी, गुणचन्द्र के गुणों से मुग्ध ा होकर मानसिक रूप से उसी का वरण कर लेती है। श्रीधर नामक एक सम्पन्न व्यक्ति जो विवाहित है, किन्तु कामवश सरोजिनी को भी प्राप्त करना चाहता है, अपनी दूती सरोजिनी के पास भेजता है। सरोजिनी इस सम्बन्ध को ठुकरा देती है और अपनी सखी भ्रमरिका के हाथ गुणचन्द्र का पत्र द्वारा सन्देश भिजवाती है कि वह उसे पति रूप में स्वीकार करना चाहती है। गुणचन्द्र स्वयं उस पर आसक्त हैं। अतः दोनों का विवाह हो जाता है। किन्तु यह बात श्रीध ार को बहुत खटकती है। वह गुणचन्द्र पर झूठा अभियोग लगा कर उसे कैद करवा देता है और अपने अनुचरों को आज्ञा देता है कि उसका घर लूट लिया जाय और उसकी पत्नी सरोजिनी को पकड़ लिया जाय। सरोजिनी किसी प्रकार भाग निकलती है, किन्तु शिला के नीचे एक पत्र लिख कर रख जाती है।

गुणचन्द्र के मित्र सुधापूर्ण को जब मालूम होता है कि गुणचन्द्र को झूठी चोरी का अभियोग लगा कर बन्दी बना लिया गया है, तो वह ज्योतिषी का वेश बना कर राजा के पास पहुंचता है। उसके थोड़ी देर के पश्चात् श्रीधर गुणचन्द्र तथा उसका पिता आढ्यपति फैसले के लिये राजा के पास आते हैं। श्रीधर कुछ ऐसी बातें बताता है जो आढयपति से बाद में पूछने सत्य निकलती हैं। इसलिए राजा को सुधापूर्ण के यह कहने पर कि गुणचन्द्र की आकृति देख कर ही उसने जान लिया है कि वह दोषी नहीं है और श्रीधर ने उस पर झूठा अभियोग लगाया है, राजा उसकी बात का विश्वास कर गुणचन्द्र को बन्धनमुक्त कर रक्षाधिपति का पद समर्पित कर देता है तथा श्रीधर को झूठा अभियोग तथा निरापराध प्रजा को तंग करने के कारण बन्दी बना लिया जाता है। गुणचन्द्र सम्पूर्ण कार्य बड़ी निष्ठा और तत्परता से करता है जिससे राजा प्रसन्न होकर सम्पूर्ण राज्य-कार्य उसे सौंप कर स्वयं निश्चिन्त हो जाता है। गुणचन्द्र सभी कार्य करते हुए भी सरोजिनी के वियोग के कारण मन ही मन दुःखी रहता है। एक बार शत्रु से युद्ध करते हुए जीत जाने पर भी शत्रुओं से घायल हुए गुणचन्द्र का उपचार उक हौडिक्कक करता है। उधर सरोजिनी की सखी गुणचन्द्र को योगिनी का वेश धारण करके मिलती है और उसे सरोजिनी का लिखा हुआ पत्र देती है। पत्र

पढ़ कर गुणचन्द्र बहुत दुःखी होता है। क्योंकि पत्र का भावार्थ होता है कि पति के दुःख से दुःखी सरोजिनी अब इस संसार में नहीं रहेगी। भ्रमरिका उसे धैर्य बंधाती है कि वह अपनी सखी को अवश्य ढूंढ़ेगी। इतने में वही हौडुक्किक जिसने घायल गुणचन्द्र की परिचर्या की थी, दृष्टिगोचर होता है। गुणचन्द्र के संकेत पर उसे बुलाया जाता है हौडुक्किक ही वास्तविक सरोजिनी है यह जान कर सभी बहुत विस्मित होते हैं और साथ ही प्रसन्न भी होते हैं। गुणचन्द्र अपने परोपकारी मित्र सुधापूर्ण को प्रधान सचिव बना लेता है और सरोजिनी के पिता माणिदास उसकी माता तथा धात्री सहित आ कर गुणचन्द्र और सरोजिनी को आशीर्वाद देते हैं। इसी सुखद वातावरण में नाटक की समाप्ति होती है।

## चरित्र चित्रण

गुणचन्द्र —— सम्पूर्ण मानवीय गुणों से युक्त सरोजिनीसौरभम् नाटक का नायक गुणचन्द्र एक स्वावलम्बी युवक के रूप में हमारे सामने आता है। वह स्वयं अपने ही शब्दों में अपनी प्रशंसा नहीं करता अपितु उसके महान् कार्य की उसी की महानता को द्योतित करते हैं। उसके विचार अत्यन्त उच्च हैं। जातीय भेद भाव तथा धन के कारण उच्च नीच का भेद वह पूर्णतया हटा देना चाहता है। उसे यह देख कर बहुत क्रोध आता है

एकः क्षुधातिकृशतां गतमात्मकुक्षिं
संदश्य दीनमनसा वृणुते हि पिण्डम्।
सोद्धारधारभुपमुज्य रसोत्तमान्न–
मेकस्तु दृप्तमनसा तमपाकरोति।।

एक व्यक्ति तो क्षुधा के कारण बिलकुल साथ लगे हुए पेट को दिखा कर दीन हो कर खाना मांगता है किन्तु दूसरा लगातार डकार मारते हुए उत्तम रस युक्त अन्न खाकर अहंकार से उसका तिरस्कार करता है।

किसी अत्यन्त धनवान् व्यक्ति के पुत्र में ऐसी भावनाओं का उदय होना ही उसकी महानता का सूचक है।

गुणचन्द्र के विचार में यदि किसी के पास धन है, तो वह दान करने के लिये है, यदि अधिकार है तो वह कर्तव्य को उचित पालन के लिये है। इसीलिए उसके शब्दों में एक आदर्श नृप का बहुत ही सुन्दर चित्रण किया गया है।

क्वचिदुपचितमर्थं भोगशून्यं नरेशो
जलधिजलमिवार्कः सभ्यगाचूम्य युक्त्या।
सरित इव सुदीर्घाः कल्पयेद् भव्यवृत्तीः
कृतमतिरनुजीवेत्ताः समाश्रित्य लोकः।।

भोग विलास से रहित राजा, (कर आदि लेकर) इकट्ठे हुए धन से प्रजा का पालन उसी प्रकार करता है जिस प्रकार सूर्य समुद्र से युक्तिपूर्वक जल चूस कर सरिता के रूप में उसे लोक कल्याण के लिये बहा देता है।

इतने बड़े धनवान् का पुत्र होने पर भी वह अपने परिश्रम से जीविका उपार्जन करना चाहता है। निष्क्रिय जीवन को तो वह चोर के जीवन के समान समझता है। तभी वह कहता है –

गुण– सत्यमुक्तं भवता। तथाप्यात्मवृत्तिः सर्वैरात्मशक्त्यैव निर्वर्तनीयेति तदन्यत्सर्वं चौर्यमेव भवेदिति च मे मतिः।

आपने ठीक कहा है। तो भी सभी को अपनी जीविका अपनी शक्ति से ही कमानी होगी। इसलिये उसके सिवाय बाकी सब चोरी ही होगी यही मेरी धारणा है।

संकट के समय धैर्य धारण करना, यही महान् पुरुषों का स्वभाव है। जिस समय हाथी की सूंड में फंसी हुई युवती को संकट से मुक्त करने के लिये कोई प्रस्तुत नहीं होता उस समय युवा गुणचन्द्र धैर्यपूर्वक संकट का सामना कर युवती को बचा लेता है। गुणचन्द्र के विचार में तो मनुष्य कहलाने योग्य ही वही व्यक्ति है जो धैर्यगुण से युक्त है।

धैर्यमेव कुसुमस्य वृन्तव–

द्बन्धनं हि हृदयस्य संकटे।

विश्लथं भवति यस्य तत् स्वके

च्दाययाऽपि मरुतेव पात्यते।

संकट आने पर फूल के लिये टहनी की तरह धैर्य ही हृदय का बन्धन होता है। जिसका वह ( बन्धन ) ढ़ीला हो जाता है वह अपनी परछाईं से भी ऐसे गिर जाता है मानों उसे वायु से गिरा दिया गया हो।

गुणचन्द्र घायल और मूर्छित युवती को कन्धे पर डाल कर घर ले आता है। उपचार करने पर जब उसे संज्ञा प्राप्त होती है तब गुणचन्द्र उसे छूने को दोष मानता है। चाहे वह सुन्दर युवती के प्रति प्रेमभाव रखता है किन्तु वह स्वकीया नहीं है इसलिये उसके प्रति निम्नलिखित शब्द गुणचन्द्र के उच्च चरित्र के प्रतीक हैं–

कृतार्था वयं यत् इयं प्राणान्वहति। इतः परं नार्हामि परवतीमेनां स्प्रष्टुम्।

हम लोग कृतार्थ हो गये क्योंकि वह (युवती) जीवित है। अब इसे मैं स्पर्श नहीं कर सकता।

सरोजिनी अपने प्राणों की रक्षा करने वाले उदार चेता पुरुष की जैसी प्रशंसा करती है वह कितनी यथार्थ है–

रूपे गम्भीरत्वं

नादे धीरत्वमात्मगुणवत्त्वम्।

मनसि च दयर्द्रता, का

तरुणी प्राणेशमेनमुपयाति।

रूप में गम्भीरता है। आवाज़ में धैर्य और आत्मगुण प्रधान है। मन में दया है। ऐसी कौन सी युवती होगी जो इसे प्रियतम के रूप में प्राप्त करेगी।

गुणचन्द्र का पिता उसे बलपूर्वक एक ऐसी कन्या से बांधना चाहता है जिसका पिता आढ्यपति को मुंह मांगा धन दे सकता है। गुणचन्द्र को यह बात तनिक भी पसन्द नहीं वह तो स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध की आधार शिला

प्रेम को मानता है न कि धन को। उसके मत में–

प्राभवं संपदो नैव कारणं प्रेमसंगतेः।
सर्वानतीत्य बध्नाति स्त्रीपुंसौ हृदयं समम्।

स्त्री और पुरुष के मिलन में सम्पत्ति कभी कारण नहीं होती। प्रेम ही सभी कारणों का त्याग करके दोनों के हृदय को बांधता है।

गुणचन्द्र में केवल मानसिक सौन्दर्य ही पराकाष्ठा पर हो, ऐसी बात नहीं, शारीरिक सौन्दर्य में भी वह अद्वितीय है। सहोक्ति अलंकार का आश्रय लेकर कवि उसके बारे में कहता है ––

नासायां भुजमूध्नि भावनिर्वेहे चोच्चैःस्थितिर्मार्दवं
हस्तौष्ठांघ्रितले तथा मनसि पालोरःस्थलं विस्तृता
दैर्घ्यं पीवरबाहुदण्डयुगले चालोचने लोचने
मुक्तासारविजृम्भणं स्मितकलाप्रादुभवे प्राभवे।

(गुणचन्द्र) में उच्चता है। उसकी नासिका, कन्धों और विचारों में कोमलता है। उसके हाथों, होंठों और पांव के तलुवों में विस्तार है। उसके मन में और फाल के समान वक्षःस्थल में दीर्घता है उसके दोनों सुपुष्ट भुजदण्डों, आलोचका और नेत्रों में, एवञ्च उत्तम मोतियों की जगमगाहट है उसके स्मित की रेखा से प्रकट होने वाली प्रभुता में।

गुणचन्द्र यदि मत्त हाथी के समक्ष निर्भय होकर खड़ा हो सकता है तो सुन्दरी पत्नी के आगे अत्यन्त नम्र होकर झुक भी सकता है।

प्रेयसी भुजलतानिन्त्रितः

को युवा भुवि न नम्रतामियात् ।

पृथ्वी पर ऐसा कौन सा तरुण है जो कि प्रेयसी की मुजलताओं में नियन्त्रित होने पर भी नम्र न बने?

गुणचन्द्र के उपर्युक्त शब्दों में सरोजिनी के प्रति उसका अकथनीय प्रेम प्रकट होता है। अत्यन्त कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी जो व्यक्ति व्याकुल नहीं होता, अपनी प्रेयसी से वियुक्त होने पर उसका सम्पूर्ण धैर्य लुप्त हो जाता है। इसमें कारण और कुछ नहीं प्रेम की अतिशयता है। गुणचन्द्र को जब राजा रक्षाध्यक्ष की पदवी प्रदान कर देता है, बाह्य दृष्टि से उसके पास सब कुछ है किन्तु उसका अन्तस्तल प्रिया के वियोग से जल रहा होता है। जब भ्रमरिका के सन्देश से उसे सन्देह हो जाता है कि शायद सरोजिनी ने आत्महत्या न कर ली हो उस समय उसकी करुण दशा का वर्णन अत्यन्त हृदय विदारक है, उसकी करुण दशा देख कर ही भ्रमरिका कहती है——

नाब्धिरेतु विलयं वडवाग्ने
नार्द्रिरेतु पतनं पविघातात् ।
चित्तवांस्तु क इवात्र न मुह्येत
प्रेमसंभृतकलत्रवियोगात् ? ।

वडवाग्नि के जलने पर समुद्र का विलय ( शोषण ) भले ही न हो, वज्र प्रहार से पर्वत का पतन भी भले ही न हो, पर प्रियतमा के वियोग से कौन ऐसा सहृदय व्यक्ति है, जो कि मोह को प्राप्त न हो।

गुणचन्द्र की महत्ता इसी में है कि जब वह धनवान् का पुत्र होता है तो उसे घमण्ड नहीं होता फिर जब परिस्थिति वश उसके पास कुछ नहीं रहता तो वह निरुत्साहित नहीं होता और अन्त में जब उसे राजा घोषित कर दिया जाता है, तो उसे ऐश्वर्य मद नहीं होता। राज्यपद लाभ कर वह उसी समय घोषणा करवाता है –

राज्येऽस्मिन्नवधूय दर्पमथवा सङ् कोचमभ्यान्तरं
तस्याप्युन्नतिमाकलय्य नितरां यो वा जनोंऽगीकृतम् ।

स्वीयं कर्म समापयत्यहरहर्धन्यः स एवात्मवा –

नेवं चेन्मलपूरसावयममात्यो वेति भेदो न मे।।

इस राज्य में अहंकार का अथवा आन्तरिक संकोच का परित्याग कर जो व्यक्ति उस ( राज्य ) की उन्नति का ध्यान कर दिन प्रति दिन अंगीकृत कार्य को पूरी तरह निबाहता है, वह मनस्वी धन्य है। इस परिस्थिति में वह मलपू है और यह (उसका) मंत्री है। इस प्रकार का भेद मैं नहीं करता।

इन सब बातों से ज्ञात होता है कि गुणचन्द्र का चरित्र बहुत ही भव्य है। अन्त में गुणचन्द्र के शब्दों को ही प्रमाण मान कहना पड़ता है –

सम्पत्तिदानं नहि मुख्यमस्ति

न श्रान्तिदानं न च भूमिदानम्।

दीनस्थ लोकस्य सुखाप्ति हेतुः

प्रेमैकदानं नृवरेषु भूयात्।।

धन का दान मुख्य नहीं है और न ही श्रमदान तथा भूमि का दान देना ही महत्वपूर्ण है। दीन हीन जनों की सुख प्राप्ति के लिये प्रेम रूप दान ही श्रेष्ठ पुरुषों को देना चाहिए।

## चरित्र चित्रण

सरोजिनी –

भारतीय नारीत्व की आदर्श प्रतिमा, प्रेम के समक्ष धन वैभव को ठुकरा देने वाली तथा पति के चरण-

चिन्हों पर बलिदान होने वाली सरोजिनी इस नाटक की नायिका है। नायक से भी अधिक महत्व नायिका का है, गुणचन्द्र से अधिक बड़ा बलिदान सरोजिनी का है तथा प्रेम के उच्चतम भाव की अनुभूति गुणचन्द्र से अधिक सरोजिनी ने को है। इन तथ्यों में लेखक स्वयं भी विश्वास करता है। तभी उसने नाटक का नाम अन्य पात्र के अथवा घटना के आधार पर न रख कर नायिका सरोजिनी के नाम पर रखा है।

श्रीधर नामक व्यक्ति सरोजिनी पर आसक्त है, वह अपना सम्पूर्ण धन सरोजिनी पर निछावर कर देना चाहता है यहां तक कि अपनी पहली पत्नी का परित्याग भी कर देना चाहता है किन्तु सरोजिनी के सामने तो एक गुणचन्द्र ही आदर्श-रूप में स्थित है, और जब वह मानसिक रूप से उसे पति रूप में वरण कर चुकी है तो दूसरे किसी व्यक्ति का प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि—स्वयं सरोजिनी के इन शब्दों में—

विशुद्धप्रेमयुक्तानां स्त्रीणां हृदयतन्तुषु।
कालुष्यभाव संसर्गो न स्थानं लभते क्वचित्।।

स्त्रियों के विशुद्ध प्रेम से युक्त हृदय तंतुओं में कभी कलुष भाव स्थान नहीं प्राप्त होता।

यदि आन्तरिक प्रेम है जो बाह्य आडम्बर की कोई आवश्यकता नहीं। सरोजिनी गुणचन्द्र के साथ यदि सच्चा प्रेम करती है तो उसे अन्य किसी भी बाह्य प्रपंच की आवश्यकता नहीं। तभी वह स्वयं कहती है —

पुंसामुल्लसतां वधूजनसमावेशे हठात्संभवे—
दौद्धत्यं श्रयते ह्यसौ समरसीभावाय हावादिकम्।
सौहार्द जनिते परस्परपरीतोषाय भूषादिकं
नानन्दामृतपानतृप्तहृदयैः साडम्बरं कांक्ष्यते।

पुरुषों में उल्लास होने पर यदि वधूजन के साथ संयोग हो तो वह एक रस होने के हेतु हठात् हाव भावादि रूप उद्धतता का आश्रय लेगा। पर जब परस्पर अनुराग उत्पत्ति हो चुकी हो तो आनन्दामृत के पाने से तृप्त

मन वाले आभूषणादि की आडम्बर पूर्वक इच्छा नहीं करते।

सरोजिनी अपने हृदय के भावों को व्यक्त करना जानती है। जिस व्यक्ति से वह प्रेम करती है, उससे किसी प्रकार का दुराव-छिपाव उसे उचित प्रतीत नहीं होता। वह पत्र लिख कर अपनी सखी के हाथ गुणचन्द्र के पास भेजती है–

दाता प्राणानिलस्य प्रभुगुणसुरभिः कन्यकानां वरार्ह–
श्चित्ते माधुयधुर्यस्त्वमिति मम मनः सज्जितं त्वय्यतीव।
कारुण्यं चेत्तवास्यां सहवसतिमुदं देहि तुल्यप्रपत्त्या
प्रीतिश्चेदत्र स्यात्प्रियगुण! कुरु मां किकरीं त्वत्सकाशे।।

तुम प्राणवायु देने वाले हो, प्रभुता के अनुरूप गुणों से सुगन्धित हो, कन्याओं के द्वारा वरण योग्य हो, मन में अतीव माधुर्य लिये हो। इसलिये मेरा मन तुम में अतीव आसक्त है। यदि तुम्हें मेरे लिये दया है तो मुझे अपने सहवास का आनन्द प्रदान करो। हे गुणों के प्यारे! यदि तुम में मेरे जितना प्यार न हो तो मुझे नौकरानी के रूप में स्थान दे दो।

दोनों का विवाह हो जाता है किन्तु थोड़े दिनों के पश्चात् ही उस वैवाहिक सुख में व्यवधान पड़ जाता है। श्रीधर के कुचक्र के कारण गुणचन्द्र को पकड़ लिया जाता हैं। उस समय सरोजिनी भी अपने प्रियतम का अनुसरण करना चाहती है और कहती है –

अहमप्यनुवते जीवितेश्वरम्– अर्थात् मैं भी अपने प्राण प्रिया का अनुसरण करूंगी।

इस पर दुर्दान्त नामक व्यक्ति उसे गृह में रहने की सलाह देता है तब उसके उद्‌गार कितने मर्मस्पर्शी हैं।

भर्ता यदि स्याद्विमनास्तदास्य

सधर्मिणी शोकहतान्तरात्मा।

तथा हि दीपो धृतकज्जलश्चेत

शिखापि तस्य प्रविलुप्तशोभा।

यदि पति का मन दुःखी हो तो उसकी सहधर्मिणी भी शोक में डूब जाती है जिस प्रकार दीपक में ( तेल के अभाव से ) कालिमा आने पर उसकी लौ की शोभा भी लुप्त हो जाती है।

पति सुख के अतिरिक्त उसे संसार के किसी भी ऐश्वर्य की अपेक्षा नहीं है। श्रीधर के पास सब कुछ होते हुए भी वह उसका नाम भी लेना नहीं चाहती। क्योंकि वह उसके लिए पर-पुरुष है। इसीलिए श्रीधर के आदमी आ कर जब उसे पीड़ित करते हैं तो वह अत्यन्त गर्व से कहती है–

म्रियेत वा जीवतु वा सरोजिनी

कुलांगनेयं कुलटा कथं भवेत् ?

चिरं हि यन्त्रेण निपीडिताऽपि सा

जहाति माधुर्यगुणं न गोस्तनी।।

सरोजिनी चाहे मर जाये, चाहे जीवित रहे – वह कुलांगना है, कुलटा कैसे हो जायगी। यन्त्र (रस निकालने वाली मशीन) से चाहे कितनी देर तक पीड़ित (=दवाई) क्यों न की जाय, गोस्तनी ( द्राक्षा ) अपने माधुर्यगुण का त्याग नहीं करती।

पतिव्रता नारी जन्मान्तर में भी अपने पति का ही वरण करना चाहती है।

नाथस्य संयोगमुपैमि नो वा

तस्मै सदा सौख्यमुमा ददातु

जन्मान्तरेऽप्येष गुणाभिमानी

पतिर्भवेत्प्राणपतिर्यतोऽसौ।।

## भाषा शैली

कथावस्तु, भाव और भाषा के दृष्टिकोण से तो सरोजिनीसौरभम् नाटक नवीन है ही। लीक से हटने में भी इस की नवीनता है। विदूषक के अभाव से लेखक ने यह भी द्योतित कर दिया है कि प्राचीन नाटक के बन्धन उसे स्वीकार नहीं हैं।

प्राकृत भाषा का प्रयोग भी लेखक को अधिक उपयुक्त नहीं लगा। इसलिए सभी पात्रों से संस्कृत का ही प्रयोग करवाया है। वैसे भी संस्कृत भाषा के प्रति लेखक का प्रगाढ़ प्रेम निम्नलिखित श्लोक से ही हो जाता है। सूत्रधार को सन्देह है कि शायद संस्कृत भाषा में नाटक का अभिनय लोगों के लिये रुचिकर न होगा इसका उत्तर नटी कितने सुन्दर शब्दों में देती है–

या पीयूषनिभं रसं रुचिवशादापाय्य तृप्तिं व्यधात्
दत्त्वा पाण्यवलम्बमग्रपदसञ्चारं स्वमाबोधयत्।
भावान्भव्यगुणान्, हितानचकथद् गैर्वाणवाणीमिमां
स्वां धात्रीमिव भक्तियुक्तिकलितो विस्मर्तुमीहेत कः ?

ऐसा कौन व्यक्ति एवं युक्ति सम्पन्न व्यक्ति है जो कि अपनी धाय के समान ( पालन करने वाली ) इस संस्कृत भाषा को भूल सके जिसने कि अपनी रुचि के अनुसार अमृत तुल्य रस का पान करा कर तृप्ति प्रदान की, हाथ का सहारा देकर अपने आगे के कदम रखना सिखाया और कल्याणमय गुणयुक्त हितकारी विचार बताये।

अनुप्रास और उपमा लेखक के प्रिय अलंकार हैं। अनुप्रास की छटा निम्नलिखित श्लोक में अद्भुत है–

नटिद्विहं गस्तटिनीतरंगः

प्रमत्तभृगः सुमजालसंगः।

स्त्रीणामपांगो यमनंगरंगः

फुल्लान्तरंगः सुरभिप्रसंगः ।।

वसन्त ऋतु के आगमन से नदियों के तीर पर पक्षी नृत्य कर रहे हैं। पुष्पराशि के साथ संसर्ग होने पर भौंरों में मस्ती आ गई है (और) स्त्रियों का कटाक्ष कामदेव का क्रीड़ा-स्थल बन गया है।

इसी प्रकार उपमा के भी कई श्रेष्ठ उदाहरण मिलते हैं।

सहृदयहृदये निहितं

निर्गुणमपि गुण्यमेव कविवचनम्।

विरसमपि मधुनि भावित–

मामलकं हृद्यमेवव भवति फलम् ।।

सहृदयों के हृदयो में स्थान पा जाने पर कवि का निर्गुण वचन भी गुणकारी बन जाता है। आंवले का नीरस फल भी मधु में पगा होने पर स्वादिष्ठ ही लगता है।

एक और उदाहरण लीजिए–

क्रूरस्य न स्यादबलाजिहीर्षोः

कृपारसस्तत्परिदेवितेन।

किं द्रावयेत्कीरवधूविलाप

श्चितं बिडालस्य बलाज्जिघांसोः ।

अबला का अपहरण करना चाहते हुए क्रूर में उसके (अबला के) विलाप से दया न उपजेगी। क्या मैना का विलाप बलपूर्वक मारना चाहते हुए बिडाल के मन को द्रवित कर सकता है!

लेखक ने कई स्थानों पर ऐसे ऐसे भाव श्लोक-बद्ध किये हैं जिनसे लेखक की दार्शनिक प्रवृत्ति स्पष्ट लक्षित होती है–

कामादय : पंच भावा वार्धक्यं यान्ति कालतः।
अन्तकालेपि लोभस्तु तारुण्यं प्रतिपद्यते।।

काम आदि ( काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार ) पांच भाव समय के अनुसार वृद्धत्व को प्राप्त होते हैं। किन्तु लोभ अन्तकाल तक भी तरुण ही बना रहता है।

चात्तुरोक्ति के प्रति भी लेखक का प्रचुर लगाव लक्षित होता है। धन के प्रति अत्यन्त सजग आढ्यपति धन के विषय में बहुत सुन्दर चतुरोक्ति प्रस्तुत करता है–

या मा सा मायेति हि
मायाशब्दस्यासदर्थममिधत्ते।
तदयुक्तं तस्यार्थो
लक्ष्मीरित्येव निश्चितो भवति ।

या मा है ( जो लक्ष्मी है ) वही ( पदपरिवर्तन के कारण ) माया बन कर मा शब्द के अविद्यमान अर्थ को कहती है। (पर) यह अनुचित है क्योंकि लक्ष्मी यही उसका अर्थ सुनिश्चित है।

एक और उदाहरण लीजिए –

मयि भवति यथा तवैष भावस्त्वयि च तथेत्यवगच्छ मे नितान्तम् ।

अभिलषित समागमहि यावत् स्वगुणगण डप्यवमानिता जनस्य

इन श्लोकों को सुभाषितों की कोटि में भी रखा जा सकता है ।

प्रकृति वर्णन में नाटककार अत्यन्त पटु है–

पुष्पगुच्छविनम्रमस्तका

मन्दमारुतविकम्पिता लताः ।

अंगभगिमविलासभासुरा

मोहनाग्य इव लान्ति मानसम् ।

फूलों के गुच्छों से झुके हुए माथे वाली हल्के हल्के हवा के झोंकों से डुलाई हुई लताएं हावभावों के विलास से रमणीय रमणीयों की तरह दिल ले ही हैं । (मन को आकर्षित कर रही हैं) ।

प्रकृति के कार्यकलाप में और मानवीय हावभावों में कितना साम्य है इसका दिग्दर्शन हमें लेखक के निम्नलिखित श्लोक से मिलता है–

चूतं पल्लवितं स्वमेव कलयन्कूजत्यहो कोकिलो

वल्लीं पुष्पवतीं तथा मधुमतीं मृगोऽभितो भ्राम्यति ।

तारुण्यं नवमजरीव सुमगं सौन्दर्यलीलाचितं

नारीणामवलोकयन्नवयुवा किं वान वा गायति ।

क्या बात है! पल्लवित आम्रवृक्ष को अपना समझते हुए कोयल कूक रही है । फूलों से लदी पुष्प-रस-सम्पन्न लता के चारों ओर भंवरा चक्कर काट रहा है, स्त्रियों के नई नई मंजरी की तरह सुहावनी सौन्दर्य शोभायुक्त तरुणाई

को देख नवयुवक क्या क्या नहीं गाता ?

लेखक की भाषा सरल किन्तु प्रांजल है। कहीं कहीं पर हिन्दी की छाया है किन्तु उससे भाषा में अथवा नाटक में कहीं पर भी व्यवधान दृष्टिगोचर नहीं होता।

उदाहरण स्वरूप सरोजिनी के निम्नलिखित शब्द –

रहःस्थिताम्याभावाभ्यां सर्वमपि श्रुतम्। नह्येतादृशे जने मनो लगति।

अर्थात् – ऐसे व्यक्ति के साथ मन नहीं लगता।

अन्त में यह कहना अनुपयुक्त नहीं होगा कि नाटक सभी दृष्टिकोणों से एक सफल कृति है और उसमें आधुनिक युग से सम्बन्धित भावनाओं और समस्याओं पर आधुनिक ढ़ंग से ही दृष्टिपात किया गया है।

## कतिपय आधुनिक समस्याओं पर दृष्टिपात

अत्याधुनिक कथानक के साथ साथ लेखक ने कतिपय आधुनिक समस्याओं पर भी दृष्टिपात किया है जिनका अवलोकन आज के समाज की आन्तरिक स्थिति को पूर्णतया प्रत्यक्ष कर देता है–

### 1– दहेज प्रथा

भारत में दहेज प्रथा का आरम्भ काफी देर के पश्चात् ही हुआ होगा क्योंकि पहले तो भारत में इस प्रथा का उल्लेख नहीं मिलता। इस तथ्य के प्रति लेखक पूर्णतया जागरूक है।

देशे यत्र तपोधन इति जनाः पूर्वे प्रथामार्जय

न्नेवं मानयशोधना इति च निर्वर्त्यारयद्भुतं कर्म यत् ।

त्यक्त्वाऽत्रैव मनः समुन्नतिमिमे ते भारतीयाः कथं

जाताः शुल्कधना इति ह्रियमुपेत्याहो! मनो दूयते ।

पहले जिस देश में लोगों ने तपोधन (तपस्या ही जिसका धन है) एवम् अद्भुतकर्म करने के कारण मान यशोधन (मान और यश है धन जिसका) इस रूप में प्रसिद्धि प्राप्त की – वे ही भारतीय मन की इस उच्चता का परित्याग कर शुल्क-धन (शुल्क है धन जिनका) बन गये हैं, यह देख कर मन लज्जित एवं दुःखित हो रहा है ।

किन्तु अब दहेज प्रथा चल पड़ी है और उसका परिणाम भोगना पड़ रहा है । गरीब या मध्यस्थ परिवार वालों को । यदि किसी की एक ही कन्या है और धन की कमी नहीं उसे तो अपने वैभव के प्रदर्शन के लिये लड़की के विवाह का अवसर अच्छा है । किन्तु जिनके पास अधिक धन भी नहीं और कन्याएं भी एक से अधिक हैं, उनकी क्या गति होती होगी ? श्री पर्वत नामक व्यक्ति जो धन के बल पर ही आढ्यपति को अपनी कन्या पुत्रवधू के रूप में स्वीकार करवाता है उसके निम्नलिखित शब्द बड़े ही हृदयहारी हैं: –

सर्व खत्वपि वित्तमर्जितमहो । पित्रेऽस्य शुल्कात्मना

दत्त्वा योग्यवरोद्य लब्ध इति मे चित्तं चिरान्निर्वृतम् ।

एवं श्राम्यति चेन्मनो मम तदाप्तावेककन्यापितुः

प्रोत्ताम्यन्ति कथंनु तद्बहुलताभारेऽन्यसंसारिणः ।

अहो! धन से सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है । वर के पिता को धन दे कर योग्य वर की प्राप्ति हो गई इससे मेरा चित्त बहुत प्रसन्न है । एक कन्या का पिता होने के कारण ही मुझे इतना परिश्रम करना पड़ा । अन्य संसारी लोग जिनकी अधिक कन्यायें हैं, उनका क्या होता होगा?

आजकल तो स्थिति यह है कि कन्या को सजीव प्राणी न समझकर एक निर्जीव वस्तु के रूप में समझा जाता है । उधर वर जितना अधिक योग्य होगा उसकी कीमत उतनी ही अधिक होगी । आढ्यपति अपने पुत्र के विवाह

सम्बन्ध के लिये केवल ही एक शर्त रखता है–

आढयपति – आर्य! अभिलिषितं वरशुल्कं यदि दीयते तदा सर्वमप्यभिमतं धनसाध्यं रवल्विदं जगत्।

यदि (मुझे) अभिलषित दहेज दे देंगे तो सम्पूर्ण इष्ट कार्य सम्पन्न हो जायेगा। धन से ही इस जगत् में सब कुछ सिद्ध हो जाता है।

श्री पर्वत के यह पूछने पर कि उन्हें वर-शुल्क कितना चाहिए तो आढ्यपति बड़े घमण्ड से कहता है –

गुणचन्द्रः कलापूर्णः स्वर्णपूर्णाश्च कोष्ठकाः
येन मे हृदयं पूर्णं भवेत्तद्दातुमर्हसि ।

गुणचन्द्र कलापूर्ण है और कोठे स्वर्ण से भरे हैं। जिससे मेरा मन भर सके वही मुझे दो।

जिस प्रकार किसी वस्तु को खरीदते अथवा बेचते समय दोनों पक्षों में वाद-विवाद होता है उसी प्रकार इस सम्बन्ध में भी वाद-विवाद होता है। श्री पर्वत वर-शुल्क कम करने के लिये कहता है तो आढ्यपति उसका उत्तर निम्नलिखित शब्दों में देता है –

भवतो मुखंदृष्टवा प्रथममेव मया संख्यायामल्पीयसी मात्रा प्रदर्शिता। यद्यंगीकारः स्यात्तर्हि प्रवृत्तिः कियतां, नोचेद्यथागतं निवृत्तिरेव शरणमाश्रीयताम्।

आपका मुंह देख कर पहले ही मैंने धन की मात्रा कम कही है। यदि आपको स्वीकार है तो आगे बढ़ं, नहीं तो वापिस हो लें। (अर्थात् यदि आपको स्वीकार है तो विवाह कार्य करें, नहीं तो यह सम्बन्ध नहीं हो सकता) ।

इस दहेज प्रथा से ही सम्बद्ध एक और समस्या है और वह यह कि धनवान् व्यक्ति यदि चाहे तो धन के बल

से ही एक से अधिक पत्नियों का वरण कर सकता है। किन्तु इससे समाज की मानसिक रूप से कितनी हानि होती है इसका अनुमान लगाना ही कठिन है। क्या स्त्री एक भोग-विलास की वस्तु के अतिरिक्त और कुछ नहीं, जिसे धनवान् व्यक्ति पैसे के बल पर खरीद सकता है। सरोजिनी सुन्दरी है इसलिए श्रीधर नामक व्यक्ति विवाहित होते हुए भी और पत्नी के जीवित होते हुए भी केवल धनी होने के कारण धन दे कर सरोजिनी को खरीद लेना चाहता है किन्तु सुशीलता की मूर्ति सरोजिनी उसकी इस अनुचित मांग को सरलतापूर्वक ठुकरा देती है।

ग्रामोद्धार

आधुनिक भारत का शिक्षित युवक वर्ग यदि कृषि-कर्म की ओर इतना उदासीन न हो जितना वह आजकल है, तो भारत को पुनः स्वर्ण की चिडिया की उपाधि अवश्य मिल सकती है। इस नाटक का नायक गुणचन्द्र पढ़ा लिखा होने पर भी कृषि-कर्म को बहुत महत्व देता है। जिस समय उसके धनवान पिता ने उसे अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति से वंचित कर दिया, उस समय उसने कृषि-कर्म द्वारा पुनः समृद्धि प्राप्त कर ली। गुणचन्द्र की कृषि के प्रति रुचि देखकर ही पाटलिका कहती है ––

आर्य! आभ्रातक! सस्यसंपद्विशेषे न केवलं पुरुषस्य भाग्यं कारणम् किंतु प्रयत्नभारोऽपि नितरामपेक्ष्यते ।

हे आभ्रातक! सस्य की संपदा में केवल पुरुष का भाग्य ही कारण नहीं है वरन् प्रयत्न की भी उपेक्षा है।

एक अन्य स्थान पर पुनः गुणचन्द्र के कृषि-कर्म की प्रशंसा करती हुई पटलिका कहती है–

आभ्रातक! यथैवं देशे सर्वत्र कृषिकर्मण्यनलसता स्याज्जनस्य तर्हि फलपुष्पादीनां क्षीरसमृद्धेश्च न कुत्रापि ह्रासः संभवेत् ।

हे आभ्रातक! यदि देश में सभी स्थानों पर कृषि-कर्म में इतनी ही निरलसता हो तो फल पुष्प तथा दूध की समृद्धि का कभी ह्रास न हो।

भ्रमरिका अत्यन्त हर्षित होकर गुणचन्द्र की वाटिका की समृद्धि का वर्णन करती है।

रोदोगह्वरतुल्यकूपसलिलैर्यन्त्रोत्थितैर्वर्धितै
नारीकेर महीरुहैः फलभरादाभुग्नमस्ताचितैः।
व्याभग्राह्यशलाटुहेमपनसैश्चित्रै रसालद्रुमै
रारामो मधुकेतकीपनसरभ्याद्यैश्च रम्यो महान्।।

अर्थात्–

कृषि-कर्म की उन्नति के साथ ही साथ ग्रामों की स्थिति में भी परिवर्तन होगा और आज जैसी दुर्दशा ग्रामों की दृष्टिगोचर होती है उसके बिलकुल विपरीत अत्यन्त समृद्धि होगी।

इन समस्याओं के अतिरिक्त और कितने ही तथ्य हैं जिनकी ओर लेखक की दृष्टि गई है। आज के युग में धन को ही सबसे अधिक महत्व दिया जाता है, धन के पीछे सदाचार और सत्य को तिलांजलि दे दी जाती है, सभी सम्बन्धियों से सम्बन्ध टूट सकता है लेकिन धन से सम्बन्ध मरने से पहले नहीं टूटता, इसी तथ्य को दृष्टि में रख कर लेखक कहता है –

वीणानादो मोहनो नैव नादो, नैवाह्लादी कामिनीकण्ठनादः
सर्वोत्कर्षी रुप्यकस्यैव नादो मुग्धो बालोऽप्यत्र यन्मोहमेति।।

वीणा की झंकार मोहित नहीं करती, कामिनी कण्ठ की ध्वनि भी आह्लादित नहीं करती, सबसे बढ़कर रुपये की ही झनझनाहट है, जिससे कि भोला भाला बच्चा भी मुग्ध हो जाता है।

इसी धन के महत्व के अंगीकार करने के साथ ही एक और समस्या जुड़ी हुई है और वह है, उत्कोच। जो

व्यक्ति धन को ही सबसे अधिक महत्व देता है, वह कोई भी कार्य करने से पहले उसका मूल्य मांगेगा इसीलिए उत्कोच प्रथा भी आधुनिक युग में अपनी चरम सीमा पर पहुंच चुकी है। तभी तो लेखक ने सुधापूर्ण के मुख से कहलवाया है—

न विद्वत्ता न वा शौर्यं न रूपं न शुचिर्मतिः ।
कार्यनिर्वहणे दक्षा राजद्वारि धनं बिना।।

राज्यकर्म करने में न विद्वत्ता, न शूरता, न रूप, और न ही अच्छी बुद्धि काम आती है, वहां तो केवल धर्म ही काम आता है।

किन्तु जहां एक ओर लेखक धन के महत्व को ही सर्वोच्च समझता है वहां उससे भी उदात्त एक और सम्बन्ध ा की घोषणा भी कर देता है। वह है मां का प्रेम। सम्पूर्ण संसार चाहे स्वार्थ-वश होकर पाप करे, किन्तु मां का प्रेम एक ऐसा तत्व है , जो इन सब स्वार्थों से ऊपर उठ कर निस्वार्थ भाव से अपने पुत्र के लिये सब कुछ त्याग करने को उसे प्रेरित करना। गुणचन्द्र के पास जब कोई सहारा नहीं रहा, तब उसकी मां ने ही अपना सर्वस्व उसे दे दिया। तभी गुणचन्द्र कहता है —

ज्ञाते कुक्षिमुवागते सुमुखता,
मोदो मनाक्स्पन्दिते,
जाते जन्मकृतार्थता, परवशीभावो गिरामुद्गमे।
प्राणा एव पणो विपत्सु, समताऽभावो रूप
ज्यायस्त्वे ऽपि शिशुत्वभावनम
मातुस्सुते स्निग्धता।

अहा, मां का पुत्र के प्रति कितना स्नेह भाव! कोख में आया हुआ जान मुंह खिल उठता है, तनिक हिलने-डुलने पर आनन्द होता है, प्रसव होने पर जन्म सफल लगता है, उसके बोलना आरम्भ करने परवशता हो जाती है,

आपत्ति आने पर प्राणों की भी बाज़ी लग जाती है। सौन्दर्यादि में अतुलनीयता और बड़े होने पर भी शिशुत्व की भावना बनी रहती है।

# ' श्री सरोजिनी सौरभम् '

आन्ध्र प्रदेश के महीघर वेंकटराम शास्त्री द्वारा रचित श्री सरोजिनी सौरभम् नामक नाटक केवल काल की दृष्टि से ही नूतन नहीं, अपितु विषय और उसके प्रदर्शन के ढ़ंग से भी नूतन है। इससे आधुनिक संस्कृत – साहित्य रत्नाकर में एक और ग्रन्थ रत्न की समृद्धि हुई है इसमें सन्देह नहीं।

इसमें नौ अंक हैं। इसे प्रकरण की कोटि में रखा जा सकता है। आधुनिक समस्याएं जैसे प्रथा, जाति कलह, ग्रामोद्धार, जनता की समुन्नति, इत्यादि का वर्णन बहुत ही सुन्दर रूप में किया गया है।

## कथानक –:

सरोजनी सौरभम् नामक नाटक का कथानक बहुत ही सरस है। इसमें श्रृंगार रस के साथ साथ वीर रस का भी प्रचुर परिपाक है। नायक गुणचन्द्र जहां नायिका सरोजिनी को उन्मत हाथी के चुंगल से वीरता पूर्वक मुक्त करता है, वहां उसके प्रेम के बंधन में स्वयं इतना बंध जाता है कि अनन्त स्वर्ण और धन – राशि देने वाले वैवाहिक सम्बन्ध को ठुकरा कर साधारण धन वाली सरोजिनी का ही वरण करता है। ऐसा करने में उसे अपने पैतृक धन से भी वंचित होना पड़ता है किन्तु उसे इस बात की तनिक भी चिन्ता नहीं है।

कथानक का प्रारम्भ इस प्रकार होता है। अत्यन्त धनवान् किन्तु साथ ही साथ अत्यन्त कृपण आढ्यपति का पुत्र गुणचन्द्र सम्पूर्ण गुणों की खान है। कुलगुरु देवव्रत भी उसके व्यवहार से अत्यन्त प्रसन्न और सन्तुष्ट है। उसका एक मित्र सुधापूर्ण है जोकि साधारण स्थिति का युवक है। एक बार सुधापूर्ण और गुणचन्द्र दोनों बैठे वार्तालाप कर रहे होते हैं कि इतने में शोर मच जाता है कि एक जंगली हाथी शहर के अन्दर आ गया है और उसने एक नवयुवती को अपनी सूंड में दबा लिया है। सम्पूर्ण नगरवासी त्रस्त हैं, उस लड़की को कोई भी नहीं मुक्त करवा सकता। गुणचन्द्र उसी समय जा कर शस्त्र प्रहार द्वारा हाथी का वध करके नवयुवती को मुक्त कर देता है, तथा मूर्च्छित युवती को अपने घर ले आता है। वहां उपचार करने पर युवती जब होश में आती हे तो गुणचन्द्र के प्रति बहुत कृतज्ञता प्रकट करती है। स्वयं गुणचन्द्र भी उसकी रूप-माधुरी और सुशीलता से प्रभावित हो उससे प्रेम करने लगता है। इधर गुणचन्द्र का धनवान किन्तु कृपण पिता उसका सम्बन्ध एक ऐसी कन्या से कर देता है जिसका पिता उसे मुंह मांगा धन देने को उद्यत है। गुणचन्द्र इस सम्बन्ध को अस्वीकार कर देता है। पिता अपनी बात की अस्वीकृति को सहन नहीं कर सकता अतः क्रोध में आ कर कहता है कि यदि गुणचन्द्र पिता द्वारा किया हुआ सम्बन्ध स्वीकार नहीं करता तो उसे पैतृक सम्पत्ति पर तनिक भी अधिकार नहीं रहेगा। स्वतन्त्र विचारों वाला गुणचन्द्र पिता की सम्पत्ति की उपेक्षा कर घर छोड़ कर चल देता है। उसकी माता अपना वैयक्तिक धन उसे देती है जिससे वह कृषि कर्म द्वारा अपनी जीविका चलाता है। दूसरी तरफ सरोजिनी जिसे कि गुणचन्द्र ने हाथी से रक्षा की थी, गुणचन्द्र के गुणों से मुग्ध होकर मानसिक रूप से उसी का वरण कर लेती है। श्रीधर नामक एक सम्पन्न व्यक्ति जो विवाहित है, किन्तु कामवश सरोजिनी को भी प्राप्त करना चाहता है, उपनी दूती सरोजिनी के पास भेजता है। सरोजिनी इस सम्बन्ध को ठुकरा देती है और अपनी सखी मरिका के हाथ गुणचन्द्र को पत्र द्वारा सन्देश भिजवाती है कि वह गुणचन्द्र को पति रूप में स्वीकार करना चाहती है। गुणचन्द्र स्वयं उस पर आसक्त हैं, अतः दोनों का विवाह हो जाता है। किन्तु यह बात श्रीधर को बहुत खटकती है। वह गुणचन्द्र पर झूठा अभियोग लगा कर उसे कैद करवा देता है और अपने अनुचरों को आज्ञा देता है कि उसका घर लूट लिया जाय और उसकी पत्नी सरोजिनी को पकड़ लिया जाय। सरोजिनी किसी प्रकार भाग निकलती है, किन्तु शिला के नीचे एक पत्र लिख कर रख जाती है।

गुणचन्द्र के मित्र सुधापूर्ण को जब मालूम होता है कि गुणचन्द्र को झूठी चोरी का अभियोग लगा कर बन्दी बना लिया गया है, तो वह ज्योतिषी का वेश बना कर राजा के पास पहुंचता है। उसके थोड़ी देर के पश्चात् श्रीधर गुणचन्द्र तथा उसका पिता आढयपति फैसले के लिये राजा के पास आते हैं। श्रीधर कुछ ऐसी बातें बताता है जो आढ्यपति से बाद में पूछने सत्य निकलती हैं। इसलिए राजा को सुधापूर्ण के यह कहने पर कि गुणचन्द्र की आकृति देख कर ही उसने जान लिया है कि वह दोषी नहीं है और श्रीधर ने उस पर झूठा अभियोग लगाया है, राजा उसकी बात का विश्वास कर गुणचन्द्र को बन्धनमुक्त करके रक्षाधिपति का पद समर्पित कर देता है तथा श्रीधर को झूठा अभियोग तथा निरापराध प्रजा को तंग करने के कारण बन्दी बना लिया जाता है। गुणचन्द्र सम्पूर्ण कार्य बड़ी निष्ठा और तत्परता से करता है जिससे राजा प्रसन्न होकर सम्पूर्ण राज्य – कार्य उसे सौंप कर स्वयं निश्चिन्त हो जाता है। गुणचन्द्र सभी कार्य करते हुए भी सरोजिनी के वियोग के कारण मन ही मन दुःखी रहता है। एक बार शत्रु से युद्ध करते हुए जीत जाने पर भी शत्रुओं से घायल हुए गुणचन्द्र का उपचार उक हौडिक्कक करता है। उधर सरोजिनी की सखी गुणचन्द्र को योगिनी का वेश धारण करके मिलती है और उसे सरोजिनी का लिखा हुआ पत्र देती है। पत्र पढ़ कर गुणचन्द्र बहुत दुःखी होता है। क्योंकि पत्र का भावार्थ होता है कि पति के दुःख से दुःखी सरोजिनी अब इस संसार में नहीं रहेगी। भ्रमरिका उसे धैर्य बंधाती है कि वह अपनी सखी को अवश्य ढूंढ़ेगी। इतने में वही हौडुक्किक जिसने घायल गुणचन्द्र की परिचर्या की थी, दृष्टिगोचर होता है। गुणचन्द्र के संकेत पर उसे बुलाया जाता है हौडुक्किक ही वास्तविक सरोजिनी है यह जान कर सभी बहुत विस्मित होते हैं और साथ ही प्रसन्न भी होते हैं। गुणचन्द्र अपने परोपकारी मित्र सुधापूर्ण को प्रधान सचिव बना लेता है और सरोजिनी के पिता माणिदास उसकी माता तथा धात्री सहित आ कर गुणचन्द्र और सरोजिनी को आशीर्वाद देते हैं। इसी सुखद वातावरण में नाटक की समाप्ति होती है।

## चरित्र चित्रण

**गुणचन्द्र** –– सम्पूर्ण मानवीय गुणों से युक्त सरोजिनी सौरभम् नाटक का नायक गुणचन्द्र एक स्वावलम्बी युवक के रूप में हमारे सामने आता है। वह स्वयं अपने ही शब्दों में अपनी प्रशंसा नहीं करता अपितु उसके महान् कार्य की उसी की महानता को द्योतित करते हैं। उसके विचार अत्यन्त उच्च हैं। जातीय भेद भाव तथा धन के कारण उच्च नीच का भेद वह पूर्णतया हटा देना चाहता है। उसे यह देख कर बहुत कोध आता है

एकः क्षुधातिकृशतां गतमात्मकुक्षिं
संदश्य दीनमनसा वृणुते हि पिण्डम्।
सोद्धारधारमुपभुज्य रसोत्तमान्न-
मेकस्तु दृप्तमनसा तमपाकरोति॥

एक व्यक्ति तो क्षुधा के कारण बिलकुल साथ लगे हुए पेट को दिखा कर दीन हो कर खाना मांगता है किन्तु दूसरा लगातार डकार मारते हुए उत्तम रस युक्त अन्न खाकर अहंकार से उसका तिरस्कार करता है।

किसी अत्यन्त धनवान व्यक्ति के पुत्र में ऐसी भावनाओं का उदय होना ही उसकी महानता का सूचक है।

गुणचन्द्र के मित्र सुधापूर्ण को जब मालूम होता है कि गुणचन्द्र को झूठी चोरी का अभियोग लगा कर बन्दी बना लिया गया है, तो वह ज्योतिषी का वेश बना कर राजा के पास पहुंचता है। उसके थोड़ी देर के पश्चात् श्रीधर गुणचन्द्र तथा उसका पिता आढयपति फैसले के लिये राजा के पास आते हैं। श्रीधर कुछ ऐसी बातें बताता है जो आढयपति से बाद में पूछने सत्य निकलती हैं। इसलिए राजा को सुधापूर्ण के यह कहने पर कि गुणचन्द्र की आकृति देख कर ही उसने जान लिया है कि वह दोषी नहीं है और श्रीधर ने उस पर झूठा अभियोग लगाया है, राजा उसकी बात का विश्वास कर गुणचन्द्र को बन्धनमुक्त करके रक्षाधिपति का पद समर्पित कर देता है तथा श्रीधर को झूठा अभियोग तथा निरापराध प्रजा को तंग करने के कारण बन्दी बना लिया जाता है। गुणचन्द्र सम्पूर्ण कार्य बड़ी निष्ठा और तत्परता से करता है जिससे राजा प्रसन्न होकर सम्पूर्ण राज्य – कार्य उसे सौंप कर स्वयं निश्चिन्त हो जाता है। गुणचन्द्र सभी कार्य करते हुए भी सरोजिनी के वियोग के कारण मन ही मन दुःखी रहता है। एक बार शत्रु से युद्ध करते हुए जीत जाने पर भी शत्रुओं से घायल हुए गुणचन्द्र का उपचार उक हौडिक्कक करता है। उधर सरोजिनी की सखी गुणचन्द्र को योगिनी का वेश धारण करके मिलती है और उसे सरोजिनी का लिखा हुआ पत्र देती है। पत्र पढ़ कर गुणचन्द्र बहुत दुःखी होता है। क्योंकि पत्र का भावार्थ होता है कि पति के दुःख से दुःखी सरोजिनी अब इस संसार में नहीं रहेगी। भ्रमरिका उसे धैर्य बंधाती है कि वह अपनी सखी को अवश्य ढूंढ़ेगी। इतने में वही हौडुक्किक जिसने घायल गुणचन्द्र की परिचर्या की थी, दृष्टिगोचर होता है। गुणचन्द्र के संकेत पर उसे बुलाया जाता है हौडुक्किक ही वास्तविक सरोजिनी है यह जान कर सभी बहुत विस्मित होते हैं और साथ ही प्रसन्न भी होते हैं। गुणचन्द्र अपने परोपकारी मित्र सुधापूर्ण को प्रधान सचिव बना लेता है और सरोजिनी के पिता माणिदास उसकी माता तथा धात्री सहित आ कर गुणचन्द्र और सरोजिनी को आशीर्वाद देते हैं। इसी सुखद वातावरण में नाटक की समाप्ति होती है।

## चरित्र चित्रण

गुणचन्द्र —— सम्पूर्ण मानवीय गुणों से युक्त सरोजिनी सौरभम् नाटक का नायक गुणचन्द्र एक स्वावलम्बी युवक के रूप में हमारे सामने आता है। वह स्वयं अपने ही शब्दों में अपनी प्रशंसा नहीं करता अपितु उसके महान् कार्य की उसी की महानता को द्योतित करते हैं। उसके विचार अत्यन्त उच्च हैं। जातीय भेद भाव तथा धन के कारण उच्च नीच का भेद वह पूर्णतया हटा देना चाहता है। उसे यह देख कर बहुत क्रोध आता है

एकः क्षुधातिकृशतां गतमात्मकुक्षिं
संदश्य दीनमनसा वृणुते हि पिण्डम्।
सोद्धारधारमुपभुज्य रसोत्तमान्न-
मेकस्तु दृप्तमनसा तमपाकरोति॥

एक व्यक्ति तो क्षुधा के कारण बिलकुल साथ लगे हुए पेट को दिखा कर दीन हो कर खाना मांगता है किन्तु दूसरा लगातार डकार मारते हुए उत्तम रस युक्त अन्न खाकर अहंकार से उसका तिरस्कार करता है।

किसी अत्यन्त धनवान व्यक्ति के पुत्र में ऐसी भावनाओं का उदय होना ही उसकी महानता का सूचक है।

गुणचन्द्र के विचार में यदि किसी के पास धन है, तो वह दान करने के लिये है, यदि अधिकार है तो वह कर्तव्य को उचित पालन के लिये है। इसीलिए उसके शब्दों में एक आदर्श नृप का बहुत ही सुन्दर चित्रण किया गया है।

क्वचिदुपचितमर्थं भोगशून्यं नरेशो
जलधिजलमिवार्कः सभ्यगाचष्य युक्त्या।
सरित इव सुदीर्घाः कल्पयेद्भव्यवृत्तीः
कृतमतिरनुजीवेत्ताः समाश्रित्य लोकः॥

भोग विलास से रहित राजा, (कर आदि लेकर) इकट्ठे हुए धन से प्रजा का पालन उसी प्रकार करता है जिस प्रकार सूर्य समुद्र से युक्तिपूर्वक जल चूस कर सरिता के रूप में उसे लोक कल्याण के लिये बहा देता है।

इतने बड़े धनवान का पुत्र होने पर भी वह अपने परिश्रम से जीविका उपार्जन करना चाहता है। निष्क्रिय जीवन को तो वह चोर के जीवन के समान समझता है। तभी वह कहता है –

गुण– सत्यमुक्तं भवता। तथाप्यात्मवृत्तिः सर्वैरात्मशक्त्यैव निर्वर्तनीयेति तदन्यत्सर्वं चौर्यमेव भवेदिति च मे मतिः।

आपने ठीक कहा है। तो भी सभी को अपनी जीविका अपनी शक्ति से ही कमानी होगी। इसलिये उसके सिवाय बाकी सब चोरी ही होगी यही मेरी धारणा है।

संकट के समय धैर्य धारण करना, यही महान पुरुषों का स्वभाव है। जिस समय हाथी की सूंड में फंसी हुई युवती को संकट से मुक्त करने के लिये कोई प्रस्तुत नहीं होता उस समय युवा गुणचन्द्र धैर्यपूर्वक संकट का सामना कर युवती को बचा लेता है। गुणचन्द्र के विचार में तो मनुष्य कहलाने योग्य ही वही व्यक्ति है जो धैर्यगुण से युक्त है।

धैर्यमेव कुसुमस्य वृन्तव
द्बन्धनं हि हृदयस्य संकटे।
विश्लथं भवति यस्य तत्स्वके
च्दाययाऽपि मरुतेव पात्यते।

संकट आने पर फूल के लिये टहनी की तरह धैर्य ही हृदय का बन्धन होता है। जिसका वह (बन्धन) ढ़ीला हो जाता है वह अपनी परछाई से भी ऐसे गिर जाता है मानों उसे वायु से गिरा दिया गया हो।

गुणचन्द्र घायल और मूर्छित युवती को कन्धे पर डाल कर घर ले आता है। उपचार करने पर जब उसे संज्ञा प्राप्त होती है तब गुणचन्द्र उसे छूने को दोष मानता है। चाहे वह सुन्दर युवती के प्रति प्रेमभाव रखता है किन्तु वह स्वकीया नहीं है इसलिये उसके प्रति निम्नलिखित शब्द गुणचन्द्र के उच्च चरित्र के प्रतीक हैं।

कृतार्था वयं यत् इयं प्राणान्वहति। इतः परं नाहमिं परवतीमेनां स्प्रष्टुम्।
हम लोग कृतार्थ हो गये क्योंकि वह (युवती) जीवित है। अब इसे मैं स्पर्श नहीं कर सकता।

सरोजिनी अपने प्राणों की रक्षा करने वाले उदार चेता पुरुष की जैसी प्रशंसा करती है वह कितनी यथार्थ है—

रूपे गम्भीरत्वं
नादे धीरत्वमात्मगुणवत्त्वम्।
मनसि च दयद्विता, का
तरुणी प्राणेश मेनभुपयाति।

रूप में गम्भीरता है। आवाज़ में धैर्य और आत्मगुण प्रधान है। मन में दया है। ऐसी कौन सी युवती होगी जो इसेको प्रियतम के रूप में प्राप्त करेगी।

गुणचन्द्र का पिता उसे बलपूर्वक एक ऐसी कन्या से बांधना चाहता है जिसका पिता आढ्यपति को मुंह मांगा धन दे सकता है। गुणचन्द्र को यह बात तनिक भी पसन्द नहीं वह तो स्त्री – पुरुष के सम्बन्ध को आधार शिला प्रेम को मानता है न कि धन को। उसके मत में——

प्राभवं संपदो नैव कारणं प्रेमसंगतेः।
सर्वानतीत्य बध्नाति स्त्री पुंसौ हृदयं समम्।

स्त्री और पुरुष के मिलन में सम्पत्ति कभी कारण नहीं होती। प्रेम ही सभी कारणों का त्याग करके दोनों के हृदय को बांधता है।

गुणचन्द्र में केवल मानसिक सौन्दर्य ही पराकाष्ठा पर हो, ऐसी बात नहीं, शारीरिक सौन्दर्य में भी वह अद्वितीय है। सहोक्ति अलंकार का आश्रय लेकर कवि कहता है ——

नासायां मुजमर्धिन भावनिवेह चोच्चैस्थितिर्मार्दवं
हस्तोष्ठांघ्रितले तथा मनसि फालोरः सीले विस्तृतः
दैर्घ्यं पीवरबाहुदण्डयुगले चालोचने लोचने
मुक्तासार विजृम्भणं स्मितकलाप्रादुभवे प्राभवे।

(गुणचन्द्र) में उच्चता है। उसकी नासिका, कन्धों और विचारों में, कोमलता है। उसके हाथों, होंठों और पांव के तलुवों में विस्तार है। उसके मन में और फाल के समान वक्षःस्थल में दीर्घता है उसके दोनों सुपुष्ट भुजदण्डों, आलोचका और नेत्रों में, एवच उत्तम मोतियों की जगमगाहट है उसके स्मित की रेखा से प्रकट होने वाली प्रभुता में।

गुणचन्द्र यदि मत्त हाथी के समक्ष निर्भय होकर खड़ा हो सकता है तो सुन्दरी पत्नी के आगे अत्यन्त नम्र होकर झुक भी सकता है।

प्रेयसी भुजलतानिन्त्रितः
को युवा भुवि न नम्रसामियात् ।

पृथ्वी पर ऐसा कौन सा तरुण है जो कि प्रेयसी की मुजलताओं में नियन्त्रित होने पर भी नम्र न बने?

गुणचन्द्र के उपर्युक्त शब्दों में सरोजिनी के प्रति उसका अकथनीय प्रेम प्रकट होता है। अत्यन्त कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी जो व्यक्ति व्याकुल नहीं होता, अपनी प्रेयसी से विमुक्त होने पर उसका सम्पूर्ण धैर्य लुप्त हो जाता है इसमें कारण और कुछ नहीं प्रेम की अतिशयता है। गुणचन्द्र को जब राजा रक्षाध्यक्ष की पदवी प्रदान कर देता है, बाह्य दृष्टि से उसके पास सब कुछ है किन्तु उसका अन्तस्तल प्रिया के वियोग से जल रहा होता है। जब भ्रमरिका के सन्देश से उसे सन्देह हो जाता है कि शायद सरोजिनी ने आत्महत्या न कर ली हो उस समय उसकी करुण दशा का वर्णन अत्यन्त हृदय विदारक है, उसकी करुण दशा देख कर ही भ्रमरिका कहती है—

नाब्धिरेतु विलयं वडवाग्ने
नार्द्रिरेतु पतनं पविधातात् ।
चित्तवांस्तुक इवात्र न मुह्येत ।
प्रेम संभृतकलत्र वियोगात् ? ।

- वडवाग्नि के जलने पर समुद्र का विलय ( शोषण ) भले ही न हो, वज्र प्रहार से पर्वत का पतन भी भले ही न हो, पर प्रियतमा के वियोग से कौन ऐसा सहृदय व्यक्ति है, जो कि मोह को प्राप्त न हो।

गुणचन्द्र की महत्ता इसी में है कि जब वह धनवान का पुत्र होता है तो उसे घमण्ड नहीं होता फिर जब परिस्थिति वश उसके पास कुछ नहीं रहता तो वह निरुत्साहित नहीं होता और अन्त में जब उसे राजा घोषित कर दिया जाता है, तो उसे ऐश्वर्य मद नहीं होता। राज्यपद लाभ कर वह उसी समय घोषणा करवाता है –

राज्येऽस्मिन्नवधूय दर्पमथवा सकोचमभ्यन्तरं
तस्यास्युन्नतिमाकलय्य नितरां योवा जनोऽगीकृतम्
स्वीयं कर्म सभापयत्यहरहर्धन्यः स एवात्मवा –
नेवं चेन्मलपूर सावयममात्यो वेति भेदो मे ।।

इस राज्य में अहंकार का अथवा आन्तरिक संकोच का परित्याग कर जो व्यक्ति उस ( राज्य ) की उन्नति का ध्यान कर दिन प्रति दिन अंकीर्हत कार्य को पूरी तरह निबाहता है, वह मनस्वी धन्य है। इस परिस्थिति में वह मलपूर है और यह ( उसका ) मंत्री है। इस प्रकार का भेद मैं नहीं करता।

इन सब बातों से ज्ञात होता है कि गुणचन्द्र का चरित्र बहुत ही भव्य है। अन्त में गुणचन्द्र के शब्दों को ही प्रमाण मान कहना पड़ता है –

सम्पत्तिदानं नहि मुख्यमस्ति
न श्रान्तिदानं न च भमिदानम् ।
दीनस्थ लोकस्य सुखोप्ति हेतुः
प्रेमैक दानं नृवरेषु भूयात ।।

धन का दान मुख्य नहीं है और न ही श्रमदान तथा भूमि का दान देना ही महत्वपूर्ण है । दीन हीन जनों की सुख प्राप्ति के लिये प्रेम रूप दान ही श्रेष्ठ पुरुषों को देना चाहिए ।

Black Board चरित्र चित्रण

सरोजिनी ––

भारतीय नारीत्व की आदर्श प्रतिमा, प्रेम के समक्ष धन वैभव को ठुकरा देने वाली तथा पति के चरण – चिन्हों पर बलिदान होने वाली सरोजिनी इस नाटक की नायिका है । नायक से भी अधिक महत्व नायिका का है, गुणचन्द्र से अधिक बड़ा बलिदान सरोजिनी का है तथा प्रेम के उच्चतम भाव की अनुभूति गुणचन्द्र से अधिक सरोजिनी ने की है, इन तथ्यों में लेखक स्वयं भी विश्वास करता है तभी नाटक का नाम अन्य पात्र के अथवा घटना के आधार पर न रख कर नायिका सरोजिनी के नाम पर रखा है । उसने

श्रीधर नामक व्यक्ति सरोजिनी पर आसक्त है, वह अपना सम्पूर्ण धन सरोजिनी पर निछावर कर देना चाहता है यहां तक कि अपनी पहली पत्नी का परित्याग भी कर देना चाहता है किन्तु सरोजिनी के सामने तो एक गुणचन्द्र ही आदर्श – रूप में स्थित है, और जब वह मानसिक रूप से उसे पति रूप में वरण कर चुकी है तो दूसरे किसी व्यक्ति का प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि – स्वयं सरोजिनी के इन शब्दों में–

विशुद्ध प्रेमयुक्तानां स्त्रीणां हृदयतन्तुषु ।
कालुष्यभाव संसर्गो न स्थानं लभते क्वचित ।।

स्त्रियों के विशुद्ध प्रेम से युक्त हृदय तंतुओं में कभी कलुष भाव स्थान नहीं प्राप्त होता ।

यदि आन्तरिक प्रेम है जो बाह्य आडम्बर की कोई भी आवश्यकता नहीं । सरोजिनी गुणचन्द्र के साथ यदि सच्चा प्रेम करती है तो उसे अन्य किसी भी बाह्य प्रपंच की आवश्यकता नहीं । तभी वह स्वयं कहती है –

पुंसामुल्लसतां वधुजन समावेशे हठात्संभवे –
दौद्धत्यं श्रयते ह्यसौ समरसीभावाय हावादिकम् ।
सौहार्दं जनिते परस्पर परीतोषाय भूषादिकं
नानन्दामृत पान तृप्त हृदयैः साडम्बरं कांक्ष्यते ।।

पुरुषों में उल्लास होने पर यदि वधूजन के साथ संयोग हो तो वह एक रस होने के हेतु हठात् हाव भावादि रूप उद्धतता का आश्रय लेगा। पर जब परस्पर अनुराग उत्पत्ति हो चुकी तो आनन्दामृत के पाने से तृप्त मन वाले आभूषणादि की आडम्बर पूर्वक इच्छा नहीं करते।

सरोजिनी अपने हृदय के भावों को व्यक्त करना जानती है। जिस व्यक्ति से वह प्रेम करती है, उससे किसी प्रकार का दुराव-छिपाव उसे उचित प्रतीत नहीं होता। वह पत्र लिख कर अपनी सखी के हाथ गुणचन्द्र के पास भेजती है।

दाता प्राणानिलस्य प्रभुगुणसुरभिः कन्यकानां वरोऽहं
श्चित्ते माधुयधुर्यस्त्वमिति मम मनः सज्जितं त्वय्यतीव।
कारुण्यं चेत्तवास्यां सहवसतिमुदं देहि तुल्यप्रपत्तया
प्रीतिश्चेदत्र नस्यात्प्रियगुण। कुरु मां किकरीं त्वत्सकाशे॥

तुम प्राणवायु देने वाले हो, प्रभुता के अनुरूप गुणों से सुगन्धित हो, कन्याओं के द्वारा वरण योग्य हो, मन में अतीव माधुर्य लिये हो। इसलिये मेरा मन तुम में अतीव आसक्त है। यदि तुम्हें मेरे लिये दया है तो मुझे अपने सहवास का आनन्द प्रदान करो। हे गुणों के प्यारे। यदि तुम में मेरे जितना प्यार न हो तो मुझे नौकरानी के रूप में स्थान दे दो।

दोनों का विवाह हो जाता है किन्तु थोड़े दिनों के पश्चात् ही उस वैवाहिक सुख में व्यवधान पड़ जाता है। श्रीधर के कुचक्र के कारण गुणचन्द्र को पकड़ कर ले जाते हैं। उस समय सरोजिनी भी अपने प्रियतम का अनुसरण करना चाहती है और कहती है –

अहमप्यनुवते जीवितेश्वरम् –– अर्थात् मैं भी अपने प्राण प्रिया का अनुसरण करूंगी।

इस पर दुर्दान्त नामक व्यक्ति उसे गृह में रहने की सलाह देता है तब उसके उद्‌गार कितने मर्मस्पर्शी हैं।

भर्ता यदि स्याद्विमनास्तदास्य
सधर्मिणी शोकहतान्तरात्मा।
तथा हि दीपो धृतकज्जलश्चेत्
शिखापि तस्य प्रविलुप्तशोभा।

यदि पति का मन दुःखी हो तो उसकी सहधर्मिणी भी शोक में डूब जाती है जिस प्रकार दीपक में (तेल के अभाव से) कालिमा आने पर उसकी शिखा की शोभा भी लुप्त हो जाती है।

पति सुख के अतिरिक्त उसे संसार के किसी भी ऐश्वर्य की उपेक्षा नहीं है। श्रीधर के पास सब कुछ होते हुए भी वह उसका नाम लेना भी नहीं चाहती। क्योंकि वह उसके लिए पर = पुरुष है। इसीलिए श्रीधर के पुरुष आ कर जब उसे पीड़ित करते हैं तो वह अत्यन्त गर्व से कहती है ––

म्रियेत वा जीवतु वा सरोजिनी
कुलाँगनेयं कुलटा कथं भवेत् ?
चिरं हि यन्त्रेण निपीड़िताऽपि सा
जहाति माधुर्यगुणं न गोस्तनी ।।

सरोजिनी चाहे मर जाये, चाहे जीवित रहे – वह कुलांगना है कुलटा कैसे हो जायगी। यन्त्र से चाहे कितनी देर तक पीड़ित की जाय गोस्तनी ( द्राक्षा ) अपने माधुर्यगुण का त्याग नहीं करती।

पतिव्रता नारी जन्मान्तर में भी अपने पति का ही वरण करना चाहती है।

नाथस्य संयोगमुपैमि नोबा
तस्मै सदा सौख्यमुमा ददातु
जन्मान्तरेऽप्येष गुणाभिमानी
पतिर्भवेत्प्राणपतिर्यतोऽसौ ।।

## भाषा शैली

कथावस्तु, भाव और भाषा के दृष्टिकोण से तो सरोजिनी सौरभम् नाटक नवीन है ही। विदूषक के अभाव से लेखक ने यह भी द्योतित कर दिया है कि प्राचीन नाटक के बन्धन उसे स्वीकार नहीं हैं।

प्राकृत भाषा का प्रयोग भी लेखक को अधिक उपयुक्त नहीं लगा। इसलिए सभी पात्रों से संस्कृत का ही प्रयोग करवाया है। वैसे भी संस्कृत भाषा के प्रति लेखक का प्रगाढ़ प्रेम निम्नलिखित श्लोक से ही हो जाता है।

सूत्रधार को सन्देह है कि शायद संस्कृत भाषा में नाटक का अभिनय लोगों के लिये रुचिकर न होगा इसका उत्तर नटी कितने सुन्दर शब्दों में देती है।

या पीयूषनिभं रसं रुचिवशादापाय्य तृप्तिं व्यधात्
दत्त्वा पाण्यवलम्बमग्रपदसञ्चारं स्वमाबोधयत्।
भावान्भव्यगुणान्, हितानचकथद्गैर्वाणवाणिमिमां
स्वां धात्रीमिव भक्तियुक्ति कलितो विस्मर्तुमीहेत कः ?

ऐसा कौन व्यक्ति एवं युक्ति सम्पन्न व्यक्ति है जो कि अपनी धाय के समान ( पालन करने वाली ) इस संस्कृत भाषा को भूल सके जिसने कि अपनी रुचि के अनुसार अमृत तुल्य रस का पान कराकर तृप्ति प्रदान की, हाथ का सहारा देकर अपने आगे के कदम रखना सिखाया और कल्याणमय गुणयुक्त हितकारी विचार बताये।

अनुप्रास और उपमा लेखक के प्रिय अलंकार हैं। अनुप्रास की छटा निम्नलिखित श्लोक में अद्भुत है।

नटिद्विहं स्तटिनीतरंगः
प्रभत्तमृगः सुमजाल संगः।
स्त्रीणामपांगो यमनंगरंगः
फुल्लान्तरंगः सुरभिप्रसंगः ।।

वसन्त ऋतु के आगमन से नदियों के तीर पर पक्षी नृत्य कर रहे हैं। पुष्पराशि के साथ संसर्ग होने पर भौंरों में मस्ती आ गई है (और) स्त्रियों का कटाक्ष कामदेव का क्रीड़ा – स्थल बन गया है।

इसी प्रकार उपमा के भी कई श्रेष्ठ उदाहरण मिलते हैं।

सहृदय हृदये निहितं
निर्गुणमपि गुण्यमेव कविवचनम्।
विरसमपि मधुनि भावित –
मामलकं हृद्यमेवव भवति फलम् ।।

सहृदयों के हृदयों स्थान पर जाने पर कवि का निर्गुण वचन भी गुणकारी बन जाता है। आंवले का नीरस फल भी मधु में पगा होने पर स्वादिष्ट ही लगता है।

एक और उदाहरण लीजिए–

क्रूरस्य न स्यादबलाजिहीर्षोः
कृपारसस्तत्परिदेवितेन।
किं द्रावयेत्कीरवधूविलाप-
श्चितं विडालस्य बलाज्जिघांसोः ।

अबला का अपहरण करना चाहते हुए क्रूर का उसके (अबला के) विलाप से दया न उपजेगी। क्या मैना का विलाप बलपूर्वक मारना चाहते हुए विडाल के मन को द्रवित कर सकता है।

लेखक ने कई स्थानों पर ऐसे ऐसे भाव श्लोक – बद्ध किये हैं जिनसे लेखक दार्शनिक प्रवृत्ति स्पष्ट लक्षित होती है।

कामादय : पंचभावा वार्धक्यं यान्तिकालतः ।
अन्तकालेपि लोभस्तु तारुण्यं प्रतिपद्यते ।।

काम आदि (काम, कोध, लोभ, मोह, अहंकार) पांच भाव समय के अनुसार वृद्धत्व को प्राप्त होते हैं। किन्तु

लोभ अन्तकाल तक भी तरुण ही रहता है।

चातुरोक्ति के प्रति भी लेखक का प्रचुर लगाव लक्षित होता है। धन के प्रति अत्यन्त सजग आर्द्रेयपति धन के विषय में बहुत सुन्दर चतुरोक्ति प्रस्तुत करता है–

या मा सा भायेति हि
माशब्दस्यासदर्थममिधत्ते।
तदयुक्तं तस्यार्थो
लक्ष्मीरित्येव निश्चितो भवति ।

या मा है (जो लक्ष्मी है) वही (पदपरिवर्तन के कारण) मात्रा बन कर मा शब्द के अविद्यमान अर्थ को कहती है। (पर) यह अनुचित है क्योंकि लक्ष्मी यही उसका अर्थ स्थिर होता है।

एक और उदाहरण लीजिए –

मयि भवति यथा तवैषभावस्त्वयिच तथेत्यवगच्छ मे नितान्तम्।
अभिलषित सभागमहि यावत् स्वगुणगण डप्यवमानिता जनस्य

इन श्लोकों को सुभाषितों की कोटि में भी रखा जा सकता है।

प्रकृति वर्णन में नाटककार अत्यन्त पटु है।

पुष्पगुच्छविनम्र मस्तका
मन्दमारुतविकम्पिता लताः।
अंग भगिम विलास भासुरा
मोहनाग्य इव लान्ति मानसम् ।

फूलों के गुच्छों से झुके हुए माथे वाली हल्के हल्के हवा के झोंकों से डुलाई हुई लताएं हावभावों के विलास से रमणीय रमणीयों की तरह दिल लेर ही हैं। (मन को आकर्षित कर रही हैं)।

प्रकृति के कार्यकलाप में और मानवीय हावभावों में कितना साम्य है इसका दिग्दर्शन हमें लेखक ने निम्नलिखित श्लोक से मिलता है।

चूतं पल्लवितं स्वमेव कलयन्कूजत्यहो कोकिलो
वल्लीं पुष्पवतीं तथा मधुमतीं मृगोऽभितो भ्राम्यति।
तारुण्यं नवमञ्जरीव सुभगं सौन्दर्यलीलाचितं
नारीणामवलोकयन्नवयुवा किं वान वा गायति।

अहा पल्लवति आम्रवृक्ष को अपना समझते हुए कोयल कूक रही है। फूलों से लदी पुष्प – रस – सम्पन्न लता के चारों ओर भंवरा चक्कर काट रहा है, स्त्रियों के नई नई मंजरी की तरह सुहावनी सौन्दर्य शोभायुक्त तरुणाई को देख नवयुवक क्या क्या नहीं गाता ?

लेखक की भाषा सरल किन्तु प्रांजल है। कहीं कहीं पर हिन्दी की छाया है किन्तु उससे भाषा में अथवा नाटक में कहीं पर भी व्यवधान दृष्टिगोचर नहीं होता।

उदाहरण स्वरूप सरोजिनी के निम्नलिखित शब्द –

रहःस्थिताम्याभावाभ्यां सर्वत्रापि श्रुतम्। नह्येतादृशे जने मनो लगति।

अर्थात् – ऐसे व्यक्ति के साथ मन नहीं लगता।

अन्त में यह कहना अनुपयुक्त नहीं होगा कि नाटक सभी दृष्टिकोणों से एक सफल नाटक है और उसमें आधुनिक युग से सम्बन्धित भावनाओं और समस्याओं पर आधुनिक ढ़ंग से ही दृष्टिपात किया गया है।

## कतिपय आधुनिक समस्याओं पर दृष्टिपात

अति आधुनिक कथानक के साथ साथ लेखक ने कतिपय आधुनिक समस्याओं पर भी दृष्टिपात किया है जिनका अवलोकन आज के समाज की आन्तरिक स्थिति को पूर्णतया प्रत्यक्ष कर देगा।

1 दहेज प्रथा

भारत में दहेज प्रथा का आरम्भ काफी देर के पश्चात् ही हुआ होगा क्योंकि पहले तो भारत में इस प्रथा का उल्लेख नहीं मिलता। इस तथ्य के प्रति लेखक पूर्णतया जागरूक है।

देशे यत्र तपोधन इतिजनाः पूर्वे प्रथामार्जय –
न्नेवं मानयशोधना इति च निर्वर्त्यादमुतं कर्म यत्।
त्यक्त्वाऽत्रैव मनः समुन्नतिमिमे ते भारतीयाः कप्यं
जाताः शुल्क धना इति ह्रियमुपेत्याहो। मनो दूयते।

पहले जिस देश में लोगों ने तपोधन ( तपस्या ही जिसका धन है ) एवम् अद्भुतकर्म करने के कारण मान यशोधन ( मान और यश है धन जिसका ) इस रूप में प्रसिद्धि प्राप्त की – वे ही भारतीय मन की इस उच्चता का परित्याग कर शुल्क – धन ( शुल्क है धन जिनका ) बन गये हैं, यह देख कर मन लज्जित एवं दुःखित हो रहा है।

किन्तु अब दहेज प्रथा चल पड़ी है और उसका परिणाम भोगना पड़ता है। गरीब या मध्यस्थ परिवार वालों

को। यदि किसी की एक ही कन्या है और धन की कमी नहीं उसे तो अपने वैभव के प्रदर्शन के लिये लड़की के विवाह का अवसर अच्छा है। किन्तु जिनके पास अधिक धन भी नहीं और कन्याएं भी एक से अधिक हैं, उनकी क्या गति होती होगी ? श्री पर्वत नामक व्यक्ति जो धन के बल पर ही आढयपति को अपनी कन्या पुत्रवधू के रूप में स्वीकार करवाता है उसके निम्नलिखित शब्द बड़े ही हृदयहारी हैं: –

सर्वं खत्वपि वित्तमार्जितमहो। पित्रेऽस्य शुल्कात्मना
दत्त्वायोग्यवरोद्य लब्धइति मे चित्तं चिरान्निर्वृत्तम्।
एवं श्राम्यति चेन्मनो मम तदाप्तावेककन्यापितुः
प्रोत्ताम्यन्ति कथंनु तद्बहुलतामारेऽन्यसंसारिणः।

अहो धन से सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है। वर के पिता को धन दे कर योग्य वर की प्राप्ति हो गई इससे मेरा चित्त बहुत प्रसन्न है। एक कन्या का पिता होने के कारण ही मुझे इतना परिश्रम करना पड़ा। अन्य संसारी लोग जिनकी अधिक कन्यायें हैं, उनका क्या होता होगा?

आजकल तो स्थिति यह है कि कन्या को सजीव प्राणी न समझकर एक निर्जीव वस्तु के रूप में समझा जाता है। उधर वर जितना अधिक योग्य होगा उसकी कीमत उतनी ही अधिक होगी। आढ्यपति को अपने पुत्र के विवाह सम्बन्ध के लिये केवल ही एक शर्त रखता है–

आढयपति – आर्य। अभिलिषितं वरशुल्कं यदि दीयते तदा सर्वमप्याभिमतं धन साध्यं रवल्विदं जगत्।

यदि ( मुझे ) अभिलषित दहेज दे देंगे तो सम्पूर्ण इष्ट कार्य सम्पन्न हो जायेगा। धन से ही इस जगत में सब कुछ सिद्ध हो जाता है।

श्री पर्वत के यह पूछने पर कि उन्हें वर – शुल्क कितना चाहिए तो आढयपति बड़े घमण्ड से कहता है –

गुणचन्द्रः कलापूर्णः स्वर्णपूर्णाश्च कोष्ठकाः
येन मे हृदयं पूर्णं भवेत्तद्धातुमर्हसि ।

गुणचन्द्र कलापूर्ण है और कोठे स्वर्ण से भरे हैं। जिससे मेरा मन भर सके वही मुझे दो।

जिस प्रकार किसी वस्तु को खरीदते अथवा बेचते समय दोनों पक्षों में वाद-विवाद होता है उसी प्रकार इस सम्बन्ध में भी वाद-विवाद का वही ढंग होता है। श्री पर्वत वर – शुल्क कम करने के लिये कहता है तो आढयपति उसका उत्तर निम्नलिखित शब्दों में देता है –

भवतोमुखंदृष्टवा प्रथममेव मया संख्यायामल्पीयसी मात्रा प्रदर्शिता। यद्यंगीकारः स्यात्तर्हि प्रवृत्तिः कियतां। नोचेद्यथागतं निवृत्तिरेव शरणमाश्रियतां।

आपका मुख देख कर पहले ही मैंने धन की मात्रा कम कही है। यदि आपको स्वीकार है तो प्रवृत्त करें, नहीं तो निवृत्त का आश्रय लें। (अर्थात् यदि आपको स्वीकार है तो विवाह कार्य करें, नहीं तो यह सम्बन्ध नहीं हो सकता )।

इस दहेज प्रथा से ही सम्बद्ध एक और समस्या है और वह यह कि धनवान व्यक्ति यदि चाहे तो धन के बल से ही एक से अधिक पत्नियों का वरण कर सकता है। किन्तु इससे समाज की मानसिक रूप से कितनी हानि होती है इसका अनुमान लगाना ही कठिन है। क्या स्त्री एक भोग – विलास की वस्तु के अतिरिक्त और कुछ नहीं, जिसे धनवान व्यक्ति पैसे के बल पर खरीद सकता है। सरोजिनी सुन्दरी है इसलिए श्रीधर नामक व्यक्ति विवाहित होते हुए भी और पत्नी के जीवित होते हुए भी केवल धनी होने के कारण धन दे कर सरोजिनी को खरीद लेना चाहता है किन्तु सुशीलता की मूर्ति सरोजिनी उसकी इस अनुचित मांग को सरलतापूर्वक ठुकरा देती है।

ग्रामोद्धार

आधुनिक भारत का शिक्षित युवक वर्ग यदि कृषि – कर्म की ओर इतना उदासीन न हो जितना वह आजकल है, तो भारत को पुनः स्वर्ण की चिड़िया की उपाधि अवश्य मिल सकती है। इस नाटक का नायक गुणचन्द्र पढ़ा लिखा होने पर भी कृषि – कर्म को बहुत महत्व देता है। जिस समय उसके धनवान पिता ने उसे अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति से वंचित कर दिया, उस समय उसने कृषि – कर्म द्वारा पुनः समृद्धि प्राप्त कर ली। गुणचन्द्र की कृषि के प्रति रुचि देखकर ही पाटलिका कहती है ––

आर्य। आभ्रातक। सस्यसंपद्विशेषे न केवलं पुरुषस्य भाग्यं कारणम् किंतु प्रयत्नमारोऽपि नितरामपेक्ष्यते ।

हे आभ्रातक। सस्य की संपदा में केवल पुरुष का भाग्य ही कारण नहीं है वरन् प्रयत्न की भी उपेक्षा है।

एक अन्य स्थान पर पुनः गुणचन्द्र के कृषि – कर्म की प्रशंसा करती हुई पटलिका कहती है ––

आभ्रातक। यथैवं देशो सर्वत्र कृषिकर्मण्य नलसता स्याज्जनस्य तर्हि फलपुष्पादीनां क्षीर समृद्धेश्च न कुत्रापि हासः संभवेत्।

- हे आभ्रातक। यदि देश में सभी स्थानों पर कृषि – कर्म में इतनी ही निरलसता हो तो फल पुष्प तथा दूध की समृद्धि का कभी ह्रास न हो।

भ्रमरिका अत्यन्त हर्षित होकर गुणचन्द्र की वाटिका की समृद्धि का वर्णन करती है।

रोदोगह्वरतुल्य कूप सलिलैर्यन्त्रोत्थितै र्वर्धितै
नारी केर महीरुहैः फलभरादामुग्नमस्तांचितैः।
व्याभग्राह्यशलाटुहेमपनसैश्चित्रै रसालद्रुमै
रारामो मधुकेतकीपनसरभ्याद्यैश्चरम्योमहान।।

अर्थात् –

कृषि – कर्म की उन्नति के साथ ही साथ ग्रामों की स्थिति में भी परिवर्तन होगा और आज जैसी दुर्दशा ग्रामों की दृष्टिगोचर होती है उसके बिलकुल विपरीत अत्यन्त समृद्धि परिस्थिति हो।

इन समस्याओं के अतिरिक्त और कितने ही तथ्य हैं जिनकी ओर लेखक की दृष्टि गई है, आज के युग में धन को ही सबसे अधिक महत्व दिया जाता है, धन के पीछे सदाचार और सत्य को तिलांजलि दे दी जाती है, सभी सम्बन्धियों से सम्बन्ध टूट सकता है लेकिन धन से सम्बन्ध मरने से पहले नहीं टूटता, इसी तथ्य को दृष्टि में रख कर लेखक कहता है –

वीणानादो मोहनोनैव नादो, नैवाह्लादी कामिनी कण्ठ नादः
सर्वोत्कर्षी रूप्यकस्यैव नादो मुग्धोबालोऽप्यत्र यन्मोह मेति।

वीणा की झंकार मोहित नहीं करती, कामिनी कण्ठ की ध्वनि भी आह्लादित नहीं करती, सबसे बढ़कर रुपये की ही झनझनाहट है, जिससे कि भोला भाला बच्चा भी मुग्ध हो जाता है।

इसी धन के महत्व का अंगीकार करने के साथ ही एक और समस्या जुड़ी हुई है और वह है, उत्कोच। जो व्यक्ति धन को ही सबसे अधिक महत्व देता है, वह कोई भी कार्य करने से पहले उसका मूल्य मांगेगा इसीलिए उत्कोच प्रथा भी आधुनिक युग में अपनी चरम सीमा पर पहुंच चुकी है। तभी तो लेखन ने सुधा पूर्ण के मुख से कहलवाया है –

न विद्वत्ता न वा शौर्यं न रूपं न शुचिर्मतिः ।
कार्यनिर्वहणे दक्षा राजद्वारि धनं बिना।

राज्यकर्म करने में न विद्वता, न शूरता, न रूप, और न ही अच्छी बुद्धि काम आती है, वहां तो केवल धर्म ही काम आता है।

किन्तु जहां एक ओर लेखक धन के महत्व को ही सर्वोच्च समझता है वहां उससे भी उदात्त एक और सम्बन्ध की घोषणा भी कर देता है। वह है मां का प्रेम। सम्पूर्ण संसार चाहे स्वार्थ – वश होकर पाप करे, किन्तु मां का प्रेम एक ऐसा तत्व है, जो इन सब स्वार्थों से ऊपर उठ कर निस्वार्थ भाव से अपने पुत्र के लिये सब कुछ करने को त्याग कर सकती है। गुणचन्द्र के पास जब कोई आश्रय नहीं रहा, तब उसकी मां ने ही अपना सर्वस्व उसे दे दिया। तभी गुणचन्द्र कहता है –

ज्ञाते कुक्षिभुवागते सुमुखता,
मोदो मनाक्स्पन्दिते,
जाते जन्म कृतार्थता, परवशी भावो गिरामुक्तमे।
प्राणा एव पणों विपत्सु, समताऽभावो रूप
ज्यायस्त्वेऽपि शिशुत्वभावनम . . .
मातुस्सुते स्निग्धता

कृषि – कर्म की उन्नति के साथ ही साथ ग्रामों की स्थिति में भी परिवर्तन होगा और आज जैसी दुर्दशा ग्रामों की दृष्टिगोचर होती है उसके बिलकुल विपरीत अत्यन्त समृद्धि परिस्थिति हो।

इन समस्याओं के अतिरिक्त और कितने ही तथ्य हैं जिनकी ओर लेखक की दृष्टि गई है, आज के युग में धन को ही सबसे अधिक महत्व दिया जाता है, धन के पीछे सदाचार और सत्य को तिलांजलि दे दी जाती है, सभी सम्बन्धियों से सम्बन्ध टूट सकता है लेकिन धन से सम्बन्ध मरने से पहले नहीं टूटता, इसी तथ्य को दृष्टि में रख कर लेखक कहता है –

वीणानादो मोहनोनैव नादो, नैवाह्लादी कामिनी कण्ठ नादः
सर्वोत्कर्षी रुप्यकस्यैव नादो मुग्धोबालोऽप्यत्र यन्मोह मेति।

वीणा की झंकार मोहित नहीं करती, कामिनी कण्ठ की ध्वनि भी आह्लादित नहीं करती, सबसे बढ़कर रुपये की ही झनझनाहट है, जिससे कि भोला भाला बच्चा भी मुग्ध हो जाता है।

इसी धन के महत्व को अंगीकार करने के साथ ही एक और समस्या जुड़ी हुई है और वह है, उत्कोच। जो व्यक्ति धन को ही सबसे अधिक महत्व देता है, वह कोई भी कार्य करने से पहले उसका मूल्य मांगेगा इसीलिए उत्कोच प्रथा भी आधुनिक युग में अपनी चरम सीमा पर पहुंच चुकी है। तभी तो लेखक ने सुधा पूर्ण के मुख से कहलवाया है –

न विद्वत्ता न वा शौर्यं न रूपं न शुचिर्मतिः ।
कार्यनिर्वहणे दक्षा राजद्वारि धनं बिना।

राज्यकर्म करने में न विद्वता, न शूरता, न रूप, और न ही अच्छी बुद्धि काम आती है, वहां तो केवल धर्म ही काम आता है।

किन्तु जहां एक ओर लेखक धन के महत्व को ही सर्वोच्च समझता है वहां उससे भी उदात्त एक और सम्बन्ध की घोषणा भी कर देता है। वह है मां का प्रेम। सम्पूर्ण संसार चाहे स्वार्थ – वश होकर पाप करे, किन्तु मां का प्रेम एक ऐसा तत्व है , जो इन सब स्वार्थों से ऊपर उठ कर निस्वार्थ भाव से अपने पुत्र के लिये सब कुछ करने को त्याग कर सकती है। गुणचन्द्र के पास जब कोई आश्रय नहीं रहा, तब उसकी मां ने ही अपना सर्वस्व उसे दे दिया। तभी गुणचन्द्र कहता है –

ज्ञाते कुक्षिभुवागते सुमुखता,
मोदो मनाक्स्पन्दिते,
जाते जन्म कृतार्थता, परवशी भावो गिरामुक्रमे।
प्राणा एव पणों विपत्सु, समताऽभावो रूप
ज्यायस्त्वेपि शिशुत्वभावनम . . .
मातुस्सुते स्निग्धता

अहा माँ का पुत्र के प्रति कितना स्नेह भाव। कोख में आया हुआ जान मुंह खिल उठता है तनिक हिलने डुलने पर आनन्द होता है, प्रसव होने पर जन्म सफल लगता है, उसके बोलना आरम्भ करने पर वशता हो जाती है, आपत्ति आने पर प्राणों की भी बाज़ी लग जाती है। सौन्दर्यादि में अतुलनीयता और बड़े होने पर भी शिशुत्व की भावना बनी रहती है।

# लालावैद्यम्

यह श्री स्कन्दशंकर खोत विरचित एक सामाजिक प्रहसन है। इसमें एक ऐसे वैद्य की कथा है जिसे पिता की चल और अचल सम्पत्ति के साथ राज्य द्वारा दी गई वैद्यक की विधिपूर्वक आज्ञापत्री भी मिली है। क्योंकि उसका पिता वैद्य था उसके पास वैद्य होने का सरकारी प्रमाण-पत्र भी था, इसलिए लाला वैद्य भी अपने आप को विधिपूर्वक वैद्य समझ कर लोगों को दवाइयां बांटना शुरू कर देते हैं। लेकिन केवल प्रमाण-पत्र से ही तो वैद्यक नहीं आ जाती। उनका शिकार एक शोफिका नाम की कास रोग से ग्रस्त स्त्री होती है जिसे कई महीने तक दवाई देते रहने पर भी वह ठीक नहीं होती। उसका रोग बढ़ता ही जाता है। जब लाला वैद्य की दवाई से उसका कष्ट दूर नहीं होता तो गली में घूमने वाली एक स्त्री से भी वह दवाई लेती है। लाला वैद्य इसका विरोध करते हैं और कहते हैं कि इनका ज्ञान अल्प है, उससे रोग बढ़ जाने का भय है। शोफिका को जब भयंकर पीड़ा होती है तब एक अन्य व्यक्ति हुंडुम वैद्य, जो अपनी जड़ी हिमालय में स्थित किसी साधु के द्वारा शंकर कृपा से प्राप्त हुई बताता है, उससे भी ले लेती है।

इसके पश्चात् दूसरे अंक में राज्य रक्षक लाला वैद्य, मूलोपजीविनी स्त्री तथा हुंडुम वैद्य से सरकारी प्रमाण-पत्र मांगता है। इन तीनों में से किसी के पास प्रमाण-पत्र नहीं होता। इसलिए रक्षक इन तीनों को न्यायालय में ले जाता है। दूसरी ओर एक गली में जल वैद्य और भस्म वैद्य अपनी-अपनी औषधि की प्रशंसा के पुल बांध रहे होते हैं। भस्म वैद्य अपनी भस्म को सम्पूर्ण रोगनाशक कहता है। उधर जल वैद्य उसके जल में ही सम्पूर्ण शक्तियों का निवास है, ऐसा विश्वास लोगों को दिलाता है। शालर्ण नाम का व्यक्ति उन दोनों से शोध पीड़ित स्त्री के लिये औषधि मांगता है। अपनी औषधि को एक दूसरे से श्रेष्ठ बताते हुए वे दोनों युद्ध करने लगते हैं। इतने में रक्षक इन दोनों के पास पहुंच कर सरकारी प्रमाण–पत्र मांगता है। इन दोनों के पास भी प्रमाण-पत्र नहीं होता। अतः रक्षक इन्हें भी न्यायालय ले जाता है।

तृतीय अंक में सभी लोग न्यायाधीश के सामने प्रस्तुत किये जाते हैं। सभी व्यक्तियों से प्रश्न किये जाते हैं और लाला वैद्य के अतिरिक्त सभी निरपराधी घोषित किये जाते हैं क्योंकि उन्होंने कोई विशेष दवाई किसी को नहीं दी और केवल जड़ी-बूटी या जल आदि ही जिस जिसने चाहा उसे दिया। केवल लाला ही अपराधी है। इसने

शोफिका को बिना विचार किये कितनी ही तरह की औषधियां दे दीं तथा पिता के सरकारी प्रमाण-पत्र को स्वयं अपना प्रमाण-पत्र मान लिया। इसलिए उसको दो सौ रुपया जुर्माना का दंड अथवा एक मास तक जेल का दंड मिला।

लेखक ने इसे सामाजिक नाटक कहा है। वैसे इसमें हास्य-रस की प्रधानता होने के कारण यह प्रहसन की श्रेणी में भी आ सकता है। मूलोपजीवनी का उच्च स्वर से अपनी औषधि का प्रचार करना, उसके महत्व को बिना बात के बढ़ा-चढ़ा कर कहना तथा इसीलिए काल्पनिक कहानी गढ़ लेना, जलवैद्य और भस्म वैद्य का जो कि स्वयं व्याधियों से ग्रस्त हैं, अपनी औषधि को सर्व रोगनाशक कहना तथा लाला वैद्य का एक ही व्याधि के लिये सभी औषधियां दे देना सभी हास्यास्पद हैं।

लेखक ने आजकल वैद्यों और डाक्टरों पर अच्छा व्यंग्य किया है जो कि बिना ज्ञान के केवल पैसा कमाने के लिये यह धंधा अपना लेते हैं और भोले-भाले लोगों को ठगते फिरते हैं। ये ऐसे व्यक्ति हैं जो स्वयं रोगी हैं लेकिन रोग को जड़ से उखाड़ने की हामी भरते हैं। स्वयं दवाई का नाम तक नहीं जानते लेकिन फिर भी सम्पूर्ण रोगों के लिये उनके पास औषधि है। एक और पक्ष पर भी लेखक ने प्रकाश डाला है और वह यह कि आज का युग प्रचार–प्रसार का युग है। थोड़ी सी सारहीन वस्तु का भी यदि बहुत अधिक प्रचार किया जाये जो उसे सफलता अवश्य मिलती है। चाहे कैसी ही निकम्मी औषधि क्यों न हो यदि उसका जोर–शोर से प्रचार किया जायेगा, उसके महत्व की झूठी कहानियां रची जायेंगी तो लोग उसे अवश्य खरीदेंगे चाहे उन्हें लाभ हो या न हो।

भाषा – विषय सामाजिक हैं और नाटक साधारण जनता को लेकर लिखा गया है। इसलिए भाषा अत्यधिक सरल और प्रवाहपूर्ण है। कहीं-कहीं देशी शब्द भी आ गये हैं लेकिन फिर भी संस्कृत निम्न स्तर की है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। तीन अंकों का छोटा सा नाटक है, जिसमें घटनाओं का गुम्फन बड़ी अच्छी तरह किया गया है। जल वैद्य का और भस्म वैद्य का परस्पर स्पर्धा के कारण बढ-चढ़ कर अपनी औषधि का प्रचार करना तथा अन्त में युद्ध तक करने लगना, आज कल के प्रतिस्पर्द्धा के युग का अच्छा चित्रण है।

लेखक ने गद्य का ही प्रयोग किया है। पद्य का पूर्णतया परिहार किया है।

## चरित्र चित्रण

लालावैद्य– जिस प्रकार पुत्र पिता की चल और अचल सम्पत्ति का अधिकारी होता है उसी प्रकार उसके ज्ञान के प्रमाण-पत्र का भी अधिकारी हो सकता है, ऐसा लालावैद्य का दृढ़ विश्वास है। न्यायाधीश के यह पूछने पर कि राजकीय शासन पुस्तिका में तो वाग्भट नाम के व्यक्ति के नाम पर प्रमाण-पत्र है, तुम्हारा नाम क्या है, तब लालावैद्य उत्तर देता है :

मम नाम तु लालावैद्यः इति। मे पितुर्नाम वाग्भटशास्त्री इति। तत्रभवतः भमृत्योः अनन्तरं पारंपर्येण जातोऽहं स्वामी तस्य सर्वस्य यद्यत् मे पित्रा अवाप्तम्। मृत्युकरग्रहणसमये शासकीयाधिकारिभिः यदा सम्पत्तिमूल्यमापनं कृतं तदा तु तैः अस्य प्रमाणपत्रस्यापि मे पितुः मूल्यमापनं कृतम्। तस्मात् तत्प्रमाणपत्रं तु अधुना ममैव वर्तते। स च पंजीयनक्रमांकः ममैव अस्ति।

अर्थात् मेरा नाम लालावैद्य है। मेरे पिता ाका नाम वाग्भट शास्त्री है। उनकी मृत्यु के बाद परम्परा रूप से मैं उस सबका मालिक बन गया हूं जो मेरे पिता ने हासिल किया था। मृत्यु-कर लेने के समय जब राज्याधिकारियों ने सम्पत्ति का मूल्यांकन किया था तब उन्होंने मेरे पिता के इस प्रमाण-पत्र का भी मूल्य आंका। इसलिए वह प्रमाण-पत्र तो अब मेरा ही है। और वह रजिस्टर्ड नं0 भी मेरा ही है।

व्यावहारिक ज्ञान से शून्य होने पर शास्त्रीय ज्ञान लाभ के स्थान पर हानि ही करता है। यहां भी लालावैद्य वैद्यक की कुछ पुस्तकें पढ़ कर अपने आपको सम्पूर्ण वैद्यक-शास्त्र का ज्ञाता समझ बैठे हैं। किन्तु किस रोग में क्या औषधि देनी चाहिए इसका विचार किये बिना वे एक ही रोग के लिये सभी औषधियां दे देते हैं जिसे पढ़ कर हंसी आये बिना नहीं रहती। शोफिका के श्वास-रोग के लिये उन्होंने क्या क्या औषधि नहीं दी! उसका सूचीपत्र काफ़ी लम्बा और रोचक है।

लेखक ने गद्य का ही प्रयोग किया है। पद्य का पूर्णतया परिहार किया है।

## चरित्र चित्रण

लालावैद्य– जिस प्रकार पुत्र पिता की चल और अचल सम्पत्ति का अधिकारी होता है उसी प्रकार उसके ज्ञान के प्रमाण-पत्र का भी अधिकारी हो सकता है, ऐसा लालावैद्य का दृढ़ विश्वास है। न्यायाधीश के यह पूछने पर कि राजकीय शासन पुस्तिका में तो वाग्भट नाम के व्यक्ति के नाम पर प्रमाण-पत्र है, तुम्हारा नाम क्या है, तब लालावैद्य उत्तर देता है :

मम नाम तु लालावैद्यः इति। मे पितुर्नाम वाग्भटशास्त्री इति। तत्रभवतः भमृत्योः अनन्तरं पारंपर्येण जातोऽहं स्वामी तस्य सर्वस्य यद्यत् मे पित्रा अवाप्तम्। मृत्युकरग्रहणसमये शासकीयाधिकारिभिः यदा सम्पत्तिमूल्यमापनं कृतं तदा तु तैः अस्य प्रमाणपत्रस्यापि मे पितुः मूल्यमापनं कृतम्। तस्मात् तत्प्रमाणपत्रं तु अधुना ममैव वर्तते। स च पंजीयनक्रमांकः ममैव अस्ति।

अर्थात् मेरा नाम लालावैद्य है। मेरे पिता ाका नाम वाग्भट शास्त्री है। उनकी मृत्यु के बाद परम्परा रूप से मैं उस सबका मालिक बन गया हूं जो मेरे पिता ने हासिल किया था। मृत्यु-कर लेने के समय जब राज्याधिकारियों ने सम्पत्ति का मूल्यांकन किया था तब उन्होंने मेरे पिता के इस प्रमाण-पत्र का भी मूल्य आंका। इसलिए वह प्रमाण-पत्र तो अब मेरा ही है। और वह रजिस्टर्ड नं0 भी मेरा ही है।

व्यावहारिक ज्ञान से शून्य होने पर शास्त्रीय ज्ञान लाभ के स्थान पर हानि ही करता है। यहां भी लालावैद्य वैद्यक की कुछ पुस्तकें पढ़ कर अपने आपको सम्पूर्ण वैद्यक-शास्त्र का ज्ञाता समझ बैठे हैं। किन्तु किस रोग में क्या औषधि देनी चाहिए इसका विचार किये बिना वे एक ही रोग के लिये सभी औषधियां दे देते हैं जिसे पढ़ कर हंसी आये बिना नहीं रहती। शोफिका के श्वास-रोग के लिये उन्होंने क्या क्या औषधि नहीं दी! उसका सूचीपत्र काफ़ी लम्बा और रोचक है।

लालावैद्य – नैतद्। लक्षणानि सुपरीक्ष्य एव दत्तं भया तत् औषधम्। श्वासः नाम सर्वरोगाणां पुंजीभूतः प्रतिनिधिः। तस्य नाशाय सर्वरोगप्रशमन क्रिया कर्तव्या। तस्मात् पर्पटी, खर्परी, क्वाथः, अवलेहः, चूर्ण, पाकः, गुटिका, वटिका, पूषः, कषायः, फांटः, गंडूषः, लेपः, सेकः, वर्ति, अंजनं, नस्यं, धृतं, तैलं, धूपनं, पोटलं, गुग्गुलुः, आसवः, कल्कः, मोदकः, अरिष्टः इत्यादि सर्वाणि औषधानि देयनि।

लालावैद्य – यह बात नहीं। लक्षणों की भली भांति जांच करके ही मैंने दवाई दी। सांस सभी रोगों का राशिभूत प्रतिनिधि है। उसके नाश के लिये सभी रोगों को शान्त करना चाहिए। इसलिए पर्पटी आदि सभी औषधि देनी चाहिए।

इस सूची से किसी भी व्यक्ति को वैद्यक शास्त्र की औषधियों की सम्पूर्ण झलक मिल जाती है। ऐसे वैद्यों के हाथों से ही रोग का नहीं वरन् रोगियों का ही नाश हो जाता है, यह किसे नहीं मालूम।

---

1 मे का वाक्यादि में प्रयोग अनुचित है।

[1]

लालावैद्य – नैतद्। लक्षणानि सुपरीक्ष्य एव दत्तं भया तत् औषधम्। श्वासः नाम सर्वरोगाणां पुंजीभूतः प्रतिनिधिः। तस्य नाशाय सर्वरोगप्रशमन क्रिया कर्तव्या। तस्मात् पर्पटी, खर्परी, क्वाथः, अवलेहः, चूर्ण, पाकः, गुटिका, वटिका, पूषः, कषायः, फांटः, गंडूषः, लेपः, सेकः, वर्ति, अंजनं, नस्यं, धृतं, तैलं, धूपनं, पोटलं, गुग्गुलुः, आसवः, कल्कः, मोदकः, अरिष्टः इत्यादि सर्वाणि औषधानि देयनि।

लालावैद्य – यह बात नहीं। लक्षणों की भली भांति जांच करके ही मैंने दवाई दी। सांस सभी रोगों का राशिभूत प्रतिनिधि है। उसके नाश के लिये सभी रोगों को शान्त करना चाहिए। इसलिए पर्पटी आदि सभी औषधि देनी चाहिए।

इस सूची से किसी भी व्यक्ति को वैद्यक शास्त्र की औषधियों की सम्पूर्ण झलक मिल जाती है। ऐसे वैद्यों के हाथों से ही रोग का नहीं वरन् रोगियों का ही नाश हो जाता है, यह किसे नहीं मालूम।

---

1 मे का वाक्यादि में प्रयोग अनुचित है।

# लालावैद्यम् --- ~~(सामाजिक नाटक)~~

## ~~-- स्कन्द शंकर खोत --~~

~~यह श्री स्कन्दशंकर खोत विरचित एक सामाजिक प्रहसन है।~~

~~इसमें~~ यह एक ऐसे वैद्य की कथा है जिसे पिता की चल और अचल सम्पत्ति के साथ राज्य द्वारा दी गई वैद्यक की विधिपूर्वक आज्ञापत्री भी मिली है। क्योंकि उसका पिता वैद्य था उसके पास वैद्य होने का सरकारी प्रमाण – पत्र भी था, इसलिए लाला वैद्य भी अपने आप को विधिपूर्वक वैद्य समझ कर लोगों को दवाइयां बांटना शुरू कर देते हैं। लेकिन केवल प्रमाण – पत्र से ही तो वैद्यक नहीं आ जाती। उनका शिकार एक शोफिका नाम की कास रोग से ग्रसित स्त्री होती है जिसे कई महीने तक दवाई देते रहने पर भी वह ठीक नहीं होती। उसका रोग बढ़ता ही जाता है। जब लाला वैद्य की दवाई से उसका कष्ट दूर नहीं होता तो गली में घूमने वाली एक स्त्री से भी वह दवाई लेती है। लाला वैद्य इसका विरोध करते हैं और कहते हैं कि इनका ज्ञान अल्प है, उससे रोग बढ़ जाने का भय है। शोफिका को जब भयंकर पीड़ा होती है तब एक अन्य व्यक्ति हुंडुम वैद्य, जो अपनी जड़ी हिमालय में स्थित किसी साधु के द्वारा शंकर कृपा से प्राप्त हुई बताता है, उससे भी ले लेती है।

इसके पश्चात् दूसरे अंक में राज्य रक्षक लाला वैद्यम् मूलोपजीविनी स्त्री तथा हुंडुम वैद्य से सरकारी प्रमाण – पत्र मांगता है। इन तीनों में से किसी के पास प्रमाण – पत्र नहीं होता। इसलिए रक्षक इन तीनों को न्यायालय में ले जाता है। दूसरी ओर एक गली में जल वैद्य और भस्म वैद्य अपनी – अपनी औषधि की प्रशंसा के पुल बांध रहे होते हैं। भस्म वैद्य अपनी भस्म को सम्पूर्ण रोगनाशक कहता है। उधर जल वैद्य उसके जल में ही सम्पूर्ण शक्तियों का निवास है, ऐसा विश्वास लोगों को दिलाता है। शार्ल्पर्ण नाम का व्यक्ति उन दोनों से शोफ पीड़ित स्त्री के लिये औषधि मांगता है। अपनी औषधि को एक दूसरे से श्रेष्ठ बताते हुए वे दोनों युद्ध करने लगते हैं। इतने में रक्षक इन दोनों के पास पहुंच कर सरकारी प्रमाण – पत्र मांगता है। इन दोनों के पास भी प्रमाण – पत्र नहीं होता। अतः रक्षक इनको भी न्यायालय ले जाता है।

तृतीय अंक में सभी लोग न्यायाधीश के सामने प्रस्तुत किये जाते हैं। सभी व्यक्तियों से प्रश्न किये जाते हैं और लाला वैद्य के अतिरिक्त सभी निरपराधी घोषित किये जाते हैं क्योंकि उन्होंने कोई विशेष दवाई किसी को नहीं दी और केवल जड़ी – बूटी या जल आदि ही जिस जिसने चाहा उसको दिया। केवल लाला ही अपराधी है। इसने शोफिका को बिना विचार किये कितनी ही तरह की औषधियां दे दीं तथा पिता के सरकारी प्रमाण – पत्र को स्वयं अपना प्रमाण – पत्र मान लिया। इसलिए उसको दो सौ रुपया जुर्माना का दंड अथवा एक मास तक जेल का दंड मिला।

लेखक ने इसे सामाजिक नाटक कहा है। वैसे इसमें हास्य – रस की प्रधानता होने के कारण यह प्रहसन की श्रेणी में भी आ सकता था। मूलोपजीवनी का उच्च स्वर से अपनी औषधि का प्रचार करना, उसके महत्व को बिना बात के बढ़ा – चढ़ा कर कहना तथा इसीलिए काल्पनिक कहानी गढ़ लेना, जलवैद्य और भस्म वैद्य का जो कि स्वयं व्याधियों से ग्रस्त हैं, अपनी औषधि को सर्व नाशक कहना तथा लाला वैद्य का एक ही व्याधि के लिये सभी औषधियां दे देना सभी हास्यपद हैं।

लेखक ने आजकल वैद्यों और डाक्टरों पर अच्छा व्यंग किया है जो कि बिना ज्ञान के केवल पैसा कमाने के लिये यह धंधा अपना लेते हैं और भोले – भाले मनुष्यों को ठगते फिरते हैं। ये ऐसे व्यक्ति हैं जो स्वयं रोगी हैं लेकिन

रोग को जड़ से उखाड़ने की हामी भरते हैं। स्वयं दवाई का नाम तक नहीं जानते लेकिन फिर भी सम्पूर्ण रोगों के लिये उनके पास औषधि है। एक और पक्ष पर भी लेखक ने प्रकाश डाला है और वह यह कि आज का युग प्रचार – प्रसार का युग है। थोड़ी सी सारहीन वस्तु का भी यदि बहुत अधिक प्रचार किया जाये जो उसे सफलता अवश्य मिलती है। चाहे कैसी ही निकम्मी औषधि क्यों न हो यदि उसका जोर – शोर से प्रचार किया जायेगा, उसके महत्व की झूठी कहानियां रची जायेंगी तो सभी लोग उसे अवश्य खरीदेंगे चाहे उन्हें लाभ हो या न हो।

भाषा – विषय सामाजिक हैं और साधारण जनता को लेकर लिखा गया है। इसलिए भाषा अत्यधिक सरल और प्रवाह पूर्ण है। कहीं – कहीं देशी शब्द भी आ गये हैं लेकिन फिर भी संस्कृत निम्न स्तर की है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। तीन अंकों का छोटा सा नाटक है, जिसमें घटनाओं का गुम्फन बड़ी अच्छी तरह किया गया है। जल वैद्य का और भस्म वैद्य का परस्पर स्पर्धा के कारण बढ – चढ़ कर अपनी औषधि का प्रचार करना तथा अन्त युद्ध तक करने लगना, आज कल के प्रतिस्पर्द्धा के युग का अच्छा चित्रण है।

लेखक ने गद्य का ही प्रयोग किया है। पद्य का पूर्णतया परिहार किया है।

## लालावैद्यम् – चरित्र

लालावैद्य – जिस प्रकार पुत्र पिता की चल और अचल सम्पत्ति का अधिकारी होता है उसी प्रकार उसके ज्ञान के प्रमाण – पत्र का भी अधिकारी हो सकता है, ऐसा लालावैद्य का दृढ़ विश्वास है। न्यायाधीश के यह पूछने पर कि राजकीय शासन पुस्तिका में तो वाग्भट नाम के व्यक्ति के नाम पर प्रमाण – पत्र है, तुम्हारा नाम क्या है, तब लालावैद्य उत्तर देता है :

मम नाम तु लालावैद्यः इति। मे पितुर्नाम वाग्भटशास्त्री इति। तत्र भवतः मृत्योः अनन्तरं पारंपर्येण जातोऽहं स्वामी तस्य सर्वस्य यद्यत् मे पित्रा अवाप्तम्। मृत्युकर ग्रहण समये शासकीयाधिकारिभिः यदा सम्पत्तिमूल्यमापनं कृतं तदा तु तैः अस्य प्रमाणपत्रस्यापि मे पितुः मूल्यमापनं कृतम्। तस्मात् तत्प्रमाण पत्रं तु अधुना ममैव वर्तते। स च पंजीयनक्रमांकः ममैव अस्ति।

अर्थात् मेरा नाम लालावैद्य है। मेरे पिता का नाम वाग्भट शास्त्री है। उनकी मृत्यु के बाद परम्परा रूप से मैं उस सबका मालिक बन गया हूं जो मेरे पिता ने हासिल किया था। मृत्यु – कर लेने के समय जब राज्याधिकारियों ने सम्पत्ति का मूल्यांकन किया था तब उन्होंने मेरे पिता के इस प्रमाण – पत्र का भी मूल्य आंका। इसलिए वह प्रमाण – पत्र तो अब मेरा ही है। और वह रजिस्टर्ड नं0 मेरा ही है।

व्यावहारिक ज्ञान से शून्य होने पर शास्त्रीय ज्ञान लाभ के स्थान पर हानि ही करता है। यहां भी लालावैद्य वैद्यक की कुछ पुस्तकें पढ़ कर अपने आपको सम्पूर्ण वैद्यक – शास्त्र का ज्ञाता समझ बैठे हैं। किन्तु किस रोग में क्या औषधि देनी चाहिए इसका विचार किये बिना वे एक ही रोग के लिये सभी औषधियां दे देते हैं जिसे पढ़ कर हंसी आये बिना नहीं रहती। शोफिमा के श्वास – रोग के लिये उन्होंने क्या क्या औषधि नहीं दी उसका सूचीपत्र काफ़ी लम्बा और रोचक है।

लालावैद्य – नैतद्दै । लेक्षणानि सुपरीक्ष्य एव दत्तं भया तत् औषधम् । श्वासः नाम सर्वरोगाणां पुंजीभूतः प्रतिनिधिः । तस्य नाशाय सर्वरोग प्रशमन किया कर्तव्या । तस्मात् पर्पटी, खर्परी, क्वाथः, अवलेहः, चूर्ण, पाकः, गुटिका, वटिका, पूषः, कषायः, फांटः, गंडूषः, लेपः, सेकः, वर्ति, अंजनं, नस्यं, धृतं, तैलं, धूपनं, पोटलं, गुग्गुलुः, आसवः, कल्कः, मोदकः, अरिष्टः इत्यादि सर्वाणि औषधानि देयनि ।

लालावैद्य – यह बात नहीं । लक्षणों की भली भांति जांच करके ही मैंने दवाई दी । सांस सभी रोगों का राशिभूत प्रतिनिधि है । उसके नाश के लिये सभी रोगों को शान्त करना चाहिए । इसलिए पर्पटी आदि सभी औषधि देनी चाहिए ।

इस सूची से किसी भी व्यक्ति को वैद्यक शास्त्र की औषधियों की सम्पूर्ण झलक मिल जाती है । ऐसे वैद्यों के हाथों से ही रोग का नहीं वरन् रोगियों का ही नाश हो जाता है, यह किसे नहीं मालूम ।

# श्री ज्ञानेश्वरचरितम्

पण्डित क्षमा राव द्वारा रचित संत ज्ञानेश्वर के जीवन चरित पर आधारित काव्य का, उनकी पुत्री लीला राव दयाल ने 16 दृश्यों के बालयोगी नामक नाटक में रूपान्तर किया है, जिसका सफल अभिनय भी हो चुका है। श्री ज्ञानेश्वर चरित का नाट्य रूप मञ्जूषा में भी प्रकाशित हो चुका है। पण्डिता क्षमा राव की यह अन्तिम कृति है। श्रीमती लीला राव दयाल ने काव्य को नाटक में रूपान्तर करने का एक नवीन ढ़ंग अपनाया है। स्वयं पण्डिता क्षमा राव कवि नामदेव, कवि महापति तथा कवि निरञ्जन रंग मञ्च के एक कोने में अपनी कृतियों से कथा सूत्र जोड़ते हुए श्लोक पढ़ते हैं। रंग मञ्च के अर्घ भाग में नाटक के दृश्य दिखाये जाते हैं। नाटक के नायक के जन्म के पूर्व से लेकर उसके जन्म लेने और सम्पूर्ण जीवन के लगातार प्रदर्शन का अभिनय असम्भव था इसलिए अभिनय योग्य दृश्यों का प्रदर्शन कर और बाकी अंश कवियों के मुख से कहला कर नाटक को क्रमबद्ध और सौन्दर्ययुक्त बना दिया गया है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि नाटक के एक दृश्य के बाद जब दूसरा दृश्य आता है तो बीच में कभी.कभी 10 वर्ष का अन्तर है। उदाहरण के लिये चतुर्थ दृश्य और पञ्चम दृश्य में 10 वर्ष का अन्तराल है। कवियों ने अपने मुख से जो श्लोक पढ़े हैं उन्हें श्रीमती लीला ने पूर्ववत् रहने दिया है; उनमें कोई परिवर्तन नहीं किया गया।

## कथानक

प्रथम दृश्य– अलन्दिपुर ग्राम की वार्षिक यात्रा में ज्ञानेश्वर की मूर्ति को सजा कर यात्री मंगल श्लोक गाते हुए ले जाते हैं। दूसरी ओर से नामदेव, निरञ्जन तथा महापति इन कवियों सहित पण्डिता क्षमा राव प्रवेश कर ज्ञानेश्वर के छः सौ वर्ष के चरित्र का गुणगान करते हैं। कवि महापति बताते हैं कि गोदावरी नदी के तीर पर अपे गांव नामक स्थान में विट्ठल नामक अत्यन्त शुद्ध चरित्र वाला व्यक्ति था यही ज्ञानेश्वर का पिता था। ज्ञानेश्वर के हृदय में बाल्यकाल से ही वैराग्यवृत्ति का जागरण हो गया था। उसके पिता ने भी उसकी इस वृत्ति को देख गायत्री मन्त्र का उपदेश उसे दिया। उपनयन आदि संस्कार के पश्चात् बालक ने वैराग्य वृत्ति धारण कर ली। कुछ समय पश्चात् – पण्डिता क्षमा देवी तथा अन्य पण्डित ग्रन्थ रचना में लीन हैं, और बताते हैं कि विट्ठल सदैव भगवद्भजन में लीन रहता था और भ्रमण करते करते अलन्दिपुर में आ गया। नामदेव बताते हैं कि जब उसने नदी के जल को स्पर्श किया तब उसे मालूम था कि उसके लिये अगले जीवन में कितने दुःख भरे पड़े हैं। दूसरी ओर अलिन्दपुर में आये हुए

# श्री ज्ञानेश्वरचरितम्

पण्डित क्षमा राव द्वारा रचित संत ज्ञानेश्वर के जीवन चरित पर आधारित काव्य का, उनकी पुत्री लीला राव दयाल ने 16 दृश्यों के बालयोगी नामक नाटक में रूपान्तर किया है, जिसका सफल अभिनय भी हो चुका है। श्री ज्ञानेश्वर चरित का नाट्य रूप मञ्जूषा में भी प्रकाशित हो चुका है। पण्डिता क्षमा राव की यह अन्तिम कृति है। श्रीमती लीला राव दयाल ने काव्य को नाटक में रूपान्तर करने का एक नवीन ढ़ंग अपनाया है। स्वयं पण्डिता क्षमा राव कवि नामदेव, कवि महापति तथा कवि निरञ्जन रंग मञ्च के एक कोने में अपनी कृतियों से कथा सूत्र जोड़ते हुए श्लोक पढते हैं। रंग मञ्च के अर्घ भाग में नाटक के दृश्य दिखाये जाते हैं। नाटक के नायक के जन्म के पूर्व से लेकर उसके जन्म लेने और सम्पूर्ण जीवन के लगातार प्रदर्शन का अभिनय असम्भव था इसलिए अभिनय योग्य दृश्यों का प्रदर्शन कर और बाकी अंश कवियों के मुख से कहला कर नाटक को क्रमबद्ध और सौन्दर्ययुक्त बना दिया गया है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि नाटक के एक दृश्य के बाद जब दूसरा दृश्य आता है तो बीच में कभी.कभी 10 वर्ष का अन्तर है। उदाहरण के लिये चतुर्थ दृश्य और पञ्चम दृश्य में 10 वर्ष का अन्तराल है। कवियों ने अपने मुख से जो श्लोक पढ़े हैं उन्हें श्रीमती लीला ने पूर्ववत् रहने दिया है; उनमें कोई परिवर्तन नहीं किया गया।

## कथानक

प्रथम दृश्य– अलन्दिपुर ग्राम की वार्षिक यात्रा में ज्ञानेश्वर की मूर्ति को सजा कर यात्री मंगल श्लोक गाते हुए ले जाते हैं। दूसरी ओर से नामदेव, निरञ्जन तथा महापति इन कवियों सहित पण्डिता क्षमा राव प्रवेश कर ज्ञानेश्वर के छः सौ वर्ष के चरित्र का गुणगान करते हैं। कवि महापति बताते हैं कि गोदावरी नदी के तीर पर अपे गांव नामक स्थान में विट्ठल नामक अत्यन्त शुद्ध चरित्र वाला व्यक्ति था यही ज्ञानेश्वर का पिता था। ज्ञानेश्वर के हृदय में बाल्यकाल से ही वैराग्यवृत्ति का जागरण हो गया था। उसके पिता ने भी उसकी इस वृत्ति को देख गायत्री मन्त्र का उपदेश उसे दिया। उपनयन आदि संस्कार के पश्चात् बालक ने वैराग्य वृत्ति धारण कर ली। कुछ समय पश्चात् – पण्डिता क्षमा देवी तथा अन्य पण्डित ग्रन्थ रचना में लीन हैं, और बताते हैं कि विट्ठल सदैव भगवद्भजन में लीन रहता था और भ्रमण करते करते अलन्दिपुर में आ गया। नामदेव बताते हैं कि जब उसने नदी के जल को स्पर्श किया तब उसे मालूम था कि उसके लिये अगले जीवन में कितने दुःख भरे पड़े हैं। दूसरी ओर अलिन्दपुर में आये हुए

विट्ठल को उसका भावी श्वसुर मिलता है और उसे विस्मत होकर देखता है और थोड़े से वार्तालाप के पश्चात् उसे अपने घर में ले आता है और विट्ठल वहीं रह कर क्षेत्र की आय का संग्रह करके विद्या अर्जुन कर सबका प्रेमपात्र बन जाता है।

द्वितीय दृश्य– विट्ठल सिद्धोपन्त के प्रांगण में लेटा हुआ है, इतने में उसके कुल . देवता आकर मानो आदेश देते हैं कि उसे सिद्धोपन्त की कन्या से विवाह कर लेना चाहिए क्योंकि उसकी कोख से उसे पुत्र रत्न की प्राप्ति होगी जो उसके सम्पूर्ण वंश का उद्धार करेगा। केवल इतना ही नहीं, वह अपने प्रकाश से सम्पूर्ण संसार का अन्धकार दूर कर देगा। इसके पश्चात् पण्डिता क्षमा राव बताती हैं कि विट्ठल ने अपने कुलदेवता की आज्ञा मान कर उस कन्या से विवाह कर लिया और वधू को लेकर अपने गांव आ गया।

तृतीय दृश्य– (कुछ वर्ष व्यतीत हो जाने के पश्चात्) मुनि रामानन्द आलन्दिपुर में यात्रा श्रम के कारण विश्राम करते हैं। विट्ठल की पत्नी रुक्मिणी आकर उन्हें प्रणाम करती है। रामानन्द उसे आशीर्वाद देते है कि अपूर्व गुणों वाले पुत्र की जननी बनो। इस पर निराश होकर रुक्मिणी उत्तर देती है कि जिसके पति ने वैराग्यवृत्ति का आश्रय लिया हो उसके लिये भला आपकी वाणी कैसे सत्य हो सकती है। इतना कह कर रुक्मिणी चुप हो जाती है। इसके पश्चात् पण्डिता क्षमाराव मुनि को सम्बोधित करते हुए कहती हैं कि इन दोनों को पुत्र की इच्छा होते हुए भी बहुत समय व्यतीत हो जाने पर पुत्र प्राप्ति नहीं हो सकी। विट्ठल एहिक सुखों का त्याग कर सन्यासी बन गया है। रामानन्द जी रुक्मिणी को आश्वासन देते हैं कि मैंने ही तरुण अवस्था में उसे सन्यास प्रदान किया था इसलिए इस दोष का भागी में ही हूं। वे रुक्मिणी को आश्वासन दे कर चले जाते हैं कि वे उसके पति को समझायेंगे। रुक्मिणी मुनि रामानन्द के आशीर्वाद से और प्ररणाजनक शब्दों से हिमकन्या पार्वती के समान तपस्या में लीन रहने लगती हैं।

चतुर्थ दृश्य– (कुछ सप्ताह बीत जाने पर) सन्यास धर्म का त्याग कर पुनः गृहस्थाश्रम में लौट आने वाले विट्ठल की लोग निन्दा करते हैं। विट्ठल उन्हें समझाता है कि वह विषय भोग के लालच में इस गृहस्थाश्रम में नहीं आया वरन गुरु की आज्ञा से ही इसमें प्रविष्ट हुआ है। लेकिन लोग नहीं मानते और उसे बुरा भला कहते हैं। समबुद्धि से युक्त होने पर विट्ठल पर निन्दा और स्तुति का अधिक प्रभाव नहीं पड़ता और वह अपने गुरू के आज्ञानुसार ही कार्य करता है।

पञ्चम दृश्य– (दस वर्ष व्यतीत हो जाने पर) विट्ठल और रुक्मिणी की चार सन्ततियां ज्ञानेश, निवृत्ति, सोपानदेव और मुक्ति सभी परस्पर खेलते हैं। विट्ठल भिक्षा मांग कर बच्चों का भरण पोषण करता है, सन्यास से भ्रष्ट होर पुनः गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने के फलस्वरूप ब्राह्मण उसका बहिष्कार कर देते हैं।

श्वसुर शुद्धोपन्म की मृत्यु हो जाती है। उसके पश्चात् परिवार निराश्रय हो कर रहता है। विट्ठल अपने ज्येष्ठ पुत्रों ज्ञानेश और सोपान देव को अच्छी शिक्षा दिलाता है जिससे वे दोनों अत्यन्त विद्वान् बन जाते हैं।

षष्ठ दृश्य– विट्ठल अपने पुत्रों के उपनयन संस्कार के लिये ब्राह्मणों से प्रार्थना करता है किन्तु वे कहते हैं कि सन्यासी से पुनः गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने वाले जाति बहिष्कृत व्यक्ति के पुत्रों को उपनयन का अधिकार नहीं। इस पर दोनों पति.पत्नी अत्यन्त खिन्न होते हैं। पुरोहित उन्हें बताते हैं कि इस कुकर्म का प्रायश्चित आत्मविनाश के अतिरिक्त दूसरा नहीं है। विट्ठल कहता है कि यदि इससे मेरे पुत्रों का उपनयन संस्कार हो जाये और वे जाति में सम्मिलित कर लिये जायें तो विट्ठल अपने प्राण विसर्जन अवश्य कर देगा। इसके पश्चात् अपने पुत्रों के हित की इच्छा करने वाले विट्ठल और रुक्मिणी दोनों ही जाह्नवी नदी में अपने प्राण त्याग देते हैं। दूसरी ओर चारों बच्चे अपने माता.पिता को न पा कर दुःखी होते हैं, एक घर से दूसरे घर जाकर भिक्षा मांगते हैं। उन्हें मालूम हो जाता है कि अब उनके माता पिता इस संसार में नहीं हैं। अपने गांव जाने पर उनके सम्बन्धी उन्हें पैतृक सम्पत्ति से भी वंचित कर देते हैं किन्तु दोनों बालक प्रबुद्ध थे इसलिए उन्होंने सम्पूर्ण संसार को ही अपना घर समझा और मन के विषाद से दुःखी नहीं हुए।

सप्तम दृश्य– ज्ञानेश्वर और सोपानदेव शास्त्रों में निष्णात पिता के भक्तियुक्त संस्कारों से ओतप्रोत आत्मा में ही रमण करते हैं। उन्हें जातपात के बन्धन नहीं बंध सके, वे दोनों परस्पर अत्यन्त आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करते हैं।

अष्ठम दृश्य– अनाथ बच्चे भ्रमण करते हुए प्रतिपुर पहुंच जाते हैं वहां की विप्रमण्डली के सामने वे प्रार्थना करते हैं कि अब वे शुद्ध हो गये हैं उनका उपनयन संस्कार करना चाहिए। किन्तु सभापति कह देता है कि

उनका उपनयन संस्कार तो असम्भव है किन्तु यदि वे चाहें तो वहीं रह कर निरन्तर भजन द्वारा सम्पूर्ण जाति के बन्धनों से ऊपर उठ सकते हैं। सभी विप्र उनसे उनका नाम इत्यादि पूछते हैं, बच्चे अपने नाम के सहित अपने दिव्य गुण भी बताते हैं। जिससे विप्र कहते हैं कि यदि तुम ज्ञानी हो तो ज्ञानदेव नामक भैंसे में और तुममे क्या साम्य है। ज्ञानदेव बताते हैं कि इनमें और मुझमें कोई भेद नहीं। प्रमाण के लिये भेंसे को मार पड़ती है, किन्तु रक्त संत ज्ञानेश्वर की क्षतविक्षत पीठ से निकलता है, यह चमत्कार देख कर सभी आश्चर्य चकित रह जाते हैं।

नवम दृश्य– ज्ञानेश्वर की भक्ति और उसके अनन्त चमत्कार देख कर सभी लोग दूर.दूर से उनके दर्शन करने आते हैं। कुछ दुष्ट उनके विरुद्ध भी बोलते हैं किन्तु ज्ञानेश्वर की शुद्ध अन्तरात्मा के समक्ष वे सदैव हार जाते हैं। वे कहते हैं कि यदि भैंसे में और ज्ञानेश्वर में कोई अन्तर नहीं तो भैंसे के मुंह से वैदिक ऋचायें सुनवाईए, संत ज्ञानेश्वर के आदेशानुसार भैंसा भी मानव वाणी में ऋचायें बोलता है जिसे सुन कर सभी दुर्जनों के मुंह बन्द हो जाते हैं।

दशम दृश्य– बालयोगी ज्ञानेश्वर अब अपनी रचनाएं भी करता है, सम्पूर्ण संसार में उसकी कीर्ति फैल जाती है। श्राद्ध करने के लिये स्वयं पूर्ववज मूर्तमान् होकर उसके पास आते हैं और सानन्द भोजन करके जाते हैं।

ग्यारवहां दृश्य– (चारों कवि रंगमञ्च के एक कौने में बैठ कर ज्ञानेश्वर की कथा सुनाते हैं)। ग्रामीण बताते हैं कि यहीं पर ज्ञानेश्वर ने अपना महा प्रबन्धन ज्ञानेश्वरी लिखा था, मञ्च के द्वितीय भाग में ज्ञानेश्वर की पुरी पहुंच जाना प्रदर्शित किया जाता है। वहीं पर एक स्त्री अपने पति के शव पर ऊंचे स्वर से रुदन करती है। ज्ञानेश्वर उसके रुदन का कारण पूछते हैं और कारण पूछ कर उसके मृतक पति को हाथ के स्पर्श से पुनर्जीवित कर देते हैं। रंगमञ्च के दूसरे भाग में कवि अपनी कथा द्वारा सूचित करते हैं कि इन चमत्कारों द्वारा लोग उन पर अत्यधिक श्रद्धा करने लगे। कुछ दुर्जन पुरुष विसोबा इत्यादि पहले उन्हें तंग करते थे फिर बाद में उनके भक्त बन गये।

बारहवां दृश्य– ज्ञानेश्वर अपनी रचना ग्रामीणों को सुनाते हैं। ज्ञानेश्वरी का सम्पूर्ण सार चारों कवि अपने अपने शब्दों में प्रकट करते हैं।

तेरहवां दृश्य– ज्ञानदेव पण्ढरपुर जाते समय कवि नागदेव से मिलते हैं, दोनों परस्पर एक दूसरे की

आध्यात्मिक उच्चता का वर्णन करते हैं और एक दूसरे की प्रशंसा करते हैं। सभी स्थानों के बड़े.बड़े योगी भी उस छोटे से बालयोगी (ज्ञानदेव) के शिष्य बन गये हैं।

चौदहवां दृश्य– 20 वर्ष के ज्ञानदेव ध्यानमग्न हैं। मञ्च के अर्ध भाग में कवि उस बालयोगी की कथा कहते हैं। अन्त में महाकवि और पण्डिता क्षमाराव ज्ञानेश्वर के समाधिस्थ होने की बात बताते हैं। अन्तिम समय में विट्ठल और रुक्मिणी तथा स्वयं भगवान् पाण्डुरंग का प्रादुर्भाव होता है। भगवान् पाण्डुरंग उन्हें आशीर्वाद देते हैं। इसके पश्चात् ज्ञानदेव परिकल्पित पीठ पर आसीन होते हैं।

कथानक आ अध्ययन करने पर मालूम होता है कि यह भक्ति रस प्रधान नाटक है। क्योंकि इसका मूल आधार काव्य है इसलिए यह नाटक से अधिक काव्यमय ही लगता है। घटनाओं को दृश्य रूप में परिवर्तित कर कथानक को एक दूसरे से जोड़ने वाले पण्डिता क्षमा राव के श्लोक अत्यन्त हृदयहारी हैं। श्रीमती लीलाराव की नाट्य प्रतिभा ने उन दृश्यों को नाट्य प्रस्तुति द्वारा सजीव बना दिया है। संत ज्ञानेश्वर ने गीता ज्ञानेश्वरी नामक ग्रन्थ की रचना की थी इसलिए सम्पूर्ण ग्रन्थ पर गीता दर्शन की छाप है, सम्पूर्ण दृष्टिकोण में वैराग्य की भावना है। स्वयं ज्ञानदेव महिष और अपनी समानता प्रदर्शित करते हुए कहते हैं–

नास्ति कश्चिदपि भेद आवयोरात्मनो ध्रुर्वमिति ब्रवीभि वः।
आत्मनो वपुषि भासते प्रतिबिम्बनं दिनमणेर्घटे यथा।
चक्रपाणिरपि सर्वदेहिषु व्यापकः सकलविश्वगश्च सः।।
आकृतिस्तदपि तस्य वस्तुतो ज्ञानिनो भवति दृष्टिगोचरा।
कारणे स्थिरदृशो हि मानसं बध्यते न खलु कार्य दर्शनम्।।
बिम्बं निदानं प्रतिबिम्बकस्य वनस्पतेर्बीजाभिवाङ् कुरस्य।
यथा सुवर्णे च विभूषणानां यथा पटस्यापि च तंतुसङ्घः।।

मैं आपको यह निश्चित बताता हूं कि हम दोनों की आत्मा में कोई भेद नहीं है। जिस प्रकार सूर्य घट में प्रतिबिम्बत होता है वैसे ही आत्मा शरीर में। श्रीकृष्ण समस्त प्राणियों में व्याप्त हैं और समस्त विश्व में विद्यमान हैं तो

# श्री ज्ञानेश्वरचरितम्

पण्डित क्षमा राव द्वारा रचित संत ज्ञानेश्वर के जीवन चरित पर आधारित काव्य का, उनकी पुत्री लीला राओ दयाल ने 16 दृश्यों से युक्त बालयोगी नामक नाटक में रूपान्तर किया है, जिसका सफल अभिनय भी हो चुका है। श्री ज्ञानेश्वर चरित्र का नाट्य रूप मञ्जूषा में भी प्रकाशित हो चुका है। पण्डिता क्षमा राव की यह अन्तिम कृति है। श्रीमती लीला राओ दयाल ने काव्य को नाटक में रूपान्तर करने का एक नवीन ढ़ंग अपनाया है। स्वयं पण्डिता क्षमा राव कवि नामदेव, कवि महापति तथा कवि निरञ्जन रंग मञ्च के एक कोने में अपनी कृतियों से तथा सूत्र जोड़ते हुए श्लोक पढ़ते हैं, रंग मञ्च के अर्घ भाग में नाटक के दृश्य दिखाये जाते हैं। नाटक के नायक के जन्म के पूर्व से लेकर उसके जन्म लेने और सम्पूर्ण जीवन के लगातार प्रदर्शन का अभिनय असम्भव था इसलिए अभिनय योग्य दृश्यों का प्रदर्शन कर और बाकी अंश कवियों के मुख से कहला कर नाटक को कमबद्ध और सौन्दर्ययुक्त बना दिया है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि नाटक के एक दृश्य के बाद जब दूसरा दृश्य आता है तो बीच में कभी — कभी 10 वर्ष का अन्तर है। उदाहरण के लिये चतुर्थ दृश्य और पञ्चम दृश्य में 10 वर्ष का अन्तर है। कवियों ने अपने मुख से जो श्लोक पढ़े हैं उन्हें श्रीमती लीला ने पूर्ववत रहने दिया है, उनमें कोई परिवर्तन नहीं किया गया।

## कथानक —

प्रथम दृश्य में — अलन्दिपुर ग्राम की वार्षिक यात्रा में ज्ञानेश्वर की मूर्ति को सजा कर यात्री मंगल श्लोक गाते हुए ले जाते हैं, दूसरी ओर से नामदेव, निरञ्जन तथा महापति इन कवियों सहित पण्डिता क्षमा राव प्रवेश कर के ज्ञानेश्वर के छः सौ वर्ष के चरित्र का गुणगान करते हैं। कवि महापति बताते हैं कि गोदावरी नदी के तीर पर अपे गांव नामक स्थान में विट्ठल नामक अत्यन्त शुद्ध चरित्र वाला व्यक्ति था यही ज्ञानेश्वर का पिता था। उसके हृदय में बाल्यकाल से ही वैराग्यवृत्ति का जागरण हो गया था। उसके पिता ने भी उसकी वैराग्य वृत्ति को देख कर गायत्री मन्त्र का उपदेश दिया और उपनयन आदि संस्कार के पश्चात् बालक ने वैराग्य वृत्ति धारण कर ली। कुछ समय पश्चात् — पण्डिता क्षमा देवी तथा अन्य पण्डित ग्रन्थ रचना में लीन हैं, और बताते हैं कि विट्ठल सदैव भगवद्भजन में लीन रहता था और भ्रमण करते करते आलन्दिपुरी में आ गया। नामदेव बताते हैं कि जब उसने नदी के जल को स्पर्श किया तब उसे मालूम था कि उसके लिये अगले जीवन में कितने दुःख भरे पड़े हैं। दूसरी ओर आलिन्दपुरी में आये हुए विट्ठल को उसकी भावी श्वसुर मिलता है और उसे विस्मत होकर देखता है और थोड़े से वार्तालाप के पश्चात् उसे अपने घर में ले आता है और विट्ठल वहीं रह कर क्षेत्र की आय का संग्रह करके विद्या अर्जुन कर सबका प्रेमपात्र बन जाता है।

द्वितीय दृश्य —— विट्ठल सिद्धोपन्त के प्रांगण में लेटा हुआ है, इतने में उसके कुल — देवता आकर मानो आदेश देते हैं कि उसे सिद्धोपन्त की कन्या से विवाह कर लेना चाहिए क्योंकि उसकी कोख से उसे पुत्र रत्न की प्राप्ति होगी जो उसके सम्पूर्ण वंश का उद्धार करेगा। केवल इतना ही नहीं वह अपने प्रकाश से सम्पूर्ण संसार का अन्धकार दूर कर देगा। इसके पश्चात् पण्डिता क्षमा राव बताती हैं कि विट्ठल ने अपने कुलदेवता की आज्ञा मान कर उस कन्या से विवाह कर लिया और वधु को लेकर अपने गांव आ गया।

तृतीय दृश्य —— ( कुछ वर्ष व्यतीत हो जाने के पश्चात् ) मुनि रामानन्द आलन्दिपुर में यात्रा श्रम के कारण विश्राम करते हैं। विट्ठल की पत्नी रुक्मिणी आकर उन्हें प्रणाम करती है। रामानन्द उसे आशीर्वाद देते है कि अपूर्व गुणों वाले पुत्र की जननी बनो, इस पर निराश होकर रुक्मणी उत्तर देती है कि जिसके पति ने वैराग्यवृत्ति का आश्रय लिया हो उसके लिये भला आपकी वाणी कैसे सत्य हो सकती है। इतना कह कर रुक्मिणी चुप हो जाती है। इसके पश्चात् पण्डिता क्षमाराव मुनि को सम्बोधित करते हुए कहती हैं कि इन दोनों को पुत्र की इच्छा होते हुए भी बहुत समय व्यतीत हो जाने पर पुत्र प्राप्ति नहीं इस पर विट्ठल एहिक सुखों का त्याग कर सन्यासी बन गया है। रामानन्द जी रुक्मिणी को आश्वासन देते हैं कि मैंने ही तरुण अवस्था में उसे सन्यास प्रदान किया था इसलिए इस दोष का भागी में ही हूं। वे रुक्मिणी को आश्वासन दे कर चले जाते हैं कि वे उसके पति को समझायेंगे। रुक्मिणी मुनि रामानन्द के आशीर्वाद से और प्ररणाजनक शब्दों से हिमकन्या पार्वती के समान तपस्या में लीन रहने लगी।

चतुर्थ अंक —— ( कुछ सप्ताह बीत जाने पर ) सन्यास धर्म का त्याग कर पुनः गृहस्थाश्रम में लौट आने वाले विट्ठल की लोग निन्दा करते हैं। विट्ठल उन्हें समझाता है कि वह विषय भोग के लालच में इस गृहस्थाश्रम में नहीं आया वरन गुरु की आज्ञा से ही इसमें प्रविष्ट हुआ है लेकिन लोग नहीं मानते और उसे बुरा भला कहते हैं। समबुद्धि से युक्त होने पर विट्ठल पर निन्दा और स्तुति का अधिक प्रभाव नहीं पड़ता और वह अपने गुरू की आज्ञानुसार ही कार्य करता है।

पञ्चम दृश्य —— ( दस वर्ष व्यतीत हो जाने पर ) विट्ठल और रुक्मिणी की चार सन्ततियां ज्ञानेश, निवृत्ति, सोपान देव और मुक्ति सभी परस्पर खेलते हैं, विट्ठल भिक्षा मांग कर बच्चों का भरण पोषण करता है, सन्यास से भ्रष्ट होर पुनः गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने के फलस्वरूप ब्राह्मण उसका बहिष्कार कर देते हैं।

श्वसुर शुद्धोपन्त की मृत्यु हो जाती है। उसके पश्चात् परिवार निराश्रय हो कर रहता है, विट्ठल अपने ज्येष्ठ पुत्रों ज्ञानेश और सोपान देव की इच्छा शिक्षा दिलाता है जिससे वे दोनों अत्यन्त विद्वान् बन जाते हैं।

षष्ठ अंक —— विट्ठल अपने पुत्रों के उपनयन संस्कार के लिये ब्राह्मणों से प्रार्थना करता है किन्तु वे कहते हैं कि सन्यासी से पुनः गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने वाले जाति बहिष्कृत व्यक्ति के पुत्रों को उपनयन का अधिकार नहीं, इस पर दोनों पति – पत्नी अत्यन्त खिन्न होते हैं, पुरोहित उन्हें बताते हैं कि इस कुकर्म का प्रायश्चित आत्मविनाश के अतिरिक्त दूसरा नहीं है, विट्ठल कहता है कि यदि इससे मेरे पुत्रों का उपनयन संस्कार हो जाये और वे जाति में सम्मिलित कर लिये जायें तो विट्ठल अपने प्राण विसर्जन अवश्य कर देगा। इसके पश्चात् अपने पुत्रों के हित की इच्छा करने वाले विट्ठल और रुक्मिणी दोनों ही जाह्नवी नदी में अपने प्राण त्याग देते हैं। दूसरी ओर चारों बच्चे अपने माता – पिता को न पा कर दुःखी होते हैं, घर से एक घर से दूसरे घर जाकर भिक्षा मांगते हैं। उन्हें मालूम हो जाता है कि अब उनके माता पिता इस संसार में नहीं हैं। अपने गांव जाने पर उनके सम्बन्धी उनकी पैतृक सम्पत्ति से भी वंचित कर देते हैं किन्तु दोनों बालक प्रबुद्ध थे इसलिए उन्होंने सम्पूर्ण संसार को ही अपना घर समझा और मन के विषाद से दुःखी नहीं हुए।

सप्तम दृश्य – ज्ञानेश्वर और सोपान देव शास्त्रों में निष्णात पिता के भक्तियुक्त संस्कारों से ओतप्रोत आत्मा में ही रमण करते हैं। उन्हें जातपात के बन्धन नहीं बंध सके, वे दोनों परस्पर अत्यन्त आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करते हैं।

अष्ठम अंक –– अनाथ बच्चे भ्रमण करते हुए प्रतिपुर पहुंच जाते हैं वहां की विप्रमण्डली के सामने वे प्रार्थना करते हैं कि अब वे शुद्ध हो गये हैं उनका उपनयन संस्कार करना चाहिए। किन्तु सभापति कह देता है कि उनका उपनयन संस्कार तो असम्भव है किन्तु यदि वे चाहें तो वहीं रह कर निरन्तर भजन द्वारा सम्पूर्ण जाति के बन्धनों से ऊपर उठ सकते हैं। सभी विप्र उनसे उनका नाम इत्यादि पूछते हैं, बच्चे अपने नाम के सहित अपने दिव्य गुण भी बताते हैं। जिससे विप्र कहते हैं कि यदि तुम ज्ञानी हो तो ज्ञानदेव नामक भैंसे में और तुममे क्या साम्य है। ज्ञानदेव बताते हैं कि इनमें और मुझमें कोई भेद नहीं। प्रमाण के लिये भैंसे को मार पड़ती है, किन्तु रक्त संत ज्ञानेश्वर की क्षतविक्षत पीठ से निकलता है, यह चमत्कार देख कर सभी आश्चर्य चकित रह जाते हैं।

नवम अंक – ज्ञानेश्वर की भक्ति और उसके अनन्त चमत्कार देख कर सभी लोग दूर – दूर से उनके दर्शन करने आते हैं, कुछ दुष्ट उनके विरुद्ध भी बोलते हैं किन्तु ज्ञानेश्वर की शुद्ध अन्तरात्मा के समक्ष वे सदैव हार जाते हैं। वे कहते हैं कि यदि भैंसे में और ज्ञानेश्वर में कोई अन्तर नहीं तो भैंसे के मुंह में वैदिक ऋचायें सुनवाईए, संत ज्ञानेश्वर के आदेशानुसार भैंसा भी मानव वाणी में ऋचायें बोलता है जिसे सुन कर सभी दुर्जनों के मुंह बन्द हो जाते हैं।

दशम दृश्य –– बालयोगी ज्ञानेश्वर अब अपनी रचनाएं भी करता है, सम्पूर्ण संसार में उसकी कीर्ति फैल जाती है। श्राद्ध करने के लिये स्वयं पूर्ववज मूर्तमान होकर उसके पास आते हैं और सानन्द भोजन करके जाते हैं।

ग्यारवहां दृश्य –– ( चारों कवि रंगमन्च के एक कौने में बैठ कर ज्ञानेश्वर की कथा सुनाते हैं ) ग्रामीण बताते हैं कि यहीं पर ज्ञानेश्वर जी ने अपना महा प्रबन्धन ज्ञानेश्वरी लिखा था, मन्च के द्वितीय भाग में ज्ञानेश्वर की पुरी पहुंच जाना प्रदर्शित किया जाता है। वहीं पर एक स्त्री अपने पति के शव पर ऊंचे स्वर से रुदन करती है। ज्ञानेश्वर जी उसके रुदन का कारण पूछते हैं और कारण पूछ कर उसके मृतक पति को हाथ के स्पर्श से पुनर्जीवित कर देते हैं। रंगमन्च के दूसरे भाग में कवि अपनी कथा द्वारा सूचित करते हैं कि इन चमत्कारों द्वारा लोग उन पर अत्यधिक श्रद्धा करने लगे कुछ दुर्जन पुरुष विसोबा इत्यादि पहले उन्हें तंग करते थे फिर बाद में उनके भक्त बन गये।

बारहवां दृश्य – ज्ञानेश्वर अपनी रचना ग्रामीणों को सुनाते हैं, ज्ञानेश्वरी का सम्पूर्ण सार चारों कवि अपने अपने शब्दों में प्रकट करते हैं।

तेरहवां दृश्य – ज्ञानदेव पण्ढरपुर जाते समय कवि नागदेव से मिलते हैं, दोनों परस्पर एक दूसरे की आध्यात्मिक उच्चता का वर्णन करते हैं और एक दूसरे की प्रशंसा करते हैं। ~~सभी के बड़े–बड़े~~ योगी भी उस छोटे से बालयोगी के शिष्य बन गये।

चौदहवां दिन – 20 वर्ष के ज्ञानदेव ध्यानमग्न हैं। मन्च के अर्थ भाग में कवि उस बालयोगी की कथा कहते हैं। अन्त में महाकवि और पण्डिता क्षमाराव ज्ञानेश्वर के समाधिस्थ होने की बात बताते हैं, अन्तिम समय में विट्ठल और रुक्मिणी तथा स्वयं भगवान प्रभु पाण्डुरंग का प्रादुर्भाव होता है। भगवान् पाण्डुरंग उन्हें आशीर्वाद देते

हैं, इसके पश्चात् ज्ञानदेव परिकल्पित पीठ पर आसीन होते हैं।

कथानक आ अध्ययन करने पर मालूम होता है कि यह भक्ति रस प्रधान नाटक है, क्योंकि इसका मूल आधार काव्य है इसलिए यह नाटक से अधिक काव्यमय ही लगता है। घटना को दृश्य रूप में परिवर्तित करके बाकी कथानक को एक दूसरे से जोड़ने वाले पण्डिता क्षमा राव के श्लोक अत्यन्त हृदयकारी हैं और श्रीमती लीलाराव की नाट्य प्रतिमा तो उन दृश्यों को सजीव बना कर अभिनययुक्त बनाने की ओर अभिनत है। संत ज्ञानेश्वर ने गीता ज्ञानेश्वरी नामक ग्रन्थ की रचना की थी इसलिए सम्पूर्ण ग्रन्थ पर गीता दर्शन की छाप है, सम्पूर्ण दृष्टिकोण में वैराग्य की भावना है। स्वयं ज्ञानदेव महिष और अपनी समानता प्रदर्शित करते हुए कहते हैं ——

नास्ति कश्चिदपि भेद आवयोरात्मनो ध्रुर्वमिति ब्रवीभि वः।
आत्मनो वपुषि भासते प्रतिबिम्बनं दिनमणेर्घटे यथा।
चक्रपाणिरपि सर्वदेहिषु व्यापकः सकलविश्वगश्च सः।।
आकृतिस्तदपि तस्य वस्तुतो ज्ञानिनो भवति दृष्टिगोचरा।
कारणे स्थिरदृशो हि मानसं बध्यते न खलु कार्य दर्शनं।।
बिम्बं निदानं प्रतिबिम्बकस्य वनस्पतेर्वीजाभिवा कुरस्य।
यथा सुवर्णे च विभूषणानां यथा पटस्यापि च तंतुसंघः।।

मैं आपको यह निश्चित बताता हूं कि हम दोनों की आत्मा में कोई भेद नहीं है जिस प्रकार सूर्य घट में प्रतिबिम्बत होता है वैसे ही आत्मा शरीर में। श्रीकृष्ण समस्त प्राणियों में व्याप्त हैं और समस्त विश्व में विद्यमान हैं तो भी उनकी यथार्थ आकृति ज्ञानी को दृष्टिगोचर हो जाती है। कारण में जिसकी दृष्टि स्थिर रहती है उसका मन ही बन्धन में पड़ता है न कि कार्य को देखने में स्थिर दृष्टि वाले का। जिस प्रकार वनस्पति या बीज अंगूर का, सवर्ण आभूषणों का और तन्तु समुदाय वस्त्र का कारण होता है वैसे ही बिम्ब प्रतिबिम्ब का कारण होता है।

---

# रथरज्जुः

## ( रवीन्द्रनाथ टैगोर कृत– कालेर यात्रा ' बंगला नाटक का संस्कृत अनुवाद )

अनुवादक प्रो0 विमलकृष्ण मतिलाल

कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ टैगोर ने 1923 में एक छोटा सा नाटक लिखा था, जिसका नाम था, ' रथयात्रा ' अर्थात् ' रथ का मेला' । इसका भावार्थ स्वयं ही स्पष्ट करते हुए श्री रवीन्द्रनाथ ने लिखा था कि रथ के मेले को देखने के लिये आये हुए दर्शकों ने देखा कि महाकाल का रथ बिलकुल निश्चल खड़ा है। रथ का निश्चल खड़ा होना मानो मनुष्य जाति के लिये एक महती आपत्ति का सूचक है। एक मनुष्य के साथ दूसरे का सम्बन्ध तथा एक युग का दूसरे युग के साथ सम्बन्ध उसी महाकाल की रथ की रज्जु से ही द्योतित होता है, जिससे रथ खींचा जाता है। रज्जु में जो गांठें पड़ी हुई हैं, वे मानो मानव जाति में परस्पर सच्चे और समानता के व्यवहार में बाधा पहुंचाती हैं। क्योंकि मनुष्यों का व्यवहार बहुत अधिक विषमता और झूठ पर आधारित हो गया इसलिए महाकाल का रथ चलने में असमर्थ हो गया। विषमता और झूठ का इतना बोध हो गया कि रथ की रज्जु भूमि में बड़े अजगर के समान पड़ी रही कोई भी उन्हें हिलाने तक को समर्थ न हो सका। समाज का जो वर्ग सबसे अधिक अपमानित समझा जाता है और समाज के उच्चतम अधिकारों से जिस वर्ग को वंचित रखा जाता है, उसी वर्ग को स्वयं महाकाल अपना रथ खींचने के लिये आह्वान करते हैं। इस रूपक के द्वारा मानो कवि यह बताना चाहता है कि जब निम्नवर्ग के मनुष्यों के साथ समान व्यवहार किया जायेगा, जब उन्हें सम्पूर्ण अधिकार दिये जायेंगे तभी समय रूपी रथ चलेगाा, अन्यथा निश्चल हो कर समाज को सम्पूर्ण आपत्तियों से ग्रस्त करेगा।

1923 में लिखे गये ' रथ यात्रा ' नाटक को 1932 में लेखक ने ' कालेर यात्रा ' नाम से पुनः लिखा, उसी कालेर यात्रा का अनुवाद श्री विमल कृष्ण मतिलाल ने प्रस्तुत किया है। संस्कृत साहित्य परिषद के द्वारा कलकत्ते में इसका सफल अभिनय भी हो चुका है। प्रो0 विमल कृष्ण ने अपने संस्कृत रूपान्तर का नाम रखा है 'रथरज्जुः'। रथरज्जुः का कथानक इस प्रकार है–

रथ यात्रा का उत्सव देखने के लिये बहुत सी स्त्रियां एकत्र हुई हैं किन्तु अशुभ लक्षणों को देख कर परस्पर वार्तालाप करती हैं कि आज इतनी देर हो गई है फिर भी रथ दृष्टिगोचर क्यों नहीं हो रहा। उत्सव में पूजा आदि

करने वाला पुरोहित भी उदास सा दृष्टिगोचर होता है। महाकाल का सेवक भी वैसी ही मुद्रा में है। एक सन्यासी यह घोषणा करता है कि रथ निश्चल खड़ा है। यह मानो इस बात की घोषणा करता है कि युद्ध होगा, आग जलेगी, महामारी फैलेगी और पृथ्वी बंजर हो जायगी। इस अशुभ वाणी को सुन कर स्त्रियां बहुत डर जाती हैं। तब सन्यासी उन्हें बताता है कि ऐसी अवस्था इसलिए हो रही है क्योंकि धनियों के धन में सार नहीं रहा। पृथ्वी में उतनी शक्ति नहीं रही कि वह शस्य से कृषकों के घर भर दे। अन्त में सन्यासी यह कह कर चला जाता है कि रथ के रज्जु रथ के चलने पर तो मुक्ति का कारण बनते हैं किन्तु  रथ जब खड़ा हो जाता है तब वे ही बन्धन स्वरूप बन जाते हैं। सन्यासी के चले जाने के बाद कुछ नागरिक परस्पर वार्तालाप करते हैं कि पुरोहित के मन्त्र जपने पर भी रथ में स्पन्दन नहीं होता। रथ की भारी.भारी रज्जुओं को देख कर सभी भयभीत होते हैं। वे सोचते हैं कि पृथ्वी में पापात्मा अधिक हैं इसलिए रथ गतिहीन हो गया है। यदि कोई पवित्रात्मा आ कर रज्जु को खींचे तो रथ अवश्य चल पड़े। स्त्रियां अपनी.अपनी पूजा का सम्भार लाती हैं और रज्जु देवता को तरह तरह की पूजा से प्रसन्न करने की चेष्टा करती हैं लेकिन अपने प्रयत्न में सफल नहीं हो पातीं। स्त्रियों की पूजा भी सफल नहीं होती इसके पश्चात् बड़े . बड़े योद्धा सैनिक रज्जु को खींचने का प्रयत्न करते हैं किन्तु आश्चर्य की बात कि वे भी सफल नहीं हो पाते। सैनिकों को एक नागरिक बताता है कि हम लोगों से महाकाल की अवज्ञा हो गई है इसीलिए वह निश्चल पड़ा है। त्रेतायुग में भी एक बार एक शूद्र ब्राह्मण जैसा कर्म करने लगा था अर्थात् तपस्या द्वारा अपना शूद्रत्व मिटा कर ब्राह्मण बनना चाहता था। उस समय भी महाकाल का रथ निश्चल हो गया था, फिर रामचन्द्र ने उसका शीर्ष काट कर उस पाप का निवारण किया था। तभी रथ चला था। आजकल भी शूद्र सभी कार्य क्षत्रियों और ब्राह्मणों जैसा करने लग गये हैं, इसीलिए शायद महाकाल अपमानित हो गया है। इतने में ही व्यक्ति आ कर सूचना देता है कि राजा ने नगर के सभी धनिकों को बुलाया है। शायद धन के बल से बलशाली हुए श्रेष्ठिवर ही रथ की रज्जु खींचने में समर्थ हो सकें। धनिक आकर रज्जु को खींचने का प्रयास करते हैं। सैनिक और धनिकों में अपनी अपनी श्रेष्ठता के लिये वाग्युद्ध भी होता है किन्तु दुर्भाग्य से धनिक भी रथ खींचने में असफल रहते हैं। इस पर सैनिक प्रसन्न होते हैं कि यह अच्छा ही हुआ कि धनिक लोग भी रज्जु खींचने में असमर्थ रहे नहीं तो धनिकों की सफलता उनके अपमान का कारण बन जाती। सैनिक और धनिकों को असफल होते देख एक बार पुनः स्त्रियां कहती हैं कि कलियुग में पूजा का अभाव है इसीलिए सब अनर्थ हो रहे हैं। वे फिर पूजा का उपचार करती हैं और रज्जु देवता को अपने आभूषणों से अलंकृत करने का प्रण करती हैं, जिससे वह प्रसन्न होकर चल पड़े, किन्तु सब चेष्टायें व्यर्थ जाती हैं। अन्त में हताश होकर वे अपने.अपने घर चली जाती हैं। इतने में दूत आ कर मन्त्री को बताता है कि शूद्र लोगों का समूह आ

रहा है और कहता है कि रज्जु को चलाने का प्रयत्न वे लोग स्वयं करेंगे। घटनास्थल पर खड़े लोगों को बड़ा आश्चर्य होता है कि शूद्र लोग रथ का संचालन का कार्य कैसे करेंगे। वे सभी इस बात का विरोध करते हैं। जब शूद्र बताते हैं कि महाकाल ने स्वयं उन्हें आदेश दिया है कि वे रज्जु स्पर्श करके रथ संचालन करें तो सभी लोग चुप हो जाते हैं। सबसे अधिक आश्चर्य तो सभी लोगों को उस समय होता है जब शूद्रों के हाथ लगाने मात्र से रथ स्वयं ही चलने लगता है। पुरोहित, सैनिक और धनिक जब रथ में गति देखते हैं तो असमंजस में पड़ जाते हैं कि संग्राम करना चाहिए अथवा शूद्रों के साथ मिल कर रथ को और आगे बढ़ाना चाहिये। इसका मार्ग निर्णय स्वयं मन्त्री करते हैं क्योंकि वे स्वयं भी शूद्रों के साथ रज्जु संचालन में प्रवृत्त हो जाते हैं। उन्हें महाकाल की आज्ञा का रहस्य मालूम हो जाता है कि यह चाहते हैं कि संसार में ऊंच.नीच कुछ भी नहीं है, सब समान हैं। पुरोहित आदि अभी भी किंकर्तव्यविमूढ़ होकर ख़ड़े हैं। इतने में कवि महाशय आते हैं सभी लोग उनसे पूछते हैं कि आगे सदैव रथ का संचालन पुरोहित के मन्त्र पढ़ने से होता था अब बिलकुल विपरीत कार्य कैसे हो गया। कवि उत्तर देता है कि इन सभी लोगों को अभिमान हो गया था। ये ऊपर ही ऊपर देखते थे। इनके चक्षु नीचे की ओर नहीं देखते थे। जो बन्धन सभी प्राणियों को परस्पर बांधता है, इन्होंने उसी की उपेक्षा की थी। इसी का फल है कि इनके संकेतानुसार रथ नहीं चला। सैनिक के पूछने पर कि कवि क्या करेगा वह उत्तर देता है कि जो रथ चलाते हैं उनके लिये लय और ताल से युक्त गीतों का सृजन करूंगा जिससे उनकी गति में व्याघात न हो। इसके पश्चात् भरत वाक्य के रूप में कवि कहता है कि जो शूद्र सदियों से अपमानित होते आये हैं वे भी उन्नत मस्तक हो कर सम्पूर्ण समाज के साथ उचित सम्बन्ध रखें जिससे रथ अजस्र गति से चलता रहे।

प्रस्तुत नाटक कथानक की दृष्टि से भी और चरित्र . चित्रण की दृष्टि से भी भावात्मक ही कहा जायगा। समय का रथ जो कि सदैव अदृश्य है इस नाटक में मूर्त रथ के रूप में प्रस्तुत किया गया है, समय का चलना और रुकना भी अमूर्त है किन्तु यहां रथ के रूप में उसे निश्चल और बाद में गतिशील दिखा कर उसे भी मूर्त स्वरूप प्रदान किया गया है। ब्राह्मणों का पुरोहित, क्षत्रियों का सैनिक, वणिजों का धनिक श्रेष्ठी और शूद्रों का वृषलों ने प्रतिनिधित्व किया है। उनमें अपने व्यक्तिगत गुण न होकर जातीय गुण हैं। पुरोहित में ब्राह्मणों जैसा अभिमान है, सैनिक में क्षत्रियों जैसी युद्ध करने की प्रवृत्ति है, धनिक श्रेष्ठी में धन का मद है और शूद्रों में सदियों से अपमान सह कर ऊंचे उठने की इच्छा है। प्रथम तीन वर्ण, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य परस्पर वैमनस्य में ग्रस्त हैं। प्रत्येक स्वयं को अन्य दोनों से बड़ा समझता है इसीलिए एक दूसरे को तिरस्कार की दृष्टि से देखता है। उधर शूद्र इन तीनों द्वारा

अपमानित हैं, इसलिए वह इन तीनों से ऊपर उठ कर अपना अस्तित्व जताना चाहता है। एक दूसरे दृष्टिकोण से देखा जाय तो नाटककार समाजवादी धारणा को बद्धमूल कर देना चाहता है। उसके मत में जहां असमानता होगी वहीं दुःख होगा। समाज तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक उसमें घोर विषमता है, जब तक एक मनुष्य दूसरे को मनुष्य न समझ कर अपने कार्य का साधन रूप समझता है। समाज उन्नति की सीढ़ी तभी चढ़ सकता है जब मनुष्य मनुष्य में समानता हो, धन और मानवीय अधिकार दोनों दृष्टिकोणों से ।

## भाषा और शैली

प्रस्तुत ग्रन्थ रवीन्द्रनाथ की ' कालेर यात्रा ' नामक कृति का अनुवाद होने के कारण अनुवादक के लिये भावगत स्वतन्त्रता का अवसर नहीं के बराबर थी। वैसे देखा जाय तो भाषा के प्रयोग में भी लेखक को अत्यन्त संयत रहना पड़ा है अन्यथा यह अनुवाद न रह कर एक अन्य ही स्वतन्त्र कृति बन जाता। परन्तु इतना अवश्य कहना पड़ेगा कि लेखक की भाषा में प्रवाह है, जो उन्होंने कहा है वह रवीन्द्रनाथ के कथन के बिलकुल अनुकूल बैठता है। भाषा के साथ साथ मतिलाल जी ने विश्व कवि के भावों के प्रति भी उतना ही न्याय किया है जितना कि मानवशक्ति के प्रति हो सकता था। अनुवाद कभी कभी ऐसा होता है कि सम्बद्ध भाषा में बिलकुल उन्हीं शब्दों के पर्याय शब्दों का प्रयोग करने पर भी वह भाव नहीं आ पाता जो कि मूल लेखक ने अपनी भाषा में कहने का प्रयत्न किया है। यह प्रसन्नता का विषय है कि श्री विमलकृष्ण का संस्कृत भाषा पर अच्छा अधिकार है और उन्होंने विश्वकवि के भावों के साथ पूर्ण न्याय किया है।

विमल कृष्ण जी की भाषा कहीं कहीं अत्यन्त प्राजल और मुहावरों से युक्त है। उत्सव की वेला में सभी आनन्दित हैं, सभी के मन में उत्साह है , मंगलमयी कामनायें हैं। ऐसे अवसर पर अमंगल बात कोई नहीं सुनना चाहता किन्तु यदि फिर भी अमंगल ही होना हो तो इसमें किसी का वश नहीं चलता इसी बात को लक्ष्य करके सन्यासी कहता है–

किमु नावलोक्यते– अद्य सन्ति धनानि धनिकानां, सारस्तस्य तु विलुप्तो जातो गजभुक्तकपित्थस्येव। शस्यपरिपूर्णे च क्षेत्रे वासः कल्पित उपवासेन। पक्षाधिपतिः स्वयमैष स्चीये भाण्डागारे स्थितः प्रायोपवेशनैन।

क्या देखते नहीं, आज धनिकों के पास धन तो है पर उसका सार गज नाम के कीट द्वारा खाये हुए कैथे के फल के समान है। अनाज से भरे खेत में उपवास ने घर कर लिया है। कुबेर ने स्वयं ही अपने भण्डार में अनशन व्रत धारण कर लिया है।

'गजमुक्त कपित्थ' एक ऐसा श्लोकांश है जिसका बंगाल में मुहावरे के रूप में प्रयोग होता है ——

आगच्छति थदा लक्ष्मी नारिकेलफलाम्बुवत्।

निर्गच्छति यदा लक्ष्मीर्गजभुक्तकपित्थवत्।।

कहीं कहीं पर उपमा का भी सुन्दर प्रयोग कृति में दीख किया है —— गति के अभाव में रथ की रज्जु निश्चल पड़ी है, किन्तु उसकी भयानकता अधिक बढ़ गई है। भूमि पर पड़ी मानो वह युग के अवसान की नाड़ी के समान लगती है।

तृतीय नागरिकः – अमूं रज्जुं प्रति नेत्रं पातयतो ऽपि भयमुत्पद्यते।

प्रतिभात्यसौ युगावसानस्य नाडिकेव ज्वरैणश

त्रिदोषर्जन स्पन्दते ऽतिवेगेनेति।

लेखक की वर्णनात्मक शक्ति बहुत ही स्वभाविकता लिये हुए है। पुरुषों से अधिक स्त्रियां अधिक भीरु होती हैं। पूजा पाठ के प्रति श्रद्धा भी स्त्रियों में ही अधिक होती है। देवी देवताओं की मनौतियां जितनी स्त्रियों मे होती हैं उतनी पुरुषों में नहीं। इस तथ्य का द्योतन लेखक ने बहुत ही सुन्दर शब्दों में किया है। निश्चल रज्जुओं को स्पन्दन शील बनाने में पुरुष अन्यान्य उपाय ढूंढ़ते हैं किन्तु स्त्रियां अपनी पूजा के सम्भार के द्वारा ही सभी कष्ट दूर करना चाहती हैं। उनका पूजा का प्रकार कितना स्वाभाविक है। सभी स्त्रियां अपनी बुद्धि के अनुसार रज्जु देवता को प्रसन्न करना चाहती हैं। उनकी प्रार्थना और क्रियाकलाप सुनने और देखने योग्य हैं ——

द्वितीया– वर्त्तिष्ये ऽहमपि वर्षत्रयं ते दासीभावेन, दिनस्य त्रिः भोगमुपहरिष्यामि। अरे विनि! आनीतं यदि वीजनं तर्हि वीज्यताम नाम – अपि न दृश्यते – रौद्रतप्तो ऽस्य घनश्यामो देह इति। कलसेन सिच्यतां गंगाजलम्। अरे ? अमुष्य स्थानस्य कर्द्यपि मम ललाटे लिप्यताम्। एषा अस्मदीया खेंदीत्याख्या बाला आनीतवती कृशरान्नभोगम्।

आरूढ़ प्रौढ़िया दिवसः, अहो कियद्वा कष्टमनुभूतं प्रभुना। जयति रज्जु भगवान् जयति देव देव रज्जु भगवान्– नमस्तुभ्यं, जायतां दयार्द्रं ते चित्तम्। शिरो मे कुट्टयामि ते पदयोः, जायतां कृपार्द्रे ते मनः। वीन्यतामरे वीज्यतां सर्वगमेव।

दूसरी – मैं तीन बरस तक तेरी दासी बन कर रहूंगी। दिन में तीन बार भोग लगाऊंगी। अरे विनि, यदि पंखा ले आई हो तो हवा करो न। क्या देखती नहीं हो इसका मेघों की तरह का श्यामल देह बहुत अधिक तप चुका है कलसी से गंगा जग उडेलो। इस स्थान की चड़कानी का मेरे माथे पर लेप कर दो। यह हमारी खेंदी नाम की बच्ची तिल.चावल की खिचड़ी का भोग ले आई है। दिन बहुत बढ़ चुका है। अहो प्रभु ने कितना कष्ट पाया। रज्जु भगवान् की जय हो, देवदेव रज्जु भगवान् की जय हो। तुम्हें प्रणाम हो। तुम्हारा चित्त दयार्द हो जाय। मैं तेरे पावों पर सिर रगड़ती हूं। तुम्हारा हृदय दया से द्रवित हो जाय। अरे हवा करो, जोर से हवा करो।

# रतिविजयम

## श्री के०एस्० रामस्वामिरचित यह पौराणिक नाटक,

जैसा कि लेखक ने प्रारम्भिक वक्तव्य में कहा है, महाकवि कालिदास के कुमार सम्भव के चरित्र रति से अनुप्रेरित है। नाटक की रचना करने में लेखक ने जहां तक उससे बन पड़ा है, के नाट्य शास्त्र के नियमों का पालन किया है। मां पार्वती के प्रति अनन्य भक्ति ही सम्पूर्ण नाटकी की आत्मा है। पार्वती का भगवान् शिव के प्रति अगाध प्रेम संसार में अद्वितीय है। उसी को लक्ष्य कर शायद लेखक ने कहा है कि इस नाटक में अन्य चाहे कितनी ही त्रुटियां क्यों न हों किन्तु इसमें जो पवित्र प्रेम का प्रतिपादन किया गया है, वह ही सम्पूर्ण त्रुटियों का पूरक हो सकता है।

शिव पार्वती के पवित्र प्रेम का ही यथा.तथ वर्णन करना कवि का उद्येश्य रहा है ऐसा प्रेम जिसमें आध्यात्मिकता नहीं है, जो केवल शरीर तक ही सीमित हैं, जिसमें केवल इन्द्रियों को ही क्षणिक तृप्ति मिलती है, ऐसे प्रेम से लेखक का तात्पर्य कदापि नहीं। इन सबसे बहुत दूर आगे जहां पर प्रेम केवल एक आध्यात्मिक आनन्द है, उस प्रेम की ओर लेखक ने अपनी दृष्टि दोड़ाई है। वासनामय प्रेम की शिव के त्रिनेत्र ने समाप्ति कर दी थी। उसके बाद जिस प्रेम का आविर्भाव हुआ वही आध्यात्मिक प्रेम था। उसी प्रेम को नाट्य रूप में प्रदर्शित करना नाटककार का उद्येश्य है।

### कथावस्तु

भगवान् शिव द्वारा काम के भस्मीभूत हो जाने पर वसन्त के विलाप से नाटक प्रारम्भ होता है। काम और वसन्त दोनों एक आत्मा, दो शरीर के रूप में थे। अतः काम के भस्म हो जाने पर वसन्त का दुःखी होना अनिवार्य ही था। गन्धर्व चित्रसेन वसन्त से इस दुर्घटना का कारण पूछता है। तब वसन्त दुःखी होकर सम्पूर्ण कथा सुनाता है कि किस प्रकार ताराकासुर अत्यधिक तप के प्रभाव से त्रिलोकपति बन बैठा और इसी लिये सम्पूर्ण मर्यादा का उल्लंघन करने लगा। उसी को नष्ट करने के लिये देवताओं ने ब्रह्मा से प्रार्थना की। ब्रह्मा ने बताया कि उसका वध तो शंकर के पुत्र द्वारा ही सम्भव है किन्तु शंकर तो तब तपस्यालीन थे। इन्द्र ने कामदेव को शंकर की तपस्या भंग करने के

लिये नियत किया। वहीं पर पर्वतराज पुत्री पार्वती भी शिवजी की सेवा करने के लिये आई हुई थीं। वहीं पर कामदेव ने अपना संमोहनास्त्र फैंका, किन्तु शिवजी के त्रिनेत्र की क्रोधाग्नि से काम स्वयं ही भस्मीभूत हो गया। जिस समय वसन्त चित्रसेन को कामदेव के भस्म होने की बात बताता है, उसी समय रति वहां आकर पति की मृत्यु पर विलाप करने लगती है। वसन्त के अनुसार शिव को प्रसन्न किये बिना काम का पुनर्जीवित होना असंभव है। किन्तु रति शिव के समक्ष जाते डरती है। अतः वसन्त की सलाह से यह निश्चय होता है कि पार्वती को यदि रति प्रसन्न कर ले तो अभीष्ट सिद्धि हो सकती है।

द्वितीय अंक– इसमें संसार का चित्रण है। परस्पर अत्यन्त प्रेमभाव रखने वाले प्रेमी.प्रेमिका पुण्डरीक और सरोजिनी काम के भस्म हो जाने पर एक दूसरे के प्रति आकर्षण का अनुभव नहीं करते। पुण्डरीक को सरोजिनी के मधुर.कण्ठ से निःसृत गान में पहले जैसा रस नहीं मिलता। उसके ओंठों की रस माधुरी के प्रति वह पहले जितना लोलुप नहीं रहा। स्वयं सरोजिनी के मन में भी शृंगार के प्रति उत्साह नहीं रहा। इस निरुत्साहता को दूर करने के लिये दोनों गौरी के मन्दिर में जाकर कामाक्षी की पूजा करते हैं। इसके पश्चात् एक दूसरा दृश्य समक्ष आता है। कवि दुर्गादास अपने मनःस्रोत में भाव लहरी का पहले जितना प्रवाह नहीं पाता। कविता करने के लिये आत्मा में जिस रस की आवश्यकता होती है जब वही रस स्रोत सूख गया तो उत्तम कविता असम्भव है। यह सब काम के भस्मीभूत हो जाने का परिणाम है। वह भी कलामयी वाग्देवी की पूजा करता है।

गायक श्यामलादास की स्वर लहरी में पहले जैसे संगीत का प्रादुर्भाव नहीं होता। अतः श्यामलदास भी जगन्माता पार्वती की आराधना में लीन हो जाता है जिससे उसे पुनः पहले जैसे मधुर स्वर की प्राप्ति हो।

अपनी प्रजा के हित में सदैव संलग्न रहने वाला राजराज भी प्रजा पालन में पहले जैसी स्फूर्ति का अनुभव नहीं करता। राजकार्य मानो उसे भार स्वरूप लगता है। स्त्री पुत्र और धन में भी अब उसका चित्त नहीं लगता। आकाशवाणी द्वारा उसे महाराज इन्द्र का आदेश मिलता है कि सम्पूर्ण अव्यवस्था को रोकने के लिये उसे 'धर्मरति' की उपासना करनी चाहिए। अतः वह भी धर्म रति की उपासना में लग जाता है। देवलोक में महेन्द्र और बृहस्पति भी मंगलदेवता को प्रसन्न करने के लिये उसकी आराधना करते हैं।

तृतीय अंक– रति पुनः अपने पति को प्राप्त करने के लिये जगन्माता पार्वती की आराधना में तपस्या करती है। स्वयं पार्वती शिव की आराधना में लीन हैं। सखियों द्वारा दोनों का परस्पर परिचय होता है और रति पार्वती के आश्रम में जाती है। वहां वह अपनी कथा सुनाती है और पार्वती से दीर्घ सुमंगली होने का वर प्राप्त कर लेती है।

चतुर्थ अंक– नैष्ठिक ब्रह्माचरी के वेष में शिव पार्वती की परीक्षा लेने आते हैं। शिव के अमंगल रूप का वर्णन करके स्वयं अपनी ही निन्दा भी करते हैं किन्तु पार्वती का निश्चय अडिग है। अतः वह सखी द्वारा ब्रह्मचारी को चुप हो जाने का आदेश देती हैं और भगवान् शिव की स्तुति करती हैं। ब्रह्मचारी को वह बता देना चाहती हैं कि वह शिव के वास्तविक रूप को जानता ही नहीं। तभी बार बार पार्वती के मुंह से ये शब्द निकलते हैं ––

न त्वं जानासि मे नाथं जगन्मंगलमंगलम्।

अन्त में आकाशवाणी होती है कि स्वयं भगवान् शिव ही तुम्हारे सामने खड़े हैं। पार्वती जी प्रणाम करती हैं और शिवजी उनसे अपनी मनोवांच्छित वस्तु मांगने के लिये कहते हैं।

पार्वती कहती हैं कि आपके प्रसाद के बल से मैंने रति को मंगल भिक्षा दे दी है। कृपया आप उस वर को पूरा कीजिए। शिवजी प्रसन्न वदन तथास्तु कह देते हैं।

पंचम अंक– विवाह के मंगलवेष से सुसज्जित शिव और पार्वती के समक्ष सबसे प्रथम हिमवान् आता है और अपने भाग्य को सराहता है कि मैं धन्य हूं कि इस जगत् के माता पिता मेरे पुत्री और जामाता हैं। इसके पश्चात् काम रति, महेन्द्र, बृहस्पति, राजराज, पुण्डरीक, सरोजिनी, दुर्गादास और श्यामलादास क्रमशः आते हैं और प्रार्थना करने के पश्चात् अपना अभिलषित वर शिव.पार्वती से प्राप्त कर अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। अन्त में रति के मुख से भरत वाक्य कहला कर नाटक की समाप्ति होती है।

## पौराणिकता

जैसा कि कथानक से स्पष्ट है, नाटक पौराणिक विषय को लेकर लिखा गया है। अतः इसमें प्राचीन परम्परा

तृतीय अंक– रति पुनः अपने पति को प्राप्त करने के लिये जगन्माता पार्वती की आराधना में तपस्या करती है। स्वयं पार्वती शिव की आराधना में लीन हैं। सखियों द्वारा दोनों का परस्पर परिचय होता है और रति पार्वती के आश्रम में जाती है। वहां वह अपनी कथा सुनाती है और पार्वती से दीर्घ सुमंगली होने का वर प्राप्त कर लेती है।

चतुर्थ अंक– नैष्ठिक ब्रह्माचरी के वेष में शिव पार्वती की परीक्षा लेने आते हैं। शिव के अमंगल रूप का वर्णन करके स्वयं अपनी ही निन्दा भी करते हैं किन्तु पार्वती का निश्चय अडिग है। अतः वह सखी द्वारा ब्रह्मचारी को चुप हो जाने का आदेश देती हैं और भगवान् शिव की स्तुति करती हैं। ब्रह्मचारी को वह बता देना चाहती हैं कि वह शिव के वास्तविक रूप को जानता ही नहीं। तभी बार बार पार्वती के मुंह से ये शब्द निकलते हैं ––

न त्वं जानासि मे नाथं जगन्मंगलमंगलम्।

अन्त में आकाशवाणी होती है कि स्वयं भगवान् शिव ही तुम्हारे सामने खड़े हैं। पार्वती जी प्रणाम करती हैं और शिवजी उनसे अपनी मनोवांच्छित वस्तु मांगने के लिये कहते हैं।

पार्वती कहती हैं कि आपके प्रसाद के बल से मैंने रति को मंगल भिक्षा दे दी है। कृपया आप उस वर को पूरा कीजिए। शिवजी प्रसन्न वदन तथास्तु कह देते हैं।

पंचम अंक– विवाह के मंगलवेष से सुसज्जित शिव और पार्वती के समक्ष सबसे प्रथम हिमवान् आता है और अपने भाग्य को सराहता है कि मैं धन्य हूं कि इस जगत् के माता पिता मेरे पुत्री और जामाता हैं। इसके पश्चात् काम रति, महेन्द्र, बृहस्पति, राजराज, पुण्डरीक, सरोजिनी, दुर्गादास और श्यामलादास क्रमशः आते हैं और प्रार्थना करने के पश्चात् अपना अभिलषित वर शिव.पार्वती से प्राप्त कर अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। अन्त में रति के मुख से भरत वाक्य कहला कर नाटक की समाप्ति होती है।

## पौराणिकता

जैसा कि कथानक से स्पष्ट है, नाटक पौराणिक विषय को लेकर लिखा गया है। अतः इसमें प्राचीन परम्परा

को अक्षुण्ण रखने का पूर्ण प्रयास किया गया है। नाटक के कुछ पात्र तो देवकुल के हैं और कुछ लौकिक जगत् के किन्तु प्रधानता देवकुल के पात्रों की है। सांसारिक पात्र तो देवलोक में हुई दुर्घटना के परिणाम के द्योतक हैं। शिव की आराधना. प्रधान विषय होने पर भी इसमें आद्याशक्ति पार्वती, धर्म, रति इत्यादि की उपासना विषयक बहुत से श्लोक हैं। यदि दूसरे दृष्टिकोण से देखा जाय तो यह नाटक पौराणिक होने के साथ ही साथ भक्ति विषयक भी है। नाटककार ने यह भी सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि बिना तपस्या और भक्ति के कोई भी महान कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता।

## शैली

नाटककार ने पौराणिक विषय चुना है। फिर भी उसमें एक नवीनता ला दी है। केवल नवीनता ही नहीं वरन सम्पूर्ण गुणों से भी उसे विभूषित कर दिया है। केवल नवीनता हो तो भाषा.गौरव की इच्छा करने वाले उसे वक्र दृष्टि से देखेंगे। तभी नाटककार स्वयं ही शंका करता है–

नवीनं नाटकं काव्यं भाषागौरवमिच्छता।
लक्ष्यते क्रूरया दृष्ट्या रसिकेन सदैव हि।

भाषा के गौरव को चाहने वाला रसिक सदैव नये नाटक और काव्य को क्रूर दृष्टि से देखता है ( अर्थात् उसकी कठिन परीक्षा लेता है )

किन्तु इस शंका का समाधान कितना सुन्दर है –
यदि सन्ति गुणाः काव्ये रज्यन्ति रसिकमनांसि तत्रैव।
सुन्दरसुगन्धि कुसुमे रतिरनिवार्या द्विरेफाणाम्।

यदि काव्य में गुण हों, रसिकों का मन उसमें आनन्द अनुभव करता है। सुन्दर और सुगन्धित फूल में भौंरों की आसक्ति अनिवार्य ही है।

उपरिलिखित श्लोक में भाव सौन्दर्य के साथ साथ उपमा का सौन्दर्य देखने योग्य है।

# रथरज्जुः — अनुवादक प्रो० विमलकृष्ण मोतीलाल

## ( रवीन्द्रनाथ टैगोर कृत — ' कालेर यात्रा ' बंगला नाटक का संस्कृत अनुवाद )

कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ने 1923 में एक छोटा सा नाटक लिखा था, जिसका नाम था, ' रथ यात्रा ' अर्थात् ' रथ का मेला ' इसका भावार्थ स्वयं ही स्पष्ट करते हुए श्री रवीन्द्रनाथ ने लिखा था कि रथ के मेले को देखने के लिये आये हुए दर्शकों ने देखा कि महाकाल का रथ बिलकुल निश्चल खड़ा है। रथ का निश्चल खड़ा होना मानो मनुष्य जाति के लिये एक महान् आपत्ति का सूचक है। एक मनुष्य के साथ दूसरे का सम्बन्ध तथा एक युग का दूसरे युग के साथ सम्बन्ध उसी महाकाल की रथ की रज्जु से ही द्योतित होता है, जिससे रथ खींचा जाता है। रज्जु में जो गांठें पड़ी हुई हैं, वे मानो मानव जाति में परस्पर सच्चे और समानता के व्यवहार में बाधा पहुंचाती हैं। क्योंकि मनुष्यों का व्यवहार बहुत अधिक विषमता और झूठ पर आधारित हो गया इसलिए महाकाल का रथ चलने में असमर्थ हो गया। विषमता और झूठ का इतना बोध हो गया कि रथ की रज्जु भूमि में बड़े अजगर के समान पड़ी रही कोई भी उन्हें हिलाने तक को समर्थ न हो सका। समाज को जो वर्ग सबसे अधिक अपमानित समझा जाता है और समाज के उच्चतम अधिकारों से जिस वर्ग को वंचित रखा जाता है, उसी वर्ग को स्वयं महाकाल अपना रथ खींचने के लिये आह्वान करते हैं। इस रूपक के द्वारा मानो कवि यह बताना चाहता है कि जब निम्नवर्ग के मनुष्यों के साथ समान व्यवहार किया जायेगा, जब उन्हें सम्पूर्ण अधिकार दिये जायेंगे तभी समय रूपी रथ चलेगाा, अन्यथा निश्चल हो कर समाज को सम्पूर्ण आपत्तियों से ग्रस्त करेगा।

1923 में लिखे गये ' रथ यात्रा ' नाटक को 1932 में लेखक ने ' कालेर यात्रा ' नाम से पुनः लिखा, उसी कालेर यात्रा का अनुवाद श्री विमल कृष्ण मोतीलाल ने प्रस्तुत किया है। संस्कृत साहित्य परिषद् के द्वारा कलकत्ते में इसका सफल अभिनय भी हो चुका है। ~~प्रो० विमल कृष्ण का टैगोर के बंगला नाटक को संस्कृत पाठकों के लिये प्रस्तुत करना संस्कृत साहित्य में प्रथम प्रयास है।~~ प्रो० विमल कृष्ण ने अपने संस्कृत रूपान्तर का नाम रखा है ' रथरज्जुः ' । रथरज्जुः का कथानक इस प्रकार है —

रथ यात्रा का उत्सव देखने के लिये बहुत सी स्त्रियां एकत्र हुई हैं किन्तु अशुभ लक्षणों को देख कर परस्पर वार्तालाप करती हैं कि आज इतनी देर हो गई है फिर भी रथ दृष्टिगोचर क्यों नहीं होता। उत्सव में पूजा आदि करने वाला पुरोहित भी उदास सा दृष्टिगोचर होता है, महाकाल का सेवक भी वैसी ही मुद्रा में है। एक सन्यासी यह घोषणा करता है कि रथ निश्चल खड़ा है। यह मानो इस बात की घोषणा करता है कि युद्ध होगा, आग जलेगी, महामारी फैलेगी और पृथ्वी बंजर हो जायगी। इस अशुभ वाणी को सुन कर स्त्रियां बहुत डर जाती हैं। तब सन्यासी उन्हें बताता है कि ऐसी अवस्था इसलिए हो रही है क्योंकि धनियों के धन में सार नहीं रहा। पृथ्वी में उतनी शक्ति नहीं रही कि वह शस्य से कृषकों के घर भर दे। अन्त में सन्यासी यह कह कर चला जाता है कि रथ के रज्जु रथ के चलने पर तो मुक्ति का कारण बनते हैं किन्तु रथ जब खड़ा हो जाता है तब वे ही बन्धन स्वरूप बन जाते हैं। सन्यासी के चले जाने के पश्चात् कुछ नागरिक परस्पर वार्तालाप करते हैं कि पुरोहित के मन्त्र जपने पर भी रथ में स्पन्दन नहीं होता, रथ की भारी — भारी रज्जुओं को देख कर सभी भयभीत होते हैं, वे सोचते हैं कि पृथ्वी में पापात्मा अधिक हैं इसलिए रथ गतिहीन हो गया है यदि कोई पवित्रात्मा आ कर रज्जु को खींचे तो रथ अवश्य चल पड़े। स्त्रियां अपनी-अपनी पूजा का सम्भार लाती हैं और रज्जु देवता को तरह तरह की पूजा से प्रसन्न करने की चेष्टा करती हैं लेकिन अपने प्रयत्न में सफल नहीं हो पातीं। स्त्रियों की पूजा भी सफल नहीं होती इसके पश्चात् बड़े — बड़े योद्धा सैनिक रज्जु को खींचने का प्रयत्न करते हैं किन्तु आश्चर्य की बात कि ~~इतने बड़े — बड़े महारथी भी~~

सफल नहीं हो पाते। सैनिकों को एक नागरिक बताता है कि हम लोगों से महाकाल की अवज्ञा हो गई है इसीलिए वह निश्चल पड़ा है। त्रेतायुग में भी एक बार एक शूद्र ब्राह्मण जैसा कर्म करने लगा था अर्थात् तपस्या द्वारा अपना शूद्रत्व मिटा कर ब्राह्मण बनना चाहता था, उस समय भी महाकाल का रथ निश्चल हो गया था, फिर रामचन्द्र ने उसका शीर्ष काट कर उस पाप का निवारण किया था, तभी रथ चला था। आजकल भी शूद्र सभी कार्य क्षत्रियों और ब्राह्मणों जैसा करने लग गये हैं, इसीलिए शायद महाकाल अपमानित हो गया है। इतने में ही व्यक्ति आ कर सूचना देता है कि राजा ने नगर के सभी धनिकों को बुलाया है, शायद धन के बल से बलशाली हुए श्रेष्ठि वर ही रथ की रज्जु खींचने में समर्थ हो सकें। धनिक आकर रज्जु को खींचने का प्रयास करते हैं, सैनिक और धनिकों में अपनी अपनी श्रेष्ठता के लिये वाग्युद्ध भी होता है किन्तु दुर्भाग्य से धनिक भी रथ खींचने में असफल रहते हैं। इस पर सैनिक प्रसन्न होते हैं कि यह अच्छा ही हुआ कि धनिक लोग भी रज्जु खींचने में असमर्थ रहे नहीं तो धनिकों की सफलता उनके अपमान का कारण बन जाती। सैनिक और धनिकों को असफल होते देख एक बार पुनः स्त्रियां कहती हैं कि कलियुग में पूजा का अभाव है इसीलिए सब अनर्थ हो रहे हैं, वे फिर पूजा का उपचार करती हैं और रज्जु देवता को अपने आभूषणों से अलंकृत करने का प्रण करती हैं, जिससे वह प्रसन्न होकर चल पड़े, किन्तु सब चेष्टायें व्यर्थ जाती हैं। अन्त में हताश होकर वे अपने – अपने घर को चली जाती हैं। इतने में दूत आ कर मन्त्री को बताता है कि शूद्र लोगों का समूह आ रहा है और कहता है कि रज्जु को चलाने का प्रयत्न वे लोग स्वयं करेंगे। घटनास्थल पर खड़े लोगों को बड़ा आश्चर्य होता है कि शूद्र लोग रथ का संचालन का कार्य कैसे करेंगे। वे सभी इस बात का विरोध करते हैं। जब शूद्र बताते हैं कि महाकाल ने स्वयं उन्हें आदेश दिया है कि वे रज्जु स्पर्श करके रथ संचालन करें तो सभी लोग चुप हो जाते हैं। सबसे अधिक आश्चर्य तो सभी लोगों को उस समय होता है जब शूद्रों के हाथ लगाने मात्र से रथ स्वयं ही चलने लगता है। पुरोहित, सैनिक और धनिक जब रथ में गति देखते हैं तो असमंजस में पड़ जाते हैं कि संग्राम करना चाहिए अथवा शूद्रों के साथ मिल कर रथ को और आगे बढ़ाना चाहिये। इसका मार्ग स्वयं मन्त्री करते हैं क्योंकि वे स्वयं भी शूद्रों के साथ रज्जु संचालन में प्रवृत्त हो जाते हैं, उन्हें महाकाल की आज्ञा का रहस्य मालूम हो जाता है कि यह चाहते हैं कि संसार में ऊंच – नीच कुछ भी नहीं है, सब समान हैं। पुरोहित आदि अभी भी किंकर्तव्यविमूढ़ होकर खड़े हैं, इतने में कवि महाशय आते हैं सभी लोग उनसे पूछते हैं कि आगे सदैव रथ का संचालन पुरोहित के मन्त्र पढ़ने से होता था अब बिलकुल विपरीत कार्य कैसे हो गया, कवि उत्तर देता है कि इन सभी लोगों को अभिमान हो गया था यह ऊपर ही ऊपर देखते थे, इनके चक्षु नीचे की ओर नहीं देखते थे जो बन्धन सभी प्राणियों को परस्पर बांधता है, इन्होंने उसी की उपेक्षा की थी इसी का फल है कि इनके संकेतानुसार रथ नहीं चला। सैनिक के पूछने पर कि कवि क्या करेगा, वह उत्तर देता है कि जो रथ चलाते हैं उनके लिये लय और ताल से युक्त गीतों का सृजन करूंगा जिससे उनकी गति में व्याघात न हो। इसके पश्चात् भरत वाक्य के रूप में कवि कहता है कि जो शूद्र सदियों से अपमानित होते आये हैं वे भी उन्नत मस्तक हो कर सम्पूर्ण समाज के साथ उचित सम्बन्ध रखें जिससे रथ अजस्र गति से चलता रहे।

प्रस्तुत नाटक कथानक की दृष्टि से भी और चरित्र – चित्रण की दृष्टि से भी भावात्मक ही कहा जायगा। समय का रथ जो कि सदैव अदृश्य है इस नाटक में मूर्त रथ के रूप में प्रस्तुत किया गया है, समय का चलना और रुकना भी अमूर्त है किन्तु यहां रथ के रूप में उसे निश्चल और बाद में गतिशील दिखा कर उसे भी मूर्त स्वरूप प्रदान किया गया है। ब्राह्मणों का पुरोहित, क्षत्रियों का सैनिक, वणिकों का धनिक श्रेष्ठि और शूद्रों का वृषलों ने प्रतिनिधित्व किया है। उनमें अपने व्यक्तिगत गुण न होकर जातीय गुण हैं। पुरोहित में ब्राह्मणों जैसा अभिमान है, सैनिक में क्षत्रियों जैसी युद्ध करने की प्रवृत्ति है, धनिक श्रेष्ठि में धन का मद है और शूद्रों में सदियों से अपमान सह कर ऊंचे उठने की इच्छा है। प्रथम तीन वर्ण, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य परस्पर वैमनस्य में ग्रस्त हैं। प्रत्येक स्वयं को अन्य

दोनों से बड़ा समझता है इसीलिए एक दूसरे को तिरस्कार की दृष्टि से देखते हैं। उधर शूद्र इन तीनों द्वारा अपमानित हैं, इसलिए वह इन तीनों से ऊपर उठ कर अपना अस्तित्व जताना चाहता है। एक दूसरे दृष्टिकोण से देखा जाय तो नाटककार समाजवादी धारणा को बद्धमूल कर देना चाहता है। उसके मत में जहां असमानता होगी वहीं दुःख होगा। समाज तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक उसमें घोर विषमता है। जब तक एक मनुष्य दूसरे को मनुष्य न समझ कर अपने कार्य का साधन रूप समझता है। समाज को उन्नति की सीढ़ी तभी चढ़ सकता है जब मनुष्य मनुष्य में समानता हो, धन और मानवीय अधिकार दोनों दृष्टिकोणों से ।

## भाषा और शैली ——

प्रस्तुत ग्रन्थ रवीन्द्रनाथ की ' कालेर यात्रा ' नामक कृति का अनुवाद होने के कारण कवि की भावगत स्वतन्त्रता नहीं के बराबर थी, वैसे देखा जाय तो भाषा के प्रयोग में भी लेखक को अत्यन्त संयत रहना पड़ा है अन्यथा यह अनुवाद न रह कर एक अन्य ही स्वतन्त्र कृति बन जाता, परन्तु इतना अवश्य कहना पड़ेगा कि लेखक की भाषा में प्रवाह है, जो उन्होंने कहा है वह रवीन्द्रनाथ के कथन के बिलकुल अनुकूल बैठता है। भाषा के साथ साथ मोती लाल जी ने विश्व कवि के भावों के प्रति भी उतना ही न्याय किया है जितना कि मानवशक्ति के अन्दर हो सकता था। अनुवाद कभी कभी ऐसा होता है कि सम्बद्ध भाषा में बिलकुल उन्हीं शब्दों के पर्याय शब्दों का प्रयोग करने पर भी वह भाव नहीं आ पाता जो कि मूल लेखक ने अपनी भाषा में कहने का प्रयत्न किया है। इसलिए यह प्रसन्नता का विषय है कि श्री विमलकृष्ण का संस्कृत भाषा पर अच्छा अधिकार है और उन्होंने विश्वकवि के भावों के साथ पूर्ण न्याय किया है।

विमल कृष्ण जी की भाषा कहीं कहीं पर अत्यन्त प्राँजल और मुहावरों से युक्त हो गई है। उत्सव की वेला में सभी आनन्दित हैं, सभी के मन में उत्साह है , मंगलमयी कामनायें हैं, ऐसे अवसर पर अमंगल बात कोई नहीं सुनना चाहता किन्तु यदि फिर भी अमंगल ही होना हो तो इसमें किसी का वश नहीं चलता इसी बात को लक्ष्य करके सन्यासी कहता है ——

किमु नावलोक्यते —— अद्यसन्ति धनानि धनिकानां, सारस्तस्य तु विलुप्तो जातो गजभुक्तकपित्थस्यैव। शस्यपरिपूर्णे च क्षेत्रे वासः कल्पितउपवासेन। पक्षाधिपतिः स्वयमैष स्वीये भाण्डागारे स्थितः प्रायोपवैशनैन।

क्या देखते नहीं, आज धनिकों के पास धन तो है पर उसका सार हाथी के द्वारा खाये हुए कैथे के फल के समान है। अनाज से भरे खेत में उपवास ने घर कर लिया है। कुबेर ने स्वयं ही अपने भण्डार में अनशत व्रत धारण कर रहे हैं।

- गजमुक्त कपित्थ ' एक ऐसा श्लोकांश है जिसका बंगाल में मुहावरे के रूप में प्रयोग होता है ——

आयाति थदा लक्ष्मी नारिकेल फलाम्बुवत्।
निर्गच्छति यदा लक्ष्मी गजमुक्त कपित्थवत्।।

कहीं कहीं पर उपमा का भी सुन्दर प्रयोग किया है —— गति के अभाव में रथ की रज्जु निश्चल पड़ी है, किन्तु उसकी भयानकता अधिक बढ़ गई है। भूमि पर पड़ी मानो वह युग के अवसान की नाड़ी के समान लगती है।

तृतीय नागरिकः – अमूं रज्जुं प्रति नैत्रं पातयतोऽपि भयमुत्पद्यते।

प्रतिमात्यसौ युगावसानस्य नाड़िकेव ज्वरैणश

त्रिदोषर्जन स्पन्दते तिवेगेनेति।

लेखक की वर्णनात्मक शक्ति बहुत ही स्वभाविकता लिये हुए है। पुरुषों से अधिक स्त्रियां अधिक भीरु होती हैं। पूजा पाठ के प्रति श्रद्धा भी स्त्रियों में ही अधिक होती है। देवी देवताओं की मनौतियां जितनी स्त्रियों में ~~ही अधिक~~ होती हैं उतनी पुरुषों नहीं। इस तथ्य का द्योतन लेखक ने बहुत ही सुन्दर शब्दों में किया है। निश्चल रज्जुओं को स्पन्दन शील बनाने में पुरुष अन्यान्य उपाय ढूंढ़ते हैं किन्तु स्त्रियां अपनी पूजा के सम्भार के द्वारा ही सभी कष्ट दूर करना चाहती हैं, उनका पूजा का प्रकार कितना स्वाभाविक है, सभी स्त्रियां अपनी बुद्धि के अनुसार रज्जु देवता को प्रसन्न करना चाहती हैं, उनकी प्रार्थना और कियाकलाप सुनने और देखने योग्य हैं ––

द्वितीया –– वर्त्तिष्येऽहमपि वर्षत्रयं ते दासी भावेन, दिनस्य त्रिः भोगमुपहरिष्यामि। अरे विनि। आनीतं यदि वीजनं तर्हि वीज्यताम् नाम – अपि न दृश्यते – रौद्रतप्तोऽस्य घनश्यामो देह इति। कलसेंन सिच्यतां तदिकम्। अरे ? अमुष्य सीनस्य कर्द्दमं पि मम ललाटे लिप्यताम्। एषा अस्मदीया खेंदीत्याख्या बाला आनीतवती कृशरान्न भोगम्। आरूढ़ प्रौढ़िया दिवसः, अहो कियद्धा कष्टमनुभूतं प्रभुना। जयति रज्जु भगवान् जयति देव देव रज्जु भगवान् –– नमस्तुभ्यं, जायतां दयार्द्र ते चित्तम्। शिरो मे कुट्टयामि ते पदयोः, जायतां कृपार्द्रं ते मनः वीन्यतामेरे वीज्यतां सर्वगमेव।

दूसरी – मैं तीन बरस तक तेरी दासी बन कर रहूंगी। दिन में तीन बार भोग लगाऊंगी। अरे विनि, यदि पंखा ले आई हो तो हवा करो न। क्या देखती नहीं हो इसका मेघों की तरह का श्यामल देह बहुत अधिक तप चुका है कलसी से गंगा जग उड़ेलो। इस स्थान की चुड़का नी मेरे माथे पर लेप कर दो। यह हमारी खेंदी नाम की बच्ची तिल – चावल की खिचड़ी का भोग ले आयी है। दिन बहुत बढ़ चुका है। अहो प्रभु ने कितना कष्ट पाया। रज्जु भगवान् की जय हो, देवदेव रज्जु भगवान् की जय हो। तुम्हें प्रणाम हो। तुम्हारा चित्त दयार्द हो जाय। मैं तेरे पावों पर सिर रगड़ती हूं। तुम्हारा हृदय दया से द्रवित हो जाय। अरे हवा करो, जोर से हवा करो।

## रतिविजयम् ——— पौराणिक नाटक द्वारा श्री के0 एस0 रामस्वामिशास्त्री

जैसा कि स्वयं लेखक के शब्दों से प्रकट होता है, महाकवि कालिदास रचित कुमार सम्भव में आई हुई रति से उन्हें प्रस्तुत नाटक की रचने की प्रेरणा मिली। नाटक की रचना करने में लेखक ने नाट्य शास्त्र के नियमों का जहां तक सम्भव हो सकता है, पालन किया है। मां पार्वती के प्रति अनन्य भक्ति ही सम्पूर्ण नाटकी की आत्मा है। मां पार्वती का भगवान् शिव के प्रति अगाध प्रेम संसार में अद्वितीय है उसी को लक्ष्य करके शायद लेखक ने कहा है कि इस नाटक में अन्य चाहे कितनी ही त्रुटियां क्यों न हों किन्तु इसमें जो पवित्र प्रेम का प्रतिपादन किया गया है, वह ही सम्पूर्ण त्रुटियों का पूरक हो सकता है।

शिव पार्वती के पवित्र प्रेम का ही यथा – तथ्य वर्णन करना कवि का उद्देश्य भी रहा है। ऐसा प्रेम जिसमें आध्यात्मिकता नहीं है, जो केवल शरीर तक ही सीमित हैं, जिसमें केवल इन्द्रियों को क्षणिक तृप्ति मिलती है, ऐसे प्रेम से लेखक का तात्पर्य कदापि नहीं, इन सबसे दूर बहुत आगे जहां पर प्रेम केवल एक आध्यात्मिक आनन्द है, उस प्रेम की ओर लेखक ने अपनी दृष्टि दोड़ाई है। वासनामय प्रेम की शिव के त्रिनेत्र ने समाप्ति कर दी थी, उसके बाद जिस प्रेम का श्रविर्भाव हुआ वही आध्यात्मिक प्रेम था। उसी प्रेम को नाट्य रूप में प्रदर्शित करना नाटककार का उद्देश्य है।

## रतिविजयम् का कथा सूत्र

भगवान् शिव जी द्वारा काम के भस्मीभूत हो जाने पर वसन्त के विलाप से प्रारम्भ होता है। काम और वसन्त दोनों एक आत्मा, दो शरीर के रूप में थे। अतः काम के भस्म हो जाने पर वसन्त को दुःखी होना अनिवार्य ही था। गन्धर्व चित्रसेन वसन्त से इस दुर्घटना का कारण पूछता है तब वसन्त दुःखी होकर सम्पूर्ण कथा सुनाता है कि किस प्रकार ताराकासुर राक्षस के अत्यधिक तप के प्रभाव से त्रिलोकपति बन बैठा और इसी लिये सम्पूर्ण मर्यादा का उल्लंघन करने लगा। उसी को नष्ट करने के लिये देवताओं ने ब्रह्मा से प्रार्थना की। ब्रह्मा ने बताया कि उसका वध तो शंकर के पुत्र द्वारा ही सम्भव है किन्तु शंकर तो तब तपस्यालीन थे। इन्द्र ने कामदेव को शंकर की तपस्या भंग करने के लिये नियत किया। वहीं पर पर्वतराज पुत्री पार्वती भी शिवजी की सेवा करने के लिये आई हुई थीं। वहीं पर कामदेव ने अपना संमोहनास्त्र फेंका, किन्तु शिवजी के त्रिनेत्र की कोधाग्नि से काम स्वयं ही भस्मीभूत हो गया। जिस समय वसन्त चित्रसेन को कामदेव के भस्म होने की बात बताता है, उसी समय रति वहां आकर पति की मृत्यु

पर विलाप करने लगती है। वसन्त शिव को प्रसन्न किये बिना काम का पुनर्जीवित होना असंभव है। किन्तु रति भगवान् शिव के समक्ष जाते डरती है अतः वसन्त की सलाह से यह निश्चय होता है कि जगन्माता पार्वती को रति प्रसन्न कर ले तो अभीष्ट सिद्धि हो सकती है।

द्वितीय अंक में – इस संसार का चित्रण किया गया है। परस्पर अत्यन्त प्रेमभाव रखने वाले प्रेमी – प्रेमिका पुण्डरीक और सरोजिनी काम के भस्म हो जाने पर एक दूसरे के प्रति आकर्षण का अनुभव नहीं करते। पुण्डरीक को सरोजिनी के मधुर – कण्ठ से निसृत गान में पहले जैसा रस नहीं मिलता, उसके ओंठों की रस माधुरी के प्रति वह पहले जितना लोलुप नहीं रहा। स्वयं सरोजिनी के मन में भी श्रृंगार के प्रति उत्साह नहीं रहा। इस निरुत्साह को दूर करने के लिये दोनों गौरी के मन्दिर में जाकर कामाक्षी की पूजा करते हैं। इसके पश्चात् एक दूसरा दृश्य समक्ष आता है। कवि दुर्गादास अपने मनःस्रोत में भाव लहरी का पहले जितना प्रवाह नहीं पाता, कविता करने के लिये आत्मा में जिस रस की अत्यन्त आवश्यकता होती है जब वही रस स्रोत सूख गया तो उत्तम कविता असम्यक् है। यह सब परिणाम काम के भस्मीभूत हो जाने पर प्रकट होते हैं। वह भी कलामयी वाग्देवी की पूजा करता है।

गायक श्यामलादास की स्वर लहरी में पहले जैसे संगीत प्रादुर्भाव नहीं होता अतः श्यामलदास भी जगन्माता पार्वती की आराधना में लीन हो जाता है जिससे उसे पुनः पहले जैसे मधुर स्वर की प्राप्ति हो।

अपनी प्रजा के हित में सदैव संलग्न रहने वाला राजराज भी प्रजा पालन में पहले जैसी स्फूर्ति का अनुभव नहीं करता। राजकार्य मानो उसे भार स्वरूप लगता है। स्त्री पुत्र और धन में भी अब उसका चित्त नहीं लगता। आकाशवाणी द्वारा उसे महाराज इन्द्र का आदेश मिलता है कि सम्पूर्ण अव्यवस्था को रोकने के लिये उसे ' धर्मरति ' की उपासना करनी चाहिए। अतः वह भी धर्म रति की उपासना में संलग्न होता है। देवलोक में महेन्द्र और बृहस्पति भी मंगलदेवता को प्रसन्न करने के लिये उसकी आराधना करते हैं।

तृतीय अंक में – रति पुनः अपने को प्राप्त करने के लिये जगन्माता पार्वती की आराधना में तपस्या करती है। स्वयं पार्वती जी शिव की आराधना में लीन हैं। सखियों द्वारा दोनों का परस्पर परिचय होता है और रति पार्वती जी के आश्रम में जाती है वहां अपनी कथा सुनाती है और पार्वती जी से दीर्घ सुमंगली होने का वर प्राप्त कर लेती है।

चतुर्थ अंक में – नैष्ठिक ब्रह्मचारि के वेष में शिव पार्वती की परीक्षा लेने आते हैं। शिव के अमंगल रूप का वर्णन करके स्वयं अपनी ही निन्दा भी करते हैं किन्तु पार्वती का निश्चय अडिग है अतः वह सखी द्वारा ब्रह्मचारी को चुप हो जाने का आदेश देती हैं और भगवान् शिव की स्तुति करती हैं। ब्रह्मचारी को वह बता देना चाहती है कि वह शिव जी के वास्तविक रूप को जानता ही नहीं। तभी बार बार पार्वती के मुंह से ये शब्द निकलते हैं —

- न त्वं जानासि मे नाथं जगन्मंगल मंगलम्।

अन्त में आकाशवाणी होती है कि स्वयं भगवान् शिव ही तुम्हारे सामने खड़े हैं। पार्वती जी प्रणाम करती हैं और शिवजी उनसे अपनी मनोवांच्छित वस्तु मांगने के लिये कहते हैं।

पार्वती कहती हैं कि आपके प्रसाद के बल से मैंने रति को मंगल भिक्षा दे दी है, कृपया आप उस वर को पूरा

कीजिए। शिवजी प्रसन्न वदन तथास्तु कह देते हैं।

पंचम अंक में – विवाह के मंगलवेष से सुसज्जित शिव और पार्वती के समक्ष सबसे प्रथम हिमवान आता है और अपने भाग्य को सराहता है कि मैं धन्य हूं कि इस जगत के माता पिता मेरे पुत्री और जामाता हैं। इसके पश्चात् काम रति महेन्द्र, बृहस्पति, राजराज:, पुण्डरीक:, सरोजिनी, दुर्गादास, श्यामलादास कमशः आते हैं और प्रार्थना करने के पश्चात् अपना अभिलषित वर शिव-पार्वती से प्राप्त कर अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। अन्त में रति के मुख से भरत वाक्यम् कहला कर नाटक की समाप्ति होती है।

## पौराणिकता

जैसा कि कथानक से ही स्पष्ट है, नाटक पौराणिक विषय को लेकर लिखा गया है अतः इसमें प्राचीन परम्परा को अक्षुण्ण रखने का पूर्ण प्रयास किया गया है। नाटक के कुछ पात्र तो देवकुल के हैं और कुछ लौकिक जगत के किन्तु प्रधानता देवकुल के पात्रों की है। सांसारिक पात्र तो देवलोक में हुई दुर्घटना के परिणाम के द्योतक हैं। शिवजी की आराधना –– प्रधान विषय होने पर भी इसमें आद्याशक्ति पार्वती, धर्म, रति इत्यादि की उपासना विषयक बहुत से श्लोक हैं। यदि दूसरे दृष्टिकोण से देखा जाय तो यह नाटक पौराणिक होने के साथ ही साथ भक्ति विषयक भी है। नाटककार ने यह भी सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि बिना तपस्या और भक्ति के कुछ कोई भी महान कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता।

## शैली

नाटककार ने पौराणिक विषय चुना है। इसमें कोई सन्देह नहीं किन्तु उसमें भी एक नवीनता ला दी है। केवल नवीनता ही नहीं वरन सम्पूर्ण गुणों से भी विभूषित कर दिया है। केवल नवीनता हो तो भाषा – गौरव की इच्छा करने वाले उसे वक्र दृष्टि से देखेंगे। तभी नाटककार स्वयं ही शंका करता है ––

नवीनं नाटकं काव्यं भाषागौरवमिच्छता।
लक्ष्यते कूरयदृष्ट्या रसिकेन सदैवहि।

भाषा के गौरव को चाहने वाला रसिक सदैव नये नाटक और काव्य को कर दृष्टि से देखता है ( अर्थात् उसकी कठिन परीक्षा लेता है )

किन्तु इस शंका का समाधान कितना सुन्दर है –

यदि सन्ति गुणाः काव्ये रज्यन्तिरसिकमनांसि तत्रैव |
सुन्दर सुगन्धि कुसुमे रतिरनिवार्या द्विरेफाणाम्।

यदि काव्य में गुण हों, रसिकों के मन में आनन्द अनुभव करते हैं। सुन्दर और सुगन्धित फूल में भौंरों की

कीजिए। शिवजी प्रसन्न वदन तथास्तु कह देते हैं।

पंचम अंक में – विवाह के मंगलवेष से सुसज्जित शिव और पार्वती के समक्ष सबसे प्रथम हिमवान आता है और अपने भाग्य को सराहता है कि मैं धन्य हूं कि इस जगत के माता पिता मेरे पुत्री और जामाता हैं। इसके पश्चात् काम रति महेन्द्र, बृहस्पति, राजराज:, पुण्डरीक:, सरोजिनी, दुर्गादास, श्यामलादास क्रमशः आते हैं और प्रार्थना करने के पश्चात् अपना अभिलषित वर शिव-पार्वती से प्राप्त कर अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। अन्त में रति के मुख से भरत वाक्यम् कहला कर नाटक की समाप्ति होती है।

## पौराणिकता

जैसा कि कथानक से ही स्पष्ट है, नाटक पौराणिक विषय को लेकर लिखा गया है अतः इसमें प्राचीन परम्परा को अक्षुण्ण रखने का पूर्ण प्रयास किया गया है। नाटक के कुछ पात्र तो देवकुल हैं और कुछ लौकिक जगत के किन्तु प्रधानता देवकुल के पात्रों की है। सांसारिक पात्र तो देवलोक में हुई दुर्घटना के परिणाम के द्योतक हैं। शिवजी की आराधना –– प्रधान विषय होने पर भी इसमें आद्याशक्ति पार्वती, धर्म, रति इत्यादि की उपासना विषयक बहुत से श्लोक हैं। यदि दूसरे दृष्टिकोण से देखा जाय तो यह नाटक पौराणिक होने के साथ ही साथ भक्ति विषयक भी है। नाटककार ने यह भी सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि बिना तपस्या और भक्ति के कुछ कोई भी महान कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता।

## शैली

नाटककार ने पौराणिक विषय चुना है। इसमें कोई सन्देह नहीं किन्तु उसमें भी एक नवीनता ला दी है। केवल नवीनता ही नहीं वरन सम्पूर्ण गुणों से भी विभूषित कर दिया है। केवल नवीनता हो तो भाषा – गौरव की इच्छा करने वाले उसे वक्र दृष्टि से देखेंगे। तभी नाटककार स्वयं ही शंका करता है ––

नवीनं नाटकं काव्यं भाषागौरवमिच्छता।
लक्ष्यते कूरयदृष्ट्या रसिकेन सदैवहि।

भाषा के गौरव को चाहने वाला रसिक सदैव नये नाटक और काव्य को कर दृष्टि से देखता है ( अर्थात् उसकी कठिन परीक्षा लेता है )

किन्तु इस शंका का समाधान कितना सुन्दर है –

यदि सन्ति गुणाः काव्ये रज्यन्तिरसिकमनांसि तत्रैव |
सुन्दर सुगन्धि कुसुमे रतिरनिवार्या द्विरेफाणाम्।

यदि काव्य में गुण हों, रसिकों के मन में आनन्द अनुभव करते हैं। सुन्दर और सुगन्धित फूल में भौंरों की

आसक्ति अनिवार्य ही है।

उपरिलिखित श्लोक में भाव सौन्दर्य के साथ साथ उपमा का सौन्दर्य देखने योग्य है।

# म्यांमार (बर्मा) यात्रा

भारतीय सांस्कृतिक परिषद् के तत्त्वावधान में "दक्षिणपूर्व एशिया में रामकथा" पर एक प्रामाणिक ग्रन्थ की रचना का काम मैंने अपने हाथ में लिया। उसके लिये आवश्यक सामग्री संकलन हेतु दक्षिणपूर्व एशिया में जो जो देश आते हैं उनकी यात्रा करना आवश्यक था। इसी प्रसंग से मेरा म्यांमार (बर्मा) भी जाना हुआ।

बैंकाक में मैं जब कार्यरत था तो मेरा वहां स्याम सोसाइटी की शोधपत्रिका "जर्नल ऑफ़ दि स्याम सोसाइटी " के सम्पादक श्री जेम्स डि क्रोको से सम्पर्क हुआ। एक दिन बातचीत में उन्होंने बताया कि बैंकाक में एक ऐसे विद्वान् हैं जो भगवान् बुद्ध के पावों में महापुरुष चिहों के अध्ययन में वर्षों से लगे हैं। इसी तरह उन्होंने उन्हें मेरे बारे में बताया। एक दिन उनके माध्यम से हम मिले। यह प्रथम परिचय समय पाकर मित्रता में परिणत हो गया जो समय के साथ-साथ घनिष्टतर होती गई।

उन विद्वान् का नाम वाल्देमार साइलर था। मूलतः वे अमेरिका के थे पर बाद में थाईलैण्ड में बस गये थे। जीविका के लिये उन्होंने अध्यापक वृत्ति अपनाई थी। बैंकाक के इन्टरनैशनल स्कूल में वे अंग्रेज़ी के अध्यापक थे। पुस्तकें खरीदने का उनका शौक था। उनके घर में बहुमूल्य पुस्तकों का अच्छा-खासा संग्रह था। विवाह का उन्होंने कभी सोचा भी नहीं। बुद्ध पाद का जहां पता चलता था वहीं वे पहुंच जाते थे और उसका चित्र ले लेते थे। उनके पास ढेरों इस प्रकार के चित्र थे। उनके रेखाचित्र बनवाकर वे सूक्ष्मतया उनका अध्ययन करते थे। रेखाचित्र बनाने में उनके दो-तीन युवक सहायता करते थे जिन्हें वे अपना छात्र कहते थे। वे सभी म्यांमार अथवा बर्मा के थे। उनके कारण वे अक्सर बर्मा जाते थे। उनका (श्री साइलर का) बर्मा जाना-आना लगा रहता था। उनकी उस देश के बारे में बहुत जानकारी थी। वहां के अनेक लोगों से उनका सम्पर्क था।

जब मैंने उनसे अपने बर्मा जाने के विचार को व्यक्त किया तो उन्होंने कहा कि वे मेरे लिये सारी व्यवस्था वहां करवा देंगे और मेरी समस्त यात्रा के दौरान मेरे साथ रहेंगे।

भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद् के कार्यक्रम के अनुसार लगभग एक सप्ताह का समय मुझे म्यांमार अथवा बर्मा में बिताना था। इस यात्रा की तिथियां थीं वर्ष 2000 के दिसम्बर 16-24।

यद्यपि यह यात्रा भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद् के माध्यम से हो रही थी अतः उससे सम्बद्ध सारी व्यवस्था बर्मा स्थित भारतीय दूतावास के माध्यम से होनी चाहिये थी पर चूंकि मैं श्री साइलर से बात कर चुका था और उनके सहयोग को महत्त्व दे रहा था इसलिये उन्हीं को ही व्यवस्था करने का दायित्व मैंने दिया। भारतीय सांस्कृति सम्बन्ध परिषद्

आर्थिक व्यवधान तक सीमित होकर ही रह गया। यंगून, बगान तथा मडले में होटल की व्यवस्था तथा बगान एवं मंडल की यात्रा और मंडल से खुतूत ने नाम के गांव तक जहां के पगोडा में (जहां राम कथा से सम्बद्ध) 347 कम उभरी हुई (खुदाई वाले दृश्य उत्कीर्ण हैं की व्यवस्था श्री साइलर ने की। यंगून में मेरे और मेरी धर्मपत्नी के रहने की व्यवस्था श्री साइलर ने रेलवे स्टेशन के समीपवर्ती एशिया प्लाज़ा नाम के एक बड़े होटल में की जहां कमरे का प्रतिदिन का किराया 25 अमरीकी डालर था (स्वयं भी वे उसी होटल में ठहरे। जिस दिन हमने यंगून पहुंचना था उससे एक दिन पहले वे वहां पहुंच गये थे। उन्होंने एयरपोर्ट पर हमारी आगवानी की।

मेरी धर्मपत्नी डा0 उषा सत्यव्रत म्यांमार की इस यात्रा में मेरे साथ थीं। मैं उनके साथ 16 दिसम्बर, 1999 को थाई एयरवेज़ विमान सेवा से बैंकाक से प्रातः 8:40 पर चल कर 9:25 पर प्रातः यंगून पहुंचा। वहां मैंने एक विचित्र व्यवस्था देखी। प्रत्येक विदेशी यात्री को पांच सौ अमरीकी डालरों के 'कियत्' उसका 'खियत्' रूप में उच्चारण मेरे सुनने में आया, स्थानीय मुद्रा में परिवर्तित कराने पर ही पासपोर्ट पर प्रवेशानुमति की मोहर लगाई जाती थी। मेरे बार-बार यह कहने पर भी कि हम भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद् की ओर से आये हैं जोकि विदेश मंत्रालय का ही एक विभाग है, अधिकारियों ने कहा कि यह मुद्रा-विनिमय तो कराना ही पड़ेगा। इसमें किसी के लिये कोई राहत नहीं है। भारतीय दूतावास का एक व्यक्ति जो हमें लेने आया हुआ था, उसने भी कहा कि आप मुद्रा परिवर्तन करवा ही लीजिये, यहां ऐसी ही व्यवस्था है। यंगून आते समय हवाई जहाज़ में मेरे सहयात्रियों ने मुझे बता दिया था कि वापिसी के समय स्थानीय मुद्रा के डालरों के रूप में पुनः परिवर्तन की कोई सुविधा नहीं है। यदि स्थानीय मुद्रा व्यय नहीं होती है तो वह बेकार ही जायगी (वह डालरों में पुनः परिवर्तित नहीं हो पायगी और किसी अन्य देश में उस का उपयोग भी नहीं हो पायगा) यह सोच मैं बार-बार अपने सरकारी प्रतिनिधि होने की बात कर इस प्रक्रिया से बचने का प्रयास करता रहा पर कोई उपाय न देख मुझे और धर्मपत्नी को मुद्राविनिमय कराना ही पड़ा।

स्थानीय मुद्रा का उपयोग, जैसा कि बाद में मैंने अनुभव किया, केवल भोजन या स्थानीय चीज़ों के खरीदने के लिये ही हो सकता है। शेष सब प्रकार का व्यय– होटल के बिल, अद्भुतालयों, संग्रहालयों के टिकट, म्यांमार में एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के टिकट– डालरों में ही करना होता था। मुझे यह व्यवस्था बहुत अजीब लगी।

म्यांमार ने सैनिक जुंडली के शासन के चलते अपने को वैश्विक व्यवस्था से दूर कर लिया था। आर्थिक स्थिति विषम हो गई थी। विदेशी मुद्रा की भारी कमी हो गई थी। किसी न किसी रूप में तो उसकी भरपाई करनी ही

थी। उसी के लिये यह उपाय निकाला गया था। मुद्रा विनिमय आदि की प्रक्रिया पूरी कर और पासपोर्ट पर मोहर लगवा कर जब हम एयरपोर्ट से बाहर आये तो श्री साइलर हमें मिले। उन्होंने हमें हमारे होटल में पहुंचा दिया। मध्याह्न का समय हो चला था। भोजन करने का मन हुआ। मालूम करने पर पता चला कि वहां से कुछ दूरी पर– इतनी दूरी पर कि वहां से पैदल चल कर पहुंचना सम्भव था– खज़ाना नाम का एक भारतीय रेस्तरां है। वहां हमने भोजन किया और फिर विश्राम के लिये होटल चले आये।

अपराह्ण के चार बजे– राजदूत से मिलने के लिये वही समय हमें उस दूतावास के व्यक्ति ने बताया था जो हमें एयरपोर्ट पर मिला था– हम दूतावास में गये। वहां राजदूत श्री शामशरण से भेंट हुई। मैंने उनसे म्यांमार की रामकथा विषयक सामग्री के संकलन हेतु अपने आगमन की चर्चा की। उनकी इच्छा थी कि जितना शीघ्र हो सके– दो एक दिन के भीतर ही भीतर– अपना कार्य समाप्त कर मैं वहां से चल दूं। वे नहीं चाहते थे कि मैं अधिक दिन वहां रहूं। शायद उन्हें वहां की स्थिति का आभास रहा होगा जिस कारण बाहर से आने वाले किसी भी व्यक्ति को वहां सन्देह की दृष्टि से देखा जाता था। वे शायद किसी भी सम्भावित अप्रिय स्थिति से बचाना चाहते होंगे। पर मुझे अनेक स्थानों पर जाना था। मेरे कार्य में समय लगना ही था। मैं उनकी बात मानने की स्थिति में नहीं था। उन्होंने कहा कि आप प्राइवेट विज़िट पर हैं इसलिये जल्दी-जल्दी अपना काम निबटाइये और जाइये। तब मैंने कहा भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद् के माध्यम से की जा रही यात्रा प्राइवेट विज़िट। इस पर राजदूत कुछ झेंप गये। उन्होंने कहा आप अपने कार्यक्रम के अनुसार ही चलियेगा। अगले दिन यहां के बुद्धिजीवियों से आप की मीटिंग करा देते हैं। उन्होंने दूतावास के माध्यम से बुद्धिजीवियों को सूचना भिजवा दी। दूसरे दिन पूर्वाह्ण में 11:00 बजे मेरी उनके साथ भेंट तय कर दी गई।

दो घण्टे के लगभग दूतावास में बिता कर हम होटल लौट आये। कुछ समय आस पास की गलियों और बाज़ारों के चक्कर लगाते रहे और फिर उसी रेस्तरां में भोजन कर होटल में वापिस आ शयन की ओर उन्मुख हो गये। (जहां दोपहर में हमने किया था,)

दूसरे दिन, 17-12-1999 को जब हम उपाहारगृह में अल्पाहार (ब्रेक फास्ट) के लिये गये तो कुछ विचित्र सा लगा। एक छोटी प्यालीर में ज़रा सा, नाम भर का मक्खन था, जैम भी उतनी ही मात्रा में था। टोस्ट की गिनती के ही थे। इतना बड़ा होटल और आहार की यह दशा। हमें लगा कि कहीं कुछ कमी है, कम से कम काम चला लेने की प्रवृत्ति है। कमरे में वापिस आने पर बिस्तर ठीक करने के लिये आये हुए बालक-बालिका ने हमें बता दिया था कि वे

विश्वविद्यालय के छात्र थे। कालेज और विश्वविद्यालय बरसों से बन्द पड़े हैं। पढ़ाई हो नहीं रही है। कोई काम धन्धा भी नहीं है। इसलिये विद्यार्थी जिस तरह का काम भी मिल जाय उस तरह का काम करने लगे हैं। कुछ विद्यार्थी ड्रग का सेवन करने लगे हैं। देश एक विचित्र स्थिति में से गुज़र रहा है। सैनिक शासन का दबदबा इतना है कि कोई कुछ बोल नहीं सकता। सभी लोग सहमे हुए हैं, सभी के चेहरों पर उदासी है।

11:00 बजे बुद्धिजीवियों के साथ मेरी मीटिंग प्रारम्भ होती है जो लगभग दो घण्टे चलती है। इसके बाद वहीं पर ही भोजन की व्यवस्था है। बुद्धिजीवियों से म्यांमार की रामायण के विषय में सघन चर्चा चलती है। अनेक प्रकार की जानकारी उनसे मिलती है। अनेक लेखों के अनुमुद्रण भी उनसे प्राप्त होते हैं।

- रामायण के लिये म्यांमार में दो नाम हैं— राम थग्यन और रामवत्थु।

18—12—1999

बौद्धिक कार्यक्रम के साथ तत्तस्थानों के परिभ्रमण की भी मेरी इच्छा रही है। इसी इच्छा को पूर्ण करने के लिये मैंने धर्मपत्नी के साथ यंगून के कतिपय दर्शनीय स्थानों को देखने का कार्यक्रम बनाया। सबसे प्रमुख दर्शनीय स्थान वहां का है स्वर्ण पगोडा जिसे म्यांमार की भाषा में 'श्वेदगोन' कहा जाता है। (अंग्रेज़ी में उसे गोल्डन पगोडा के नाम से जाना जाता है)। सुनहरी रंग होने के कारण उसे यह नाम दिया गया है)। एक बहुत बड़े परिसर में स्थित है यह। बहुत विशाल आकार है इसकी। इसकी एक विशेषता यह है कि यह उसी की तरह के आकार के छोटे-छोटे पगोडाओं से घिरा है। दूर से देखने पर इसकी आभा देखते ही बनती है। यंगून शहर का प्रतीक बन गया हे। इसमें प्रवेश के लिये टिकट लेना पड़ता है। जो विदेशियों के लिये 10 डालर है। शहर का एक अन्य स्थान जो विशेषकर भारतीयों के लिये बहुत महत्व का है बहादुरशाह ज़फर का मकबरा है। नगर के मध्य भाग में स्थित है। बहादुरशाह जफ़र भारत का अन्तिम मुगल बादशाह था। 1857 की क्रान्ति में उसने स्वतन्त्रता सेनानियों का साथ दिया था। स्वतन्त्रता संग्राम के असफल हो जाने पर ब्रिटिश शासन ने देश निकाले का दण्ड दिया था और उसका अन्तिम समय बर्मा (तब म्यांमार का यही नाम था) में बीता था। वहीं उसका 7 नवम्बर, 1862 में प्राणान्त हुआ था। वहीं उसे दफनाया गया था। उसकी बेगम ज़ीनतमहल की मृत्यु भी यंगून में ही 17 जुलाई, 1886 को हुई थी। उसकी कब्र भी बादशाह की कब्र के पास ही है। हम बादशाह और बेगम के मकबरों को देखने गये। उनके बाहर कुछ मुस्लिम खादिम (सेवक) बैठे थे। उन्होंने हमारा स्वागत किया। सम्राट के बारे में हमें जानकारी दी। वह उर्दू का कवि था और अपने रंगीले स्वभाव के कारण रंगीला नाम से जाना जाता है। मुग़ल सल्तनत जिसकी कभी भारत के कोनेकोने में तूती बोलती थी उसके समय तक आते आते लाल किले की चार दीवारी तक ही सिमट गई थी। उसका हुक्म

केवल वहीं तक चलता था। अंग्रेज़ी हुकूमत ने अपने पांव जमा लिये थे। इसे लक्ष्य कर ही उस कवि ने कहा था—

बस ज़फ़र अब हो चुकी तलवारे हिन्दुस्तान की

खैर मांगो जान की।

उस मुग़ल बादशाह का ऐसा दर्दनाक अन्त देख कर मन भर आया था हमारा। हमें लगा था कि हमारा कोई सगा-सम्बन्धी उस कब्र में दबा पड़ा था— अंग्रेज़ हुकूमत के अत्याचार का प्रतीक बन कर। इसके पश्चात् अपने पूर्व-परिचित भारतीय रेस्तरां खज़ाना में भोज किया और गलियों-बाज़ारों का चक्कर लगाने निकल पड़े। एक बाज़ार में हमने देखा कि जगह-जगह पुरानी पुस्तकों के ढ़ेर लगे हैं। सस्ते दामों में पुस्तकें बिक रही हैं। सभी भाषाओं की पुस्तकें हैं उनमें। अधिकांश— यह स्वाभाविक ही था— म्यांमार की भाषा में हैं पर कुछ अंग्रेज़ी में भी हैं। हमने अंग्रेज़ी की कुछ पुस्तकें खरीदीं जिनमें विशेष उल्लेखनीय है बर्मीज़ पपेट आर्ट; हिस्ट्री ऑफ़ बर्मीज़ लिटरेचर, बर्मीज़ आर्ट थ्रू दि एज़िस। कुछ बर्मी कलाकृतियां भी हमें दिखाई दीं जो हमें विशेष आकर्षक नहीं लगीं। कुछ कपड़े आदि थे जो बहुत घटिया किस्म के थे। उन पर पैसे खर्च करना हमें व्यर्थ लगा। हमें इस बात का सन्तोष हुआ कि जो डालरों के बदले हमने म्यांमार की मुद्रा ली थी उसका कुछ अंश का पुस्तकों को खरीदने में सदुपयोग हो पाया। कुछ अंश का भोजनादि में उपयोग हो ही रहा था। वापिस जाते समय म्यांमार की मुद्रा के कुछ सिक्के ही हमारे पास रह पाये थे।

विश्वविद्यालय जाने की और वहां के पुस्तकालय को देखने की— विशेषकर रामकथा से सम्बद्ध वहां की पुस्तकों की जानकारी हासिल करने की हमारी प्रबल इच्छा थी पर विश्वविद्यालय बंद होने के कारण यह इच्छा मन की मन में ही रह गई। हमारा सोचना था कि भले ही विश्वविद्यालय बन्द हो, पढ़ाई उसमें न हो रही हो, पर पुस्तकालय तो शायद खुला ही होगा। हमें बताया गया कि वह भी बंद है। इससे हमें बहुत निराशा हुई।

19—12—1999

हम संग्रहालय देखने के लिये गये। अनेक कक्षों में वहां अनेक वस्तुएं वहां प्रदर्शित थी। वहां भी प्रवेश के लिये हमें डालरों में ही टिकट लेना पड़ा। जब उसे देख हम बाहर आ रहे थे तो हमारी दृष्टि वहां के बुकस्टाल पर पड़ी। मेरी धर्मपत्नी को वहां बर्मी मुहावरों की एक पुस्तक वहां दीख गई। वह उसे खरीदने के लिये उतावली हो उठी। पिछले कई वर्षों से अलग-अलग देशों के मुहावरों की पुस्तकों का संग्रह उसकी अभिरुचि का विषय बन गया है। अब भी जब उसे कोई विदेशी मिल जाता है तो वह उसे उसके अपने देश में वापिस जाने पर वहां के मुहावरों की पुस्तक भेजने का आग्रह करती हैं। बर्मी मुहावरों की पुस्तकों का दाम डालरों में ही देना था और उसने डालर उस

समय मेरे पास थे तो सही पर अन्यत्र भी उनकी आवश्यकता शायद पड़ सकती है यह सोच मैंने कहा कि शहर में ही किसी पुस्तक विक्रेता के यहां यह पुस्तक ले लेंगे। उस के पास भी यह पुस्तक उपलब्ध होगी ही। इस बीच होटल से अपेक्षित डालर भी जेब में रख लेंगे। इसके बाद हम अनेक पुस्तक विक्रेताओं की दुकानों पर गये पर वह पुस्तक नहीं मिली। तब मेरे मन में बहुत पश्चात्ताप हुआ। क्यों नहीं, मन पक्का कर मैं पुस्तक खरीद सका। अनेक बार हाथ में आई चीज़ निकल जाती है। फिर लाख प्रयत्न करने पर भी वह नहीं मिलती।

20—12—1999

आज बागान जाने का कार्यक्रम है। वहां रामायण विषयक सामग्री उपलब्ध है यह मुझे ज्ञात था। वहां श्री साईलर और मैं ही जाते हैं। धर्मपत्नी यंगून में होटल में ही रह जाती हैं। लम्बे-लम्बे फासले पैदल पार करने में उन्हें असुविधा है। बगान तक की यात्रा हवाई जहाज़ से की जाती है। एयरपोर्ट से बाहर आने पर विदेशियों को वहां टैक्स देना होता है। वह हमने भी दिया।

बागान मूलतः प्यूग्राम था। ग्राम शब्द पहिले गामरूप में परिवर्तित हुआ, फिर गान रूप में। 'प्यू' उस क्षेत्र का नाम था जिसमें वह स्थित है। यह प्यू ही बाद में 'वो' रूप में परिवर्तित हो गया। प्यूग्राम का अर्थ है प्यू नामक क्षेत्र का ग्राम। इससे पूर्व इसका नाम अरिन्दमपुर था। म्यांमार में प्राचीन काल में अनेक नगरों के नाम संस्कृतनिष्ठ थे— अनुराधापुर इत्यादि।

बागान में रामायण से सम्बद्ध सामग्री— मित्तिचित्र, पुस्तरफलक, चित्र आदि मुझे निम्नलिखित स्थानों पर प्राप्त हुए—

1. पूर्वी देत्ताइक मन्दिर

   (दत्सर कथा के दृश्य)

2. आनन्द मन्दिर

3. कुति योन् क् ग्यी (न्यित् कज)

4. कुतियोक्ग्यी ( वेत् क्यी इन्)

बागान में हमने राष्ट्रिय संग्रहालय भी देखा। इसमें हमें महाराज अनोयथ की कांस्यमूर्ति देखने को मिली जो बागान राजवंश जिसका काल 1040-1287 तक था के प्रथम और संस्थापक महाराज थे। इस संग्रहालय में हमें महाराज

प्यूवोहू की प्रतिमा भी देखने को मिली जिसने बगान काल से पूर्व ईसा पश्चात् की तीसरी शताब्दी में शासन किया था। वह बड़े-बड़े चीतों, पक्षियों, सुअरों, गिलहरियों तथा कलावेश नामक (अंग्रेज़ी में जिन्हें गोड वृक्ष कहा जाता है) भिड़ जाता है। उसके विषय में म्यांमार में अनेक दन्त कथाएं प्रसिद्ध हैं।

संग्रहालय का उद्घाटन हमारी यात्रा से एक वर्ष पूर्व, अर्थात्, 1998 में हुआ था। इसमें भूमितल (ग्राउंड फ्लोर) पर पांच कमरे हैं और पहिली मंज़िल पर चार। प्रवेश द्वार से बड़े-बड़े हाल तक भगवान् बुद्ध के सिरों की प्रदर्शिनी है।

बगान के आनन्द मन्दिर का निर्माण महाराज क्यानजित्थ ने करवाया था। बगान के निकटस्थ थात्बिन्यू बुद्ध (सर्वज्ञ बुद्ध) के पास में एक हिन्दू मन्दिर है जिसमें शयन मुद्रा में भगवान् विष्णु तथा दशावतारों की मूर्तियां हैं। इसी हिन्दू मन्दिर से पाई गई भगवान् शिव की खड़ी मूर्ति में चार भुजाएं हैं जिनमें कृपाण, गदा (?), डमरू और त्रिशूल हैं। संग्रहालय के दाईं ओर 11 वीं शताब्दी की पद्मनाम विष्णु की प्रस्तर मूर्ति ~~भी पाई गई~~ है। जो जीर्ण-शीर्ण अवस्था में है। इसमें भगवान् विष्णु की नाभि में से तीन कमल निकलते हुए दिखाये गये हैं जिनमें से ब्रह्मा, विष्णु और महेश प्रकट होते हुए चित्रित किये गये हैं।

महाविनायक की मूर्तियां भी वहां उपलब्ध हुई हैं। चार चतुर्मुख ब्रह्मा की मूर्तियां भी वहां मिली हैं।

112 फुट लम्बा अब पत्थर सा दिखाई देने वाला एक वृक्ष भी वहां है जो भूगर्भ-वेत्ताओं का अनुमान के अनुसार ढ़ाई करोड़ वर्ष पुराना है।

बगान पर 55 राजाओं ने शासन किया। जैसा कि पहिले कहा चुका है इसका नाम अरिन्दमपुर था। यह नाम महाराज श्री श्री बूनजित्र धर्मराज के एक अभिलेख में मिलता है।

म्यांमार के एक विद्वान् के अनुसार रामकथा जातक कथा नहीं है। श्रीराम विष्णु के दशावतारों में से एक थे। बगान में जो श्रीराम के उत्कीर्ण चित्र पाये गये हैं वे उनके विष्णु के अवतार रूप के चित्र हैं।

11 वीं शताब्दी के बुद्ध के ताबीजों में संस्कृत में कुछ पंक्तियां हैं। ये ताबीज़ अवशेषगृह स्थित प्राचीन पगोड़ा से मिले थे।

बोडो इन्द्र के मन्दिर से 19 वीं शताब्दी के उत्कीर्ण रामायण-चित्र उपलब्ध हुए हैं। मन्दिर का नाम श्वेज़िगोन पगोडा है।

म्यांमार में दृश्यों का ~~कम~~ अंकन लम्बूतरे (oval shape) आकार में होता है (उस रूप में वहां श्रीराम को

धारण किये हुए चित्रित किया जाता है, भारत में अंकन

धनुष आयताकार में होता है और थाई वर्गाकार में। भारत में श्रीराम को हिरन का पीछे भागते हुए शायद कहीं भी प्रदर्शित नहीं किया गया। कम से कम मेरे देखने में ऐसा कोई दृश्य नहीं आया। पर म्यांमार और थाईलैण्ड में इस तरह का अंकन है। थाईलैण्ड में हिरन श्रीराम की कुटिया के आस-पास उछलता-कूदता दिखाया जाता है। म्यांमार में भी यही पद्धति है। वहां वह नाचते-गाते हुए आता है।

अन्तर इतना है कि

म्यांमार में रामायण पात्रों की वेषभूषा भारतीयों की जैसी ही है। राम, लक्ष्मण, भरत आदि को वहां धोती पहिने ही दिखाया गया है।

बगान से मंडले की ओर जाने के समय रास्ते में परवानज्यी बौद्ध विहार पड़ता है जहां काष्ठ फलकों पर रामायण के दृश्य अंकित हैं। मंडले के निकट मिन्डोन नाम के स्थान पर एक बहुत बड़ा घण्टा है जिस पर काष्ठफलकों में रामकथा चित्रित है।

म्यांमार में रामकथा केवल प्रस्तर या काष्ठफलकों पर ही नहीं उत्कीर्ण की गई अपितु चांदी पर भी। यंगून राष्ट्रिय संग्रहालय में वह चांदी के प्याले पर उत्कीर्ण है और इन्ले झील के शान मन्दिर में चांदी के एक कटोरे पर।

वापिसी में मंडले से यंगून तक की यात्रा हमने वायुयान से की। हमने 24-12-1999 को 5:30 बजे अपराह्न में मंडले से प्रस्थान किया और 6:30 पर यंगून पहुंच गये।

मंडले प्रवास में हमें म्यान्मार के महामनीषी ~~सिन मोङ्~~ मौ मौ टिन् के दर्शनों का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ। 23-12-1999 की सन्ध्या हमने उनके साथ बिताई। अनेक विषयों पर उनसे सघन चर्चा हुई जिससे हमें बहुत कुछ जानने को मिला। 83 वर्ष के वे वयोवृद्ध विद्वान् म्यान्मार के इतिहास आयोग (हिस्टोरिकल कमिशन) के सदस्य हैं। इससे अधिक उनके वैदुष्य की धाक का प्रमाण क्या हो सकता है कि थाई देश की महाराजकुमारी महाचक्री सिरिन्थौर्न स्वयम् उनके आवास पर उनसे मिलने गई थीं। यह संयोग की बात है कि जिस दिन हम उनके दर्शन करने गये वही दिन उनका जन्मदिन था। घर का सारा वातावरण उल्लसमय था। वहां हमें म्यान्मार की शैली के कुछ मिष्टान्न सेवन का आनन्द भी प्राप्त हुआ। उनसे जो चर्चा हुई उसके कुछ अंश इस प्रकार हैं–

बौलालिन् नाम का बौद्ध विहार है जिसमें कम उभरी खुदाई (बा रिलीफ़्स) में रामायण के दृश्य अंकित हैं। बड़े-बड़े पत्थर भी वहां पर हैं जिन्हें तराशे कर उनके भीतर की ओर रामायण दृश्यों को उत्कीर्ण किया गया है। उस क्षेत्र में चार-पांच अभिलेख भी पाये गये हैं। वे सभी के सभी 1845–50 ई0 के बीच के हैं।

बर्मा में स्वांगते की लकड़ी के बौद्ध विहार होते हैं जिन्हें वहां काष्ठविहार कहा जाता है। वही एकमात्र स्थान

स्वांगवान

है जिसके बारे में श्री साइलर से बर्मा में अपने शोध के सन्दर्भ में सुनाया जाना था। विहार मोन्व्या क्षेत्र में है जहां मंडले से कार के रास्ते पहुंचने में सात घण्टे का समय लगता है। विहार का सब से निकट का शहर मोन् व्या है। विहार वहां से 20 मील है। वहां पहुंचना बहुत कठिन है। कम उभरी खुदाई के दृश्यों की छत धूप और बारिश के कारण नष्ट हो चुकी है। ये दृश्य कभी स्वर्णांकित थे पर वर्तमान में बहुत कम ही स्वर्णांश उनमें रह गया है। बहरहाल वे बहुत सुन्दर हैं और मंझे हुए कलाकारों द्वारा उत्कीर्ण हैं।

विहार के आस-पास पत्थर बिखरे पड़े थे। उन्हें इकट्ठा कर सीमेंट की दीवार में चिन दिया गया है। एक बर्मी पुस्तक में उनके चित्र हैं जो बहुत घटिया किस्म के हैं।

श्री साइलर कहते हैं कि वह पुस्तक उनके पास थी पर अब उन्हें याद नहीं कि वह कहां है।

बर्मा के ऊपरी भाग के उन बौद्ध विहारों में जहां रामायण के दृश्य उत्कीर्ण हैं एक साले में है जहां सड़क के खराब होने के कारण बगान से वहां पहुंचने में पूरा दिन लग जाता है। विहार बहुत सुन्दर है। दूसरा पा कज्न ग्यी है। उसमें भी बगान से चल कर पहुंचने में पूरा दिन लगता है। बगान में दशावतारों का एक मन्दिर हैं। सुनने में आता है कि वहां भी रामकथा से सम्बद्ध कुछ न कुछ है ही। बगान का पहिला राजा अपने को विष्णु का अवतार मानता था। एक अभिलेख में उसने अपने बारे में ऐसा कहा भी है।

बर्मा के इतिहास पर तीन पुस्तकें हैं। दो अंग्रेज़ों ने लिखी हैं और एक न्यूयार्क शहर में बर्मा के व्यक्ति ने। एक चौथी पुस्तक भी है जोकि एक भारतीय ने लिखी है। उसका नाम दे साई है। 25 वर्ष पूर्व लूस ने बगान के अभिलेखों का अध्ययन कर उन्हें तीन खण्डों में प्रकाशित किया था जिनका मूल्य 300 अमरीकी डालर है। 1978 के आसपास जनरल ने विन् ने उसे अपने देश से भगा दिया था। इंग्लैण्ड के चैनल आइसलैण्ड्स में उसने अपने प्राण छोड़े थे। जनरल ने विन् अब 90 वर्ष के हैं और अकेले ही बिना किसी को साथ लिये छः दरवाज़ों की बुलेटप्रूफ़ मर्सिडीज़ गाड़ी चलाते हैं।

'कला आये' (विश्व शान्ति) पगोडा में शिखर भाग पर 28 बुद्ध मूर्तियां हैं। नीचे के तल पर पांच बुद्ध मूर्तियां हैं। शिखर भाग पर वे लघु आकार की हैं और नीचे के भाग पर बड़े आकार की। नीचे के भाग की पांच मूर्तियां हैं—

ककुसन्द

कसप्प

कोरकाडासन

है जिसके बारे में श्री साइलर से बर्मा में अपने शोध के सन्दर्भ में सुनाया जाना था। विहार मोन्व्या क्षेत्र में है जहां मंडले से कार के रास्ते पहुंचने में सात घण्टे का समय लगता है। विहार का सब से निकट का शहर मोन् व्या है। विहार वहां से 20 मील है। वहां पहुंचना बहुत कठिन है। कम उभरी खुदाई के दृश्यों की छत धूप और बारिश के कारण नष्ट हो चुकी है। ये दृश्य कभी स्वर्णांकित थे पर वर्तमान में बहुत कम ही स्वर्णांश उनमें रह गया है। बहरहाल वे बहुत सुन्दर हैं और मंझे हुए कलाकारों द्वारा उत्कीर्ण हैं।

विहार के आस-पास पत्थर बिखरे पड़े थे। उन्हें इकट्ठा कर सीमेंट की दीवार में चिन दिया गया है। एक बर्मी पुस्तक में उनके चित्र हैं जो बहुत घटिया किस्म के हैं।

श्री साइलर कहते हैं कि वह पुस्तक उनके पास थी पर अब उन्हें याद नहीं कि वह कहां है।

बर्मा के ऊपरी भाग के उन बौद्ध विहारों में जहां रामायण के दृश्य उत्कीर्ण हैं एक 'साले' में है जहां सड़क के खराब होने के कारण बगान से वहां पहुंचने में पूरा दिन लग जाता है। विहार बहुत सुन्दर है। दूसरा 'पा कज्न ग्यी' है। उसमें भी बगान से चल कर पहुंचने में पूरा दिन लगता है। बगान में दशावतारों का एक मन्दिर हैं। सुनने में आता है कि वहां भी रामकथा से सम्बद्ध कुछ न कुछ है ही। बगान का पहिला राजा अपने को विष्णु का अवतार मानता था। एक अभिलेख में उसने अपने बारे में ऐसा कहा भी है।

बर्मा के इतिहास पर तीन पुस्तकें हैं। दो अंग्रेज़ों ने लिखी हैं और एक न्यूयार्क शहर में बर्मा के व्यक्ति ने। एक चौथी पुस्तक भी है जोकि एक भारतीय ने लिखी है। उसका नाम दे ैसाई है। 25 वर्ष पूर्व लूस ने बगान के अभिलेखों का अध्ययन कर उन्हें तीन खण्डों में प्रकाशित किया था जिनका मूल्य 300 अमरीकी डालर है। 1978 के आसपास जनरल 'ने विन् 'ने उसे अपने देश से भगा दिया था। इंग्लैण्ड के चैनल आइसलैण्ड्स में उसने अपने प्राण छोड़े थे। जनरल 'ने विन् 'अब 90 वर्ष के हैं और अकेले ही बिना किसी को साथ लिये छः दरवाज़ों की बुलेटप्रूफ़ मर्सिडीज़ गाड़ी चलाते हैं।

'कला आये' (विश्व शान्ति) पगोडा में शिखर भाग पर 28 बुद्ध मूर्तियां हैं। नीचे के तल पर पांच बुद्ध मूर्तियां हैं। शिखर भाग पर वे लघु आकार की हैं और नीचे के भाग पर बड़े आकार की। नीचे के भाग की पांच मूर्तियां हैं—

ककुसन्द

कसप्प

कोरकाडासन

गोतम

अरिमेत्तय

अब तक चार ही बुद्ध हुए हैं। पांचवें ने अभी जन्म लेना है। बौद्ध धर्मग्रन्थों में 28 बुद्धों की चर्चा है। कहा जाता है कि 28 अलग-अलग वृक्षों के नीचे उन्हें बुद्धत्व प्राप्त हुआ था। हर बुद्ध का अलग-अलग नाम है जो कि शिखर भाग पर लगे एक धातु पत्र (प्लेट) पर अंकित है। नीचे के भाग के एक पत्र पर उस व्यक्ति का नाम लिखा है जिसने पत्र के लिये स्वर्ण दान दिया है। इस तरह वहां दो धातु पत्र हैं। एक पर दान वाले का नाम लिखा है और दूसरे पर मूर्ति का (मूर्ति के शिरो भाग ही वहां प्रतिष्ठित है)।

मन्दिर के गर्भगृह में भगवान् बुद्ध की चांदी की मूर्ति है जिस पर सोने का पानी चढ़ा है। इसका वज़न 500 किलोग्राम है। इस के दोनों ओर छोटी-छोटी चांदी की वेदिकाएं बनी हैं। चांदी की इन वेदिकाओं में एक के नीचे सारिपुत्र की भस्म रखी हुई है और दूसरी के नीचे मौग्गलन की। इनके चारों ओर कांच के मोज़ेक की एक दीर्घिका है जिसमें बृहदाकार भित्ति चित्रों के माध्यम से भगवान् बुद्ध की जीवनगाथा अंकित हैं।

'काबा आये' पगोड़ा के समीप ही महापासन (महाभाषण?) नाम की एक गुफा है जहां छठी संगीति (= बौद्ध सम्मेलन) का आयोजन किया गया था। एक बहुत बड़े हाल में दस हज़ार लोगों के बैठने की व्यवस्था थी। ऊपर की वेदिका पर 2500 बौद्ध भिक्षुओं के बैठने का स्थान था और 7500 ~~बौद्धधर्मावलम्बिनी जनता फ़र्श~~ श्रावक बैठे थे। इस संगीति में बौद्ध धर्मग्रन्थों की समीक्षा की गई थी यह जानने के लिये कि क्या उनमें कोई त्रुटि तो नहीं है या इनके अनुवाद में कोई प्रमाद तो नहीं हुआ। बौद्ध धर्म ग्रन्थों के प्रामाणिक पाठ को तब कागज़ पर लिखा गया। मंडले में उसे पत्थर पर उत्कीर्ण कर दिया गया। संगीति का आयोजन 1952 में हुआ था। पञ्चम संगीति का आयोजन मंडले में 1871 में हुआ था।

म्यान्मार में दूसरी बड़ी लेटे हुए बुद्ध की मूर्ति का निर्माण-वर्ष 1906 था। 1966 में इसका पुनर्निमाण हुआ। यह 70 मीटर लम्बी है। ऊंचाई इसकी 20 मीटर है। जिस पगोडा में यह पाई गई है उसका नाम है 'छौक् इतात् ज्यी'। पगोडा में छः मंजिलें हैं। 1906 में बुद्ध का शिरोभाग उत्तर-पश्चिम की ओर था। 1966 में जब इसका पुनर्निर्माण किया गया तो वह शिरोभाग उत्तरपूर्व की ओर कर दिया गया।

म्यान्मार में दिन-वार किसी न किसी दिशा का प्रतिनिधित्व करते हैं और कोई न कोई प्रतीक चिह्न उनका होता है। यथा–

1. सोमवार पूर्व दिशा का प्रतिनिधित्व करता है। इसका प्रतीक चिह्न व्याघ्र है।

2. मंगलवार दक्षिण-पूर्व का प्रतिनिधित्व करता है। इसका प्रतीक चिह्न सिंह है।

3. बुधवार (प्रातः) दक्षिण दिशा का प्रतिनिधित्व करता है। इसका प्रतीक चिह्न कमलों वाला हाथी है।

4. बृहस्पतिवार पश्चिम दिशा का प्रतिनिधित्व करता है। इसका प्रतीक चिह्न है मूषक।

5. शुक्रवार उत्तर दिशा का प्रतिनिधित्व करता है। इसका प्रतीक चिह्न है सुअर।

6. शनिवार दक्षिण-पश्चिम दिशा का प्रतिनिधित्व करता है। इसका प्रतीक चिह्न है व्याल या सर्प।

7. रविवार उत्तर पूर्व दिशा का प्रतिनिधित्व करता है। इसका प्रतीक है गरुड़।

8. बुधवार (सायं) उत्तर पश्चिम दिशा का प्रतिनिधित्व करता है। इसका प्रतीक चिह्न है एक दांत वाला हाथी।

बुधवार (सायं) का एक दूसरा नाम भी है और वह है 'राहु' पर वह प्रयोग में आता नहीं।

बर्मा के सिंहासन को अंग्रेज़ 1886 में कलकत्ता ले गये थे जहां कलकत्ता संग्रहालय में उसे रखा गया था। 1948 में भारत सरकार ने उसे बर्मा को लौटा दिया था।

बातचीत के प्रसंग में प्रो0 ऊ मौङ् मौङ् तिन् ने हमें एक रोचक कथा भी सुनाई। एक उड़ने वाला केसरी सिंह एक दिन अपनी रत्नों की गुफा से आहार की तलाश में निकला। उसी समय उसी के लिये निकला उड़ने वाला एक हाथी भी। चूंकि दोनों का आहार हल्के बादल ही थे, उनमें विवाद छिड़ गया जो बाद में युद्ध में परिणत हो गया। जब युद्ध चल ही रहा था तभी एक देव वहां प्रकट हुआ। जो हो रहा था उसे देख वह नाचने-गाने लगा। अपने ~~दखनों~~ पर छोटे-छोटे झांझर उसने बांध रखे थे। उसे देख दोनों पशुओं का ध्यान उधर बंट गया और तत्काल उन्होंने लड़ना बन्द कर दिया। यह स्मरणीय कलह और उसकी सुखद परिणति पूर्वोक्त सिंहासन पर चित्रित है। यह राजसत्ता, उसकी सम्प्रभुता तथा राज्य में सुख-शान्ति का प्रतीक है।

सिंहासन का नाम लोकनात (थ) है।

मंडले राजमहल में नौ कमरे हैं।

प्रो0 मौङ् मौङ् तिन् ने ऊ सोइ आङ् नाम के एक व्यक्ति की भी चर्चा की जिसका जन्म 1922 में हुआ था। 1936 से उन्होंने रामकथा का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया था। 46 वर्ष की अवस्था में उन्होंने अपना नाम राम रख लिया था। उनकी प्रेरणा से छः रामकथा प्रस्तुति करने वालों के दलों का भी गठन हुआ था। प्रो0 ऊ मौङ् मौङ् तिन्

ने बताया कि बीते वर्षों में उन्होंने रामायण पर शोध किया है और रामकथा पर लिखा है। 1947 में एशिया क्षेत्रीय रामायण सम्मेलन के सदस्य के रूप में उन्होंने विश्व के अनेक भागों में रामलीला की प्रस्तुति का अध्ययन प्रस्तुत किया था।

वाल्मीकि रामायण और बर्मी रामायण में परस्पर में भेद है। उदाहरण के लिये श्रीराम को कौन प्रिय है। रामायण के अनुसार मारीच है और बर्मी रामायण के अनुसार श्रीराम की बहिन गम्मी। बर्मा में वालि सुग्रीव का भाई है पर दोनों के चेहरे तो लम्बूतरें हैं पर पूछें नहीं हैं। वे वानराकृति पुरुष हैं। इसके बारे में अनेक टीका-टिप्पणियां की गईं– कुछ तो बहुत समझदारीपूर्ण थीं और कुछ मूर्खता पूर्ण। रामकथा पर रचित एक उपन्यास के आधार पर वीडियो फिल्में बनाई गईं। उपन्यास के अनेक संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। 1998 में इसका छठा संस्करण प्रकाशित हुआ था। सम्पूर्ण रामकथा को उन्होंने अपने अनुसन्धान का विषय नहीं बनाया। उन्होंने दसगिरि (=दशग्रीव, रावण) तक ही अपने को सीमित रखा है।

ललित कला विभाग के ऊ औङ् ह्निन् 1987 में रामकथा की प्रस्तुति प्रारम्भ की थी। इस प्रस्तुति का नाम था– राम की पहिचान । इसमें नौ देशों ने भाग लिया था। हर देश ने रामकथा से सम्बद्ध दो-दो कथानकों को लिया था। इसके निष्कर्ष के रूप में 1988 में एक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ था। तत्तद्देशों की प्रस्तुतियां पारम्परिक थीं पर परम्पराओं पर आधारित नहीं थीं।

रामायण का एक सचित्र चित्र भी प्रकाशित किया गया था।

प्रो0 ऊ मौङ् मौङ् तिन् के अनुसार रामायण देशों के बीच एक प्रबल द्येतु है।

इन सब दृश्यों की स्लाइड मैंने बना ली । यह अभूतपूर्व सामग्री मेरे पास है। इसे एक अमूल्य निधि की तरह मैंने सुरक्षित रखा है।

बगान से मैंने श्री साइलर के साथ 21-12-1999 को अपराह्ण में म्यांमार के अन्य महत्वपूर्ण स्थान मंडले के लिये कार से प्रस्थान किया जिसका उन्होंने प्रबन्ध किया। थकान भरी लम्बी सड़क यात्रा के बाद हम रात के आठ बजे के लगभग मंडले पहुंचे। पहुंचने पर हमने होटल की व्यवस्था की और जो मिला वही खा पीकर शयन के लिये चले गये।

अगला दिन हमारे लिये बहुत महत्वपूर्ण था। उस दिन हमें 'था खुतु थ ने' की यात्रा करनी थी जिसके बारे में हमें बताया गया था कि वहां रामायण से सम्बद्ध काष्ठमूर्तियों की लम्बी कतारें हैं और जहां जाना हमारी दृष्टि में बर्मी

दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हो सकता था।

'था खुत् ता ने' एक गांव है जो कि मोनिवा से उत्तरपूर्व की ओर 34 कि0मी0 की तथा एक छोटे से 'बुडा लिन्' नाम के कस्बे से उत्तर की दिशा में 14 कि0मी0 की दूरी पर है। इस गांव में एक बौद्ध भिक्षु 'मोन् डोङ्' ने जो अपने वैदुष्य के कारण सुप्रसिद्ध था एक पगोडा बनवाया था। महाराज पगान के राज्याभिषेक के बाद एक नये संघराज की नियुक्ति हुई। तब भूतपूर्व संघराज ने इसी पगोडा में शरण ली थी। अपने शरणकाल में उसने 26 नवम्बर 1846 को इस पगोडा को बनाने का कार्य प्रारम्भ किया जो 1 मई, 1849 को पूर्ण हुआ। उसने अपने पगोडा का नाम 'लोक मार जि्अन (लोक मार ज़िना) रखा पर लोग उसे 'नट् ये तङ्' नाम से ही जानते रहे।

उस माननीय भिक्षु ने पगोडा के वेदिका भाग पर कम उभरी खुदाई के 347 फलकों (जिनमें से 34 नष्ट हो चुके हैं) की स्थापना की जिनमें श्रीराम की जीवनी अंकित है। पुरा तत्व विभाग को लगा कि उन फलकों को बचा लेना चाहिये इसलिये उसने उन पर 'शैड' बनवा दिया है। इस 'शैड' की स्थापना 27 जुलाई 1972 में हुई थी। खेद की बात है कि यह 'शैड' बहुत देर में बना। बरसों-बरसों तक ये फलक जो काष्ठ के बने थे धूप और वर्षा की मार सहते रहे। वे अब इस कदर क्षतिग्रस्त हो गये हैं कि उन्हें देख तरस आता है और रोना भी कि किस तरह हमारी विरासत लुप्त होती चली जा रही है।

मंडले से 'था खुत् ता ने' का मार्ग अत्यन्त विषम है। कच्ची सड़क – बीच-बीच में गहरे गड्ढे। कचके इतने ज़ोर से लगते हैं कि शरीर का अंजर-पंजर ही हिल जाये। हम कार से प्रातः 7 बजे मंडले से चलकर मध्याह्न के 12 बजे के आसपास इस गांव में पहुंच पाये। इतना कष्ट उठा कर पहुंचे तो वहां का दृश्य देख कर घोर निराशा हुई। जिस स्थान पर काष्ठ फलक रखे हैं वहां 'शैड' के दोनों ओर से खुला होने के कारण पक्षियों ने अपना बसेरा बना रखा है। उनकी बीठ ने इतनी गन्दगी फेला रखी है कि धिन आती है। गलियारों में चलता भी इस कारण बहुत कठिन है। हर मूर्ति का कुछ न कुछ अंश टूटा हुआ है। वे सब रंगीन हैं। जब बनी होंगी तो कितनी सुन्दर लगती होंगी। अब वे उपेक्षित हैं– बद रंग – बदसूरत।

तीन घण्टे के लगभग का समय वहां बिता कर हम वहां से मंडले की ओर वापिस हो लेते हैं। थके हारे रात के 8:30 बजे हम वहां पहुंचते हैं और यत्किञ्चित् खा पीकर सो जाते हैं।

23–12–1999

प्रातः हम मंडले का संग्रहालय तथा राजमहल देखने जाते हैं। अपराह में हमारी भेंट सुप्रसिद्ध मनीषी से होती

दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हो सकता था।

'था खुत् ताने' एक गांव है जो कि मोनिवा से उत्तरपूर्व की ओर 34 कि0मी0 की तथा एक छोटे से 'बुडा लिन्' नाम के कस्बे से उत्तर की दिशा में 14 कि0मी0 की दूरी पर है। इस गांव में एक बौद्ध भिक्षु 'मोन् डोङ्' ने जो अपने वैदुष्य के कारण सुप्रसिद्ध था एक पगोडा बनवाया था। महाराज पगान के राज्याभिषेक के बाद एक नये संघराज की नियुक्ति हुई। तब भूतपूर्व संघराज ने इसी पगोडा में शरण ली थी। अपने शरणकाल में उसने 26 नवम्बर 1846 को इस पगोडा को बनाने का कार्य प्रारम्भ किया जो 1 मई, 1849 को पूर्ण हुआ। उसने अपने पगोडा का नाम 'लोक मार जि्अन (लोक मार ज़िना) रखा पर लोग उसे 'नट् ये तङ्' नाम से ही जानते रहे।

उस माननीय भिक्षु ने पगोडा के वेदिका भाग पर कम उभरी खुदाई के 347 फलकों (जिनमें से 34 नष्ट हो चुके हैं) की स्थापना की जिनमें श्रीराम की जीवनी अंकित है। पुरा तत्व विभाग को लगा कि उन फलकों को बचा लेना चाहिये इसलिये उसने उन पर 'शैड' बनवा दिया है। इस 'शैड' की स्थापना 27 जुलाई 1972 में हुई थी। खेद की बात है कि यह 'शैड' बहुत देर में बना। बरसों-बरसों तक ये फलक जो काष्ठ के बने थे धूप और वर्षा की मार सहते रहे। वे अब इस कदर क्षतिग्रस्त हो गये हैं कि उन्हें देख तरस आता है और रोना भी कि किस तरह हमारी विरासत लुप्त होती चली जा रही है।

मंडले से 'था खुत् ता ने' का मार्ग अत्यन्त विषम है। कच्ची सड़क – बीच-बीच में गहरे गड्ढे। कचके इतने ज़ोर से लगते हैं कि शरीर का अंजर-पंजर ही हिल जाये। हम कार से प्रातः 7 बजे मंडले से चलकर मध्याह्न के 12 बजे के आसपास इस गांव में पहुंच पाये। इतना कष्ट उठा कर पहुंचे तो वहां का दृश्य देख कर घोर निराशा हुई। जिस स्थान पर काष्ठ फलक रखे हैं वहां 'शैड' के दोनों ओर से खुला होने के कारण पक्षियों ने अपना बसेरा बना रखा है। उनकी बीठ ने इतनी गन्दगी फेला रखी है कि धिन आती है। गलियारों में चलता भी इस कारण बहुत कठिन है। हर मूर्ति का कुछ न कुछ अंश टूटा हुआ है। वे सब रंगीन हैं। जब बनी होंगी तो कितनी सुन्दर लगती होंगी। अब वे उपेक्षित हैं– बद रंग – बदसूरत।

तीन घण्टे के लगभग का समय वहां बिता कर हम वहां से मंडले की ओर वापिस हो लेते हैं। थके हारे रात के 8:30 बजे हम वहां पहुंचते हैं और यत्किञ्चित् खा पीकर सो जाते हैं।

23–12–1999

प्रातः हम मंडले का संग्रहालय तथा राजमहल देखने जाते हैं। अपराह्न में हमारी भेंट सुप्रसिद्ध मनीषी से होती

दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हो सकता था।

'था खुत् ता ने' एक गांव है जो कि मोनिवा से उत्तरपूर्व की ओर 34 कि0मी0 की तथा एक छोटे से 'बुडा लिन्' नाम के कस्बे से उत्तर की दिशा में 14 कि0मी0 की दूरी पर है। इस गांव में एक बौद्ध भिक्षु 'मोन् डोङ्' ने जो अपने वैदुष्य के कारण सुप्रसिद्ध था एक पगोडा बनवाया था। महाराज पगान के राज्याभिषेक के बाद एक नये संघराज की नियुक्ति हुई। तब भूतपूर्व संघराज ने इसी पगोडा में शरण ली थी। अपने शरणकाल में उसने 26 नवम्बर 1846 को इस पगोडा को बनाने का कार्य प्रारम्भ किया जो 1 मई, 1849 को पूर्ण हुआ। उसने अपने पगोडा का नाम 'लोक मार ज़िअन (लोक मार ज़िना) रखा पर लोग उसे 'नट् ये तङ्' नाम से ही जानते रहे।

उस माननीय भिक्षु ने पगोडा के वेदिका भाग पर कम उभरी खुदाई के 347 फलकों (जिनमें से 34 नष्ट हो चुके हैं) की स्थापना की जिनमें श्रीराम की जीवनी अंकित है। पुरा तत्व विभाग को लगा कि उन फलकों को बचा लेना चाहिये इसलिये उसने उन पर 'शैड' बनवा दिया है। इस 'शैड' की स्थापना 27 जुलाई 1972 में हुई थी। खेद की बात है कि यह 'शैड' बहुत देर में बना। बरसों-बरसों तक ये फलक जो काष्ठ के बने थे धूप और वर्षा की मार सहते रहे। वे अब इस कदर क्षतिग्रस्त हो गये हैं कि उन्हें देख तरस आता है और रोना भी कि किस तरह हमारी विरासत लुप्त होती चली जा रही है।

मंडले से 'था खुत् ता ने' का मार्ग अत्यन्त विषम है। कच्ची सड़क – बीच-बीच में गहरे गड्ढे। कचके इतने ज़ोर से लगते हैं कि शरीर का अंजर-पंजर ही हिल जाये। हम कार से प्रातः 7 बजे मंडले से चलकर मध्याह के 12 बजे के आसपास इस गांव में पहुंच पाये। इतना कष्ट उठा कर पहुंचे तो वहां का दृश्य देख कर घोर निराशा हुई। जिस स्थान पर काष्ठ फलक रखे हैं वहां 'शैड' के दोनों ओर से खुला होने के कारण पक्षियों ने अपना बसेरा बना रखा है। उनकी बीठ ने इतनी गन्दगी फेला रखी है कि धिन आती है। गलियारों में चलता भी इस कारण बहुत कठिन है। हर मूर्ति का कुछ न कुछ अंश टूटा हुआ है। वे सब रंगीन हैं। जब बनी होंगी तो कितनी सुन्दर लगती होंगी। अब वे उपेक्षित हैं– बद रंग – बदसूरत।

तीन घण्टे के लगभग का समय वहां बिता कर हम वहां से मंडले की ओर वापिस हो लेते हैं। थके हारे रात के 8:30 बजे हम वहां पहुंचते हैं और यत्किञ्चित् खा पीकर सो जाते हैं।

23–12–1999

प्रातः हम मंडले का संग्रहालय तथा राजमहल देखने जाते हैं। अपराह में हमारी भेंट सुप्रसिद्ध मनीषी से होती

है जिसका विवरण ऊपर दिया जा चुका है।

24–12–1999

इस दिन हम मंडले के कुछ अन्य दर्शनीय स्थलों को देखते हैं और फिर सन्ध्या को 5:30 बजे यंगून एयरवेज़ की फ़्लाइट से यंगून के लिये प्रस्थान करते हैं।

दूसरे दिन बहुत प्रातः ही बजे बैंकाक के लिये हमारी फ़्लाइट है।

म्यान्मार में प्रवेश करते समय भारतीय दूतावास के जो सज्जन हमें मिले थे– उनका नाम एल् दुराई राज था– वे ही हमें एयरपोर्ट पर विदा करने आते हैं। अपनी फ़्लाइट की प्रतीक्षा करने के समय उनसे बातचीत चलती रहती है जिससे हमें बहुत कुछ जानकारी मिलती है।

म्यान्मार में ऊ थाई हान नाम के एक विद्वान् हैं जिनका लेखकीय नाम नाम ज़ौज्यी है। 1970 के लगभग वे नई दिल्ली गये थे वहां उन्होंने रामायण पर एक लेख पढ़ा था। लगभग 10 लेख उन्होंने रामायण पर लिखे हैं। जब डा0 राघवन् यूनेस्को के तत्त्वावधान में एक महीने के लिये म्यान्मार गये थे तो ये उनके साथ रहे थे। इरावदी नदी के उस पार पक्कोकु जिले में पखान्जी नाम का एक गांव है। वहां भी रामायण अंकित है।

सितम्बर-अक्तूबर के बीच प्रतिवर्ष म्यान्मार में रामायण उत्सव मनाया जाता है। पहले वह 45 दिन तक चलता था पर अब मात्र तीन-चार घण्टे तक ही सिमट कर वह रह गया है।

श्री दुराई राज ने जो अन्य जानकारी दी वह इस प्रकार है–

1. जो लोग हिन्दुओं या बौद्धों से ईसाई बनते हैं वे अपना नाम फूल पत्तों पर रखते– राम, सीता, सावित्री आदि नहीं।
2. रिचर्ड को वहां लीचड़ कहकर छेड़ते हैं।
3. जब दो भाई परस्पर लड़ते रहते हैं और शान्ति से नहीं रहते तो उन्हें कहा जाता है कि क्यों वाली–सुग्रीव की तरह लड़ते रहते हो। शान्ति से क्यों नहीं रहते।

मोन्मेन तथा कची सीमा पर नदी का नाम जैड् जोकि जैन की याद दिलाता है। वहां बौद्ध भिक्षुओं को अर्हन्त् कहा जाता है। रहन्दा नाम का एक सन्त वहां हुआ जो अपने जन (ध्यान) के लिये प्रसिद्ध था। इरावदी तक श्री क्षेत्र में अनेक रहन्द (अरिहन्त) मिलते हैं।

अशोक के काल की 'ईंटें' जिन पर निशान बने हैं म्यान्मार में पाई गई हैं। म्यान्मार की भारतीय करण की प्रक्रिया बहुत पहिले ही प्रारम्भ हो गई थी। अशोक या उससे भी पूर्व इसका आरम्भ हो गया था। यहां भारतानुप्राणित लोग मिलते हैं जो अपने को पोन्न (पण्डित) = ब्राह्मण कहते हैं। वे बंगला बोलते हैं और प्रतिवर्ष और लगभग हर रात रामायण नृत्य का आयोजन करते हैं। तीन बड़ी बस्तियों में वे पाये जाते हैं जिनमें एक मंडले विश्वविद्यालय के निकट 'बावड़ी गोन' (बोधिग्राम)।

पगान काल में वे राजा के पुरोहित और ज्योतिषी हुआ करते थे– वही स्थिति जो उनकी थाईलैण्ड में थी। पगान काल में उनकी भूमिका महत्वपूर्ण थी। वे राज पण्डित थे।

गुप्त काल से बोवेन प्रतिमाएं मिलने लगी जिनकी तिथि प्रथम शताब्दी ईसा पश्चात् है। बौद्ध धर्म ग्रन्थ श्री–क्षेत्र में बहुत पहले ही पहुंच गये थे आज जिन्हें प्रोम् कहा जाता है। पाथन और धर्मक्षेत्र यहां हैं। 2000 वर्ष प्यू काल में 11 प्रमुख स्तोत्र विद्यमान थे। बाद में बुद्ध पाद मिलने लगे। तब तक भी बुद्ध प्रतिमाएं प्रचलन में नहीं आई थीं। इसके बाद वृक्ष की पूजा प्रारम्भ हुई। बुद्ध पाद पर बुद्ध के लक्षण अंकित हुए ——— 108 चिह्न। आज की तारीख़ में सभी बौद्ध मन्दिरों में बुद्ध पाद हैं। कुछ तो 1000 वर्षों तक के पुराने हैं। आज बुद्ध के पाद चिह्नों की पूजा की जाती है। पाद चिह्नों पर पूरा का पूरा साहित्य है जिसमें पादचिह्नों की पूजा-अर्थ क्या है यह बताया गया है, साथ ही यह भी पूजा करनी किस तरह है।

प्रो0 मौङ् मौङ् ने नाटकों और नाट्य कला पर चर्चा चलने पर रामायण का एक रोचक प्रसंग बताया। जब बर्मा के अन्तिम शासक को देश से निर्वासित किया गया तो उनकी पुत्रियों के कर्णवेध संस्कार पर रामायण प्रस्तुतियों का आयोजन किया गया। इनोन् नौङ् इन दोनों का मञ्चन लगातार 45 रात चलता रहा।

रामायण अयोध्या (थाईलैण्ड) से अमरपुर आई। 'सिन् प्युशिन्' ने अयोध्या को ध्वस्त कर दिया और वहां से वह कुछ लोगों को अपने साथ ले आया था। मंडले में उन लोगों की एक अलग से बस्ती ही है जिसे बर्मी भाषा में 'यहैङ्' और थाई देश में 'रहैङ्' कहा जाता है। वहां उन लोगों का अपना एक पगोडा है। मंडले में 29 नवम्बर की गली में एक अयोध्या मार्किट है। अथ च मंडले में यम का एक मन्दिर भी वहां है।

बातचीत को आगे बढ़ाते हुए प्रो0 ऊ मौङ् तिन् कहते हैं कि मंडले में एक ब्राह्मण बस्ती भी है। मुझे ये सुन आश्चर्य होता है। ऐसा है क्या– मैं कुछ अचरज से कहता हूं। वे कहते हैं 'हां'। वहां रामायण की प्रस्तुति भी होती है। प्रस्तुति

तो बस 15-20 मिनट की ही। बाकी तो सब मौज मेला ही होता है। एक युवक नाचने लगता है तो नाचता ही जाता है। हारमोनियम, ढोल ढमाके भी सब रहते हैं। एक युवति युवक के मुंह में से सिक्का निकाल कर अपने मुंह में ले लेती हैं। ब्राह्मण अन्तिम संस्कार के समय कुछ न कुछ भेंट चढ़ाते हैं। विवाह के अवसर पर वे अग्नि के एक, दो, तीन– यहां तक कि सैकड़ों बार फेरे लगाते हैं।

(मेरा) प्रश्न – क्या उनकी आकृति में स्थानीय लोगों की आकृति से कुछ भिन्नता है?

(प्रो0 तिङ् मौङ् मौङ् तिन्) – हां, उनका रंग अधिक गोरा है।

प्रो0 ऊ मौङ् मौङ् के घर/जो केक हमने खाया उसका भी अपना इतिहास हे। यह सम्भवतः अयोध्या काल का एक मिष्टान्न है यह उन्होंने बताया।

प्रो0 ऊ मौङ् मौङ् तिन् 83 वर्ष के हो चुके हैं। उनका विचार अपने जन्मस्थान पर एक संग्रहालय और पुस्तकालय स्थापित करने का है।

उनका कहना है कि म्यान्मार में एक तमिल राजवंश भी था। 2000 वर्ष पूर्व 'प्यू' से इसका सम्बन्ध था।

प्रो0 ऊ मौङ् मौङ् तिन् वृद्ध हो जाने पर भी मानसिक रूप से बहुत सक्रिय हैं। अधिकांश स्वाध्याय में ही उनका समय बीतता है।

उनकें साथ कई घण्टे बिताने का अवसर मिला इसे मैं अपना सौभाग्य ही मानता हूं।

वर्तमान में म्यान्मार में रामायण इन नौ संस्करणों में उपलब्ध है–

- पद्य रूप में

| ग्रन्थ नाम | रचना काल | प्रकाशित/अप्रकाशित |
|---|---|---|
| 1. राम थग्यिन् | 1775 | अप्रकाशित |
| 2. रामयगन् | 1784 | प्रकाशित |
| 3. अलौ-दौ राम थग्यिन् | 1905 | प्रकाशित |

- गद्य रूप में

| | | |
|---|---|---|
| 1. राम वत्थु | 17 वीं शताब्दी | प्रकाशित |

| | | | |
|---|---|---|---|
| 2. | महाराम | 18 वीं शताब्दी उत्तरार्ध<br>अथवा 19 वीं का पूर्वार्ध | प्रकाशित |
| 3. | राम थोन्म्यो ज़त्तो जी कुत्थु | 1904 | प्रकाशित |

➢ नाट्य रूप में

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1. | थिरि राम | 18 वीं शताब्दी का उत्तरार्ध<br>अथवा 19 वीं का पूर्वार्ध | अप्रकाशित |
| 2. | पोन् – डो राम प्रथम खण्ड | 1880 | प्रकाशित (अपूर्ण) |
| 3. | पोन्तो राम लक्खन | 1910 | प्रकाशित (अपूर्ण) |

म्यान्मार में यह कथा कब आई यह अब भी विचार का विषय बना हुआ है। वाचिक परम्परा में यह बहुत पूर्व तक चली जाती है– बर्मा के प्रथम राजा अनवरथ (1044-77) के काल तक। बगान में एक विष्णु मन्दिर है जिसमें पत्थरों पर राम और परशुराम की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। इसी तरह वहां के पारत्लाइक पगोडा की पक्की मिट्टी से बनी जातक फलक शृंखला में रामकथा का अंकन है।

म्यान्मार में मोन् लिपि में दो अभिलेख मिले हैं, एक बगान में और दूसरा थाटोन ज़िले में जिनमें राजा क्वान्सित्थ ने अपनी प्रजा से कहा है कि अपने पूर्व जन्म में अयोध्यापुर के राम के वंश में वह पैदा हुआ था और उसने उस समय एक बहुत बड़ी सेना को पराजित किया था और कई पुण्य के कार्य किये थे। बगान परवर्ती काल रामकथा परम्परा मौखिक रूप में चलती रही होगी। इसका प्रमाण मिलता है 1527 ई0 की प्यू (=कविता) बुवन्नशम् थह ते खन् (सुवन्नतम जातक) के उपसंहार भाग में पाये जाने वाले उस निर्देश से जिसमें कवि शिन् अग्गो थम दी ने अपने साथी भिक्षुओं को सचेत किया था कि वे जनता को राम और हनुमान् की कथाएं न सुनाया करें। यह रामकथा के अस्तित्व का सकारात्मक प्रमाण है। इसका सकारात्मक प्रमाण भी मिलता है। यह वह सन्दर्भ है जहां तौनमू राजवंश के अन्तिम शासक (1733-52 ई0) के काल में मिन्क्याङ् बौद्ध विहार के संघराज मिन्क्याङ् सयादौ ने रावण द्वारा बहिष्कृत विभीषण को एक विश्वास पात्र सहयोगी के रूप में अपना लेने की राम की सूझ बूझ की और फिर उसका कहना मान कर उसी तरह चलने की प्रशंसा की है।

म्यान्मार की रामकथा में कतिपय पात्रों के नामों में अन्य देशों की रामकथा की तुलना में भेद है। रावण का नाम वहां थसगिरि (संस्कृत रूप– दशग्रीव) है, और शूर्पणखा का गम्बी। रावण के जन्म का वृत्तान्त भी वहां सर्वथा नये ढंग का है। इयन्तक नाम का राक्षसों का एक राजा था। उसके निगम्बी (एक अन्य संस्कृत संस्करण के अनुसार नियक्क खमा) नाम की एक पुत्री हुई। वह इतनी धार्मिक थी कि उसने सांसारिकता का परित्याग कर तपस्या का मार्ग अपना लिया। ब्रह्म मन्त्र का वह जप करती रहती थी जिससे भगवान् ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर उसे वर दिया कि उसे पुत्र लाभ होगा। उसने भगवान् को आम के पेड़ की एक डंडी भेंट चढ़ाई जिस पर दस फल लगे थे। इसके फलस्वरूप उसके एक पुत्र हुआ जिसके दस सिर थे। बाद में उसके दो और पुत्र हुए कुम्भीकन्न (कुम्भकर्ण) और बिभीसन (विभीषण)। जब वे सब राजधानी में लौट आये तो दसगिरि लंका का राजा बना दिया गया।

समय बीतने पर अर्थवती (एक अन्य संस्करण के अनुसार अर्सावती) ~~पास~~ आम की एक बेल का फल खाने पर दसगिरि दुराचार में लिप्त हो गया। एक दिन जब वह अपने विमान से जा रहा था तो गन्धमादन पर उसे एक अप्सरा दिखाई दी। जैसे ही उसने उससे बलात्कार करने का प्रयास किया वैसे ही उसने उसे शाप दिया और स्वयं आग में कूद कर उसमें भस्म हो गई। वही बाद में एक कन्या के रूप में जन्मी जिसे एक बक्से में रख कर समुद्र में प्रवाहित कर दिया गया। बक्से को लहरों ने उस स्थान पर ला दिया जहां महाराज जनक हल चला रहे थे। उन्होंने बक्सा खोला, कन्या को निकाला, उसे पुत्री बना लिया और अपने साथ उसे राजधानी मिथिला में ले गये। वह कन्या सीता ही थी। उसका स्वयंवर उन्होंने रचाया। बाद की कहानी बहुत कुछ वही है जो अन्य रामायणों में पाई जाती है।

म्यान्मार की एक नाट्य प्रस्तुति में यह देखने में आया कि मारीच जब स्वर्ण मृग का रूप धारण कर श्रीराम की कुटिया के आसपास कूदता-फांदता है तो सीता उस पर आकृष्ट होकर श्रीराम को उसे पकड़ने को कहती है। श्रीराम धीरे से लक्ष्मण से कहते हैं कि यह सब माया है।

# धर्मरक्षणम् ––– ( मौलिक नाटक )

## लेखक – भूपति लक्ष्मीनारायणः ( श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय )

धर्म का वास्तविक स्वरूप क्या है ? धर्म के कितने प्रकार हैं ? क्या युग के साथ धर्म भी परिवर्तित होता है अथवा नहीं ? क्या ऐसे शाश्वत धर्म का अस्तित्व सम्भव है जो कभी परिवर्तित नहीं होता ? इन सभी प्रश्नों के उत्तर ही श्री भूपति लक्ष्मीनारायण का छः अंकों का प्रस्तुत नाटक ' धर्मरक्षणम् ' है। धर्म क्या है और उसकी रक्षा किस प्रकार, कैसे और किससे की जाती है, यही नाटक का विषय है। इस अत्यधिक आध्यात्मिक प्रश्न का उत्तर भूपति जी ने महाभारत के उस कथानक में ढूंढ़ निकाला है, जब कौरवों का अत्याचार सीमातीत हो गया था, सभी क्षत्रिय विलासिता में डूब गये थे। भीष्म और धृतराष्ट्र जैसे व्यक्ति द्रौपदी की असहाय अवस्था में कुछ न कर सके। युद्धिष्ठिर जैसे तपस्वी उपाधिकारी भी जुए में अपना सब कुछ हार कर भाई तथा स्त्री तक को दांव पर लगाने से नहीं चूके। ऐसी अवस्था में युग धर्म संकट में था, श्रीकृष्ण ने गीता में अपनी निम्नलिखित घोषणा के अनुसार –

- धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे '

अपना कर्तव्य पालन करना था, इसलिए उन्होंने धर्म के रास्ते में जो व्यक्ति बाधक स्वरूप सिद्ध हुए उन सबको मृत्यु के घाट उतार दिया। अधर्मी कौरवों को हरा कर धर्मावलम्बी पाण्डवों की विजय करवाई। जिस किसी प्रकार से भी धर्म की संस्थापना करनी थी इसलिए धार्मिक पुरुष में भी जहां श्रीकृष्ण ने थोड़ी सी दुर्बलता आती देखी झट उसी समय उसे दण्डित किया, पाण्डवों का 13 वर्ष का वनवास भी उनके जुआ खेलने जनित दोष को दूर करने के लिये ही था, जब अधर्मियों का इस पृथ्वी से लोप हो गया था तो जिन्हें विजय का मद आ गया था उनका नाश करना भी श्री कृष्ण ने अपना कर्तव्य समझा इसीलिए मदोन्मत्त यादव वंश का नाश भी श्री कृष्ण की अपनी इच्छा से ही हुआ।

### कथानक ––

श्री कृष्ण दुर्योधन के पास शान्ति सन्देश ले कर जाते हैं किन्तु दुर्योधन उनकी बात नहीं मानता और श्रीकृष्ण को निराश हो कर लौटना पड़ता है। श्री कृष्ण भीष्म, द्रोण आदि को इस बात के लिये दोषी ठहराते हैं कि वे भी दुर्योधन को समझाने में असमर्थ हैं। श्रीकृष्ण बताते हैं कि बहुत भयंकर युद्ध होगा, जिसके परिणामस्वरूप असंख्य व्यक्तियों की हत्या होगी, कौरवकुल का नाश हो जायगा, इतनी हानि होगी जिसका अनुमान लगाना कठिन हो जायगा। भीष्म और द्रोण कुल नाश न चाहते हुए भी असमर्थ हैं और वे दुर्योधन की आज्ञा से बाहर नहीं जा सकते। वे यह भी कहते हैं कि इस समय युद्ध से पीछे हटना सबके लिये अयशस्कर होगा। श्री कृष्ण उन्हें समझाते हैं कि बुरे कार्य को न करने से अयश कभी नहीं होता, अयश तो ऐसे कार्यों से हुआ है जो उनके परिवार में हो चुके हैं। द्रौपदी का चीर हरण आदि ऐसी घटनाएं हैं जिससे उनका बहुत अधिक अयश हो चुका है। उनके पापों की इतनी बड़ी सूची बन चुकी है कि अब उनका नाश युद्ध रूपी यज्ञ में ही होगा जिसमें कौरव पशुओं की आहुति दी जायगी। अन्त में श्रीकृष्ण निराश होकर वापिस लौट जाते हैं किन्तु जाते समय कुछ दूर तक कर्ण को अपने साथ ले जाते हैं और रास्ते में उसे उसके जन्म का रहस्य बताते हैं कि वह पाण्डवों का सगा भाई कुन्ती का पुत्र है किन्तु कुमारावस्था में

ही उत्पन्न होने के कारण उसे नदी में बहा दिया गया था। कर्ण इस रहस्य का भेद खुलने पर बड़ा खिन्न होता है।

इधर दुर्योधन और दुश्शासन परस्पर वार्तालाप करते हुए कहते हैं कि कर्ण सूत पुत्र नहीं है उसके शील, सौजन्य, शौर्य और उदारता आदि गुणों से ऐसा प्रतीत होता है मानो वह बहुत ही उच्च कुलोत्पन्न है। श्री कृष्ण से भेंट होने के पश्चात् वह उद्विग्न सा प्रतीत होता है और भीष्म के द्वारा सूतपुत्र कहे जाने पर बहुत क्रोधित हुआ तथा उसने प्रतिज्ञा की कि पितामह भीष्म के मरने से पहले वह शस्त्र ग्रहण नहीं करेगा। इतने में ही स्वयं कर्ण उपस्थित हो जाता है और दुर्योधन से क्षमा मांगता हुआ कहता है कि उसे दुःख है कि उसे ऐसी प्रतिज्ञा करनी पड़ी। कर्ण दुर्योधन को यह भी बताता है कि भीष्म और द्रोण चाहे कितने ही बड़े योद्धा हों, चाहे दुर्योधन के साथ कितना ही स्नेह क्यों न हो किन्तु पाण्डवों के साथ भी उनका स्नेह कम नहीं वरन कुछ अंशों में तो पाण्डवों के साथ अधिक ही है इसलिए वे अर्जुन को अपने हाथों से कभी नहीं मारेंगे इसलिए अर्जुन प्रतिद्वन्दी या तो स्वयं था, अब यदि उसने भीष्म के मरने तक शस्त्र ग्रहण न करने की शपथ खाई तो अर्जुन का प्रतिद्वन्दी उसे ढूंढ़ना पड़ेगा।

सौभाग्य से कर्ण को अर्जुन का प्रतिद्वन्दी मिल जाता है। उद्विग्न सा कर्ण कुछ समय के लिये वन में बिहार करने के लिये जाता है, वहां उसे निषादराज एकलव्य मिलता है जो वन के हिरण मारे जाने के कारण कर्ण के सैनिकों से युद्ध करने के लिये सन्नद्ध हो कर आता है। वह कर्ण से युद्ध करना चाहता है लेकिन कर्ण उससे धनुर्विद्या की परीक्षा में उत्तीर्ण होने के पश्चात् ही युद्ध का प्रतिद्वन्दी स्वीकार करता है। एकलव्य कर्ण द्वारा निर्धारित परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाता है। इसके पश्चात् कर्ण अपने व्यक्तित्व का रहस्य मिलता है, एकलव्य प्रसन्न होता है और क्षमा मांगता है।

कर्ण को एकलव्य का जीवन वृत्तान्त जान कर ज्ञात होता है कि अर्जुन का वह घोर शत्रु है। कर्ण को अर्जुन का प्रतिद्वन्दी मिल जाने पर बड़ी प्रसन्नता होती है। वह उसे कौरव सेना में भर्ती कर लेता है। अर्जुन को पराजित करने के लिये कर्ण एकलव्य को मन्त्र द्वारा चलाने की भी शिक्षा देता है।

जब यह बात युयुत्सु द्वारा कुन्ती को ज्ञात होती है तो उसे बड़ा दुःख होता है। कर्ण और अर्जुन दोनों सगे भाई परस्पर जान के बैरी बन रहे यह सोच कर कुन्ती के दःख का अन्त नहीं रहता। एकलव्य शस्त्र विद्या में पूर्ण निष्णात होने पर कहीं सचमुच ही अर्जुन को पराजित करके उसका वध न कर दे इस चिन्ता में मग्न कुन्ती इस विषय में कृष्ण से सलाह करती है। श्री कृष्ण उसे सांत्वना देते हैं कि अर्जुन का बालबांका भी नहीं होगा, किन्तु उसे अपने मस्तिष्क में आई हुई युक्ति बताते हैं।

श्री कृष्ण को मालूम है कि निषादराज एकलव्य युद्ध रूपी यज्ञ में बाधा डालेगा इसलिए सबसे पहले उसी की आहुति देनी चाहिए। जिस वन में एकलव्य रहता है श्री कृष्ण अपना वास्तविक रूप छिपा कर उसी वन में जाते हैं और एकलव्य को बताते हैं कि उसने कौरवों की सेना में सम्मिलित होकर और अर्जुन का प्रतिपक्षी बन कर अधर्म का पक्ष लिया है। एकलव्य यह स्वीकार करते हुए भी कि उसका पक्ष अधर्म से युक्त है अर्जुन के साथ अपनी शत्रुता रूपी निर्बलता से छुटकारा नहीं पा सकता। दूसरे उसने अर्जुन से लड़ने का वचन दे दिया है अब वह वचन भंग नहीं करेगा। श्रीकृष्ण उसे बताते हैं कि श्री कृष्ण ने अर्जुन की रक्षा का वचन लिया है, उसे कोई नहीं मार सकता जो कोई भी उसे मारने का प्रयत्न करेगा उसे अपनी प्राण रक्षा करनी कठिन हो जायगी। इस पर एकलव्य कहता है कि श्री कृष्ण के हाथों मरने पर उसे दुःख नहीं होगा वरन यह बात उसके गौरव के लिये ही होगी।

श्री कृष्ण कहते हैं कि यह आवश्यक नहीं कि श्री कृष्ण एकलव्य को युद्ध में मारें वे उसे युद्ध से पहले भी मार सकते हैं इतना कह कर वे तलवार निकाल कर एकलव्य के हृदय में भौंक देते हैं। गिरते हुए एकलव्य को अपने बाहुपाश में भर कर श्री कृष्ण अपना सत्य स्वरूप प्रकट कर देते हैं। एकलव्य अन्तिम समय श्रीकृष्ण के दर्शन कर शान्तिपूर्वक मृत्यु का आलिंगन करता है। श्रीकृष्ण अट्टहास करते हुए यह घोषणा करते हैं कि इस युद्ध रूपी यज्ञ में जो कोई भी रुकावट डालेगा, उसका यही परिणाम होगा। घटोत्कच से लेकर अभिमन्यु पर्यन्त सभी लोग शलभों की भांति मारे जायेंगे। सबसे पहले आहुति उसमें एकलव्य की है। नाटक की समाप्ति यहीं पर हो जाती है।

## नाटक और उद्येश्य —

जैसा कि नाटककार स्वयं कहता है कि धर्म के स्वरूप के विषय में दार्शनिकों में परस्पर बहुत अधिक मतभेद है किन्तु कुछ तत्त्व ऐसे हैं जिनके विषय में बहुत ही कम मतभेद हैं जैसे समाज के अधिकतम तथा उच्चतम सुख के लिये हमें हम और क्षुद्रतम सुखों की आहुति देनी पड़ेगी। न्याय का पक्ष सबल करने के लिये अन्यायी और पापी का वध करने में धर्म की वृद्धि ही होती है। इसी धारणा को लेकर भूपति लक्ष्मी नारायण ने प्रस्तुत नाटक की रचना की है। कौरवों के अत्याचार बहुत अधिक बढ़ गये थे, उनकी क्षय करके ही पुनः धर्म की स्थापना हो सकती थी, कौरव तथा उनके सहायक, जो कोई भी अधर्म का पक्ष लेगा, वह धर्म के स्तम्भ श्री कृष्ण के लिये वध्य होगा —— यही धर्म है। इसी भाव को ग्रहण कर श्रीकृष्ण के शब्द हैं ——

किरातपुंव ! — मन्यसे वा प्रकृति सिद्धं मानवत्वामिति। मानवत्वं पशुत्वं वा गुणशीलायत्तम्। न तावत् बाह्यरूपायत्तम्। किं मन्यसे कंसमागधादयोऽपि मानवा एवेति ? सतीमणिं कुलवधूं मध्ये सभं तादृशीमवस्थां नीतवन्तो द्यूतक मृगस्यौऽपि अधमा एव। को वा संशयः तादृशनर रूप राक्षसानां हितकारिणः त्वादृशा अपि राक्षसा एवेति अवश्यमेव हन्तव्या इत्यत्र च।

- किरात श्रेष्ठ, तुम मानवता को प्रकृति सिद्ध समझते हो। (किन्तु) मानवता अथवा पशुता तो गुणों पर आश्रित है। बाहर के रूप में नहीं। कंस और मागध आदि क्या मनुष्य हैं ? सतियों में मणि के स्वरूप कुल वधू को सभा के बीच ऐसी दशा करने वाले घातक पशुओं से भी अधम हैं। इसमें क्या संशय है कि ऐसे नरराक्षसों को अवश्य ही मार देना चाहिए।

## चरित्र चित्रण —

श्री कृष्ण एक ऐसी दैवी शक्ति के रूप में इस नाटक में आते हैं जो मनुष्य के घोर पाप समूह को नष्ट करने के लिये ही समय समय पर प्रकट होती हैं। श्री राम, श्री कृष्ण, बराह, नृसिंह, वामन आदि भी ऐसी ही शक्तियां थीं, जिन्होंने पृथ्वी को पाप के भार से मुक्त किया। ये दैवी शक्तियां अधिकतर तो समाज के पुण्यशाली पुरुषों के द्वारा ही अपना कार्य करती हैं, उन्हीं पुण्यात्माओं में ऐसी प्रेरणा भर देती है जिससे वे स्वयं धर्म से अनुप्राणित हो अच्छे कृत्य करते हैं और समाज से पापों का क्षय होता है, किन्तु उन सभी पुण्यात्माओं को यह कार्य कष्ट सह कर ही करने पड़ते हैं असह्य दुःख अनन्त यातनाएं सह कर ही वे लोग अपना कार्य कर पाते हैं, किन्तु कहीं — कहीं पर उन दैवी शक्तियों को स्वयं प्रकट हो कर चमत्कार दिखाने पड़ते हैं जिससे साधारण जन और

विशेषकर पापी जनों को यह तीव्र अनुभूति हो सके कि मनुष्य के कार्यकलापों के पीछे, चाहे वे अच्छे हों चाहे बुरे, दैवी शक्ति अदृष्ट रूप से उनके पीछे अवश्य रहती है। गांधारी, धृतराष्ट्र, कुन्ती, द्रौपदी और अर्जुन इन सभी पुण्यात्माओं ने धर्म के पथ पर अग्रसर होते हुए बहुत कष्ट सहे। इनके साथ ही साथ श्री कृष्ण अपनी दैवी शक्ति से इनका पथ आलोकित करते रहे। द्रौपदी के चीर हरण के समय श्री कृष्ण ने चमत्कार दिखाया तथा अन्य कई सीलों पर भी श्री कृष्ण ने चमत्कार से अपने भक्तों की रक्षा की।

श्री कृष्ण ने जिस प्रकार एकलव्य का वध किया हो सकता है कि पौराणिक धारणाओं में विश्वास करने वाले पण्डित इसे श्री कृष्ण के अवतार पुरुष होने के कारण न माने अथवा उनके चरित्र उपयुक्त न समझें लेकिन हमें देखना यह है कि दैवी शक्तियों के कार्य कलाप को समझने में मानवीय बुद्धि अल्यल्प है। किस कार्य में कौन सी भलाई छिपी है इसे मानव नहीं समझ सकता। पंचम अंक में जब अर्जुन किंकर्तव्य विमूढ़ सा होकर अपने कर्तव्या – कर्तव्य के विषय में पूछता है तो श्रीकृष्ण यही उत्तर देते हैं। इससे धर्म का अत्यन्त गूढ़ तत्व से युक्त होना सिद्ध हो जाता है।

कृपण –– पृथा नन्दन ! छुर वगाहं खलु धर्मतत्वं। प्राणिनां दुःसाधः
तत्स्वरूपनिर्णयः । अतीन्द्रियस्य धर्मस्य रक्षणार्थे कदाचित्
नश्येपुरने के निर्दोषाः। कृत्स्नमिदं विश्वं रक्ताप्लुतं भवेत्।
कृते पि महति प्रयत्ने दैवविमुखतया धर्मस्यापि हानिरापद्येत।
कदाचिद्दैवे सुमुदे पि पुरुष प्रयत्नलोपेन धर्मोपि न फलेत्।
प्रकृतिजडतया मनो दौर्बल्येन च धर्मरक्षा न घटेत। सतत प्रयत्नबलेन
अकुण्ठितचैतन्येन, अक्षय्यान्तरशक्त्या, निर्ममेन मनोनिग्रहेण निरहंकारेण
निष्काम कर्मणा च भाव्यं धर्मस्य रक्षणम्।।

(पृथानन्दन = अर्जुन)

- पृथा को आनन्द देने वाले, धर्म का तत्व गहन है। प्राणियों के लिये उसका तत्वनिरूपण करना अत्यन्त कठिन है। इस सूक्ष्म अतीन्द्रय धर्म की रक्षा के लिये कभी कभी अनेक निर्दोष भी मारे जाते हैं। यह सम्पूर्ण विश्व रक्त से भर उठता है। बहुत प्रयत्न करने पर भी दैव के विमुख होने पर धर्म की हानि हो जाती है। कभी दैव अनुकूल भी हो परन्तु पुरुष के प्रयत्न के अभाव में धर्म फलता नहीं। जड़ प्रकृति के कारण अथवा मन की दुर्बलता के कारण धर्म की रक्षा नहीं होती। सतत प्रयत्न से, सतत जागरूकता से कभी कम न होने वाली शक्ति से, कठोर मनः संयम से, अहंकार रहित होकर निष्काम कर्म करने से धर्म की रक्षा होती है।

कुन्ती

- प्रस्तुत नाटक में कुन्ती एक तपस्विनी और चिरदुःखिता के रूप में दिखाई गई है, एक ओर तो वह अपने ही परिवार में होने वाले युद्ध को रोकना चाहती है दूसरी ओर अपने पुत्रों के प्रति किये गये अत्याचारों का बदला लेना चाहती है। और अपने पुत्रों से युद्ध की अपेक्षा करती है। उसके एक ही वाक्य में उसके मन का संघर्ष द्योतित हो जाता है। श्री कृष्ण सन्धि के लिये कौरवों के पास गये थे किन्तु उनका सन्धि का प्रयत्न विफल हुआ। इस पर कुन्ती कहती है ––

- माधव ! व्यर्थफलो नु ते सन्धि प्रयत्नः। इतः परमपि क्षात्र धर्मे प्रवर्तते धर्मजः उत याचक

वृत्तिमवलम्ब्य वंश प्रतिष्ठाया मां मापादयसि ।

- ' हे माधव, तुम्हारा सन्धि का प्रयत्न निष्फल हो गया । इस पर भी धर्मराज युद्धिष्ठिर छात्र धर्म में प्रवृत्त होता है अथवा मांगने वालों जैसी वृत्ति का आलम्बन ले वंश की प्रतिष्ठा भंग करता है ।

- कुन्ती एक वीर माता है और कभी भी अपने पुत्रों को युद्ध से विमुख हुआ नहीं चाहती है । श्री कृष्ण कुन्ती से पूछते हैं कि दुर्योधन का उत्तर मैं तुम्हारे पुत्रों को सुनाने जा रहा हूं तुम्हारा उनको क्या सन्देश दूं तब वह वीरता से सने शब्दों में अपने पुत्रों को सन्देश भेजती हैं ।

- कुन्ती – माधव ! कुल धर्मः निजवंशोचितस्तरवृत्तिश्च सर्वदा परिपालनीयौ भवद्भिरित्यतः अन्यः कोवास्ति सन्देशः । कृते पराक्रमे जीवन वृत्तेः राज्ञां नास्तीतरा वृत्तिरिति त्वं जानासि । निस्तेजस्कतया यान्ची वृत्या लब्धा संपत् दैन्यावहा हैया चेति न जानीति किं धर्मजः ?

- हे कृष्ण कुल के धर्म के अनुसार अपने वंश के अनुकूल वीरत्व भाव आप सबको पालन करना चाहिए इसके अतिरिक्त और क्या सन्देश हो सकता है । पराक्रम के अतिरिक्त राजाओं की और कोई वृत्ति नहीं है ऐसा तुम जानते हो । तेज से हीन भांगने वालों जैसी वृत्ति जैसी वृत्ति का आलम्बन लेकर ली हुई संपत्ति अत्यन्त हीन है ऐसा धर्मराज युद्धिष्ठिर क्या जानते नहीं ?

कुन्ती के इन्हीं वीरता से भरे शब्दों से उसकी वीर जननी होने का सबल प्रमाण मिल जाता है ।

कुन्ती ने अपने बाल्यकाल से ही अनन्त दुःख सहे थे । भगवान् से उसकी प्रार्थना कितनी करुणा भरी है ——

दयानिधे ! किं न शृणोषि मदीयामम्यर्थनाम् । दुःख भावजमिदं जीवितामिलोपि कियन्तं कालं मां अति वाहयिष्यासि ? बाल्य एव मदीयान्तरंगे अनिर्वापणीयमनलं सुन्धुक्षित वानसि ।

हे दया के निधान क्या तुम मेरी प्रार्थना नहीं सुनते हो । इस दुःख से भरे हुए जीवन का भार मैं कब तक सहूंगी । बाल्यकाल से लेकर आज तक मेरे भीतर अग्नि जल रही है ।

अर्जुन एक सच्चे वीर के रूप में प्रदर्शित किया गया है ।

एकलव्य – वीरता में अर्जुन और कर्ण सदृश तथा अपने हठ का पक्का एकलव्य सच्चा निषादराज है । उसे यदि किसी से वैर है तो वह आजन्म रहेगा, चाहे उसे समझाने वाले स्वयं श्रीकृष्ण हों । वह अपने वचन का पक्का है । वचन तोड़ना उसके लिये मृत्यु से भी बढ़ कर है तभी वह कहता है ——

एकलव्य – राजन् । धर्मो वा भवतु अधर्मो वा भवतु । अविमृश्यकारिणा मया दत्तं वचः अधुना विज्ञायापि

कथमहं करिष्ये वचो मे ? न सम्भवेत्कदाचिमपि।

हे राजन चाहे यह धर्म हो चाहे अधर्म। बिना सोचे समझे मैंने वचन दे दिया है। अब जान कर भी मैं वचन कैसे तोड़ सकता हूं। यह मेरे लिये असम्भव है।

वह श्रीकृष्ण के हाथों मृत्यु प्राप्त करना चाहता है और इसे अपना गौरव समझता है।

भाषा और शैली —

~~छ अंकों का मौलिक नाटक~~ ' धर्मरक्षणम ' धर्म की प्राचीन मान्यताओं को एक नवीन रूप देता है। जिस धर्म की परिभाषा करने में बड़े दार्शनिक असमंजस में पड़ गये, नाटककार ने नाटक के रूप में दृष्टान्त स्वरूप उस धर्म की परिभाषा बड़े सरल और मनोरम रूप में कर दी है।

नान्दी के श्लोक के अतिरिक्त नाटककार ने सर्वत्र गद्य का प्रयोग किया है। यहां तक कि भरत वाक्य की भी आवश्यकता नहीं समझी। पद्यात्मक कथोपकथन के बिना भी नाटक सम्भव है यह नाटककार ने सिद्ध कर दिया। ~~इस दृष्टिकोण से नाटक बिल्कुल मौलिक समझा जायगा।~~

नाटक में श्रीमदभगवद् गीता के श्लोकों का सार थोड़े से शब्द परिवर्तित करके कई स्थानों पर रखा गया है। इससे प्रकट होता है कि लेखक गीता के दर्शन का अनुयायी है और धर्म के सम्बन्ध में भी गीता की परिभाषा को ही मान्यता देता है।

पंचम अंक में अर्जुन के पूछने पर श्री कृष्ण धर्म की सूक्ष्मता की ओर ~~अर्जुन~~ का ध्यान दिलाते हैं —

कृष्ण — अर्जुन । मा भूः कृपणः किमैहिक सुखलामेनैव धर्मन्यायययोः निर्णयः। अतीन्द्रियः खलु धर्मः। तस्य फलमपि न करण गोचरम् —

अर्जुन दिल छोटा न करो। क्या इस लोक का भौतिक सुख ही धार्मिक न्याय का निर्णय है। धर्म तो अत्यन्त सूक्ष्म है इन्द्रियों से विहीन है। उसका फल भी कानों से सुनाई नहीं देता।

प्रस्तुत नाटक की भाषा सरल और सुबोध है, लेखक ने अपने हृदय के भाव सरलतम भाषा में रखने ही उचित समझे किन्तु फिर भी संस्कृत में प्राचीनता की छाप है।

नान्दी के पश्चात् एकाएक नाटक आरम्भ हो जाता है, सूत्रधार और नटी द्वारा नाटक के लेखक का नाम तथा स्वयं नाटक के विषय में नाटककार ने कुछ भी कहना उचित नहीं समझा, इसका कारण कथानक की अति प्रतिद्धि और अति प्राचीनता भी हो सकता है और नाटककार की नाटकों के क्षेत्र में नये प्रयोग की इच्छा भी ~~हो सकता है।~~

# माला भविष्यम्

स्कन्द शंकर खोत ' लाला वैद्यम ' की तरह ही ' माला भविष्यम् ' भी स्कन्द शंकर खोत द्वारा लिखित आधुनिक लघु नाटक है। इसमें बहुत ही सरस ढ़ंग से आधुनिक पत्रों में निकलने वाले आपका भविष्य वाले स्तम्भ पर छींटा – कशी की है। इस नाटक के लिखने की एक कहानी भी है। एक ज्योतिषी ने लेखक को कहा कि एक वर्ष के भीतर ही लेखक के घर में पुत्र जन्म होगा। लेखक को पुत्र की आकांक्षा नहीं थी लेकिन पुत्र – जन्म जैसा ही आनन्दकारी कार्य उन्होंने माला भविष्यम नामक लघु नाटक लिख कर किया। वर्ष बीत जाने पर भी पुत्र – जन्म नहीं हुआ। फिर भी ज्योतिषी की भविष्य वाणी सत्य ही हुई ( नाटक की उत्पत्ति के कारण ) ऐसा लेखक का मत है।

## कथा

बम्बई नगरी के प्रसिद्ध स्थान चौपाटी में सांयकाल के समय सभी लोग भ्रमण करने के लिये निकलते हैं, चने आदि बेचने वाले भी वहां आ जाते हैं। विभावरी और प्रभाकर नाम के पति – पत्नी भी भ्रमणार्थ वहां आते हैं। विभावरी चने खाने की इच्छा करती है। चने वाले के पास भीड़ होने के कारण प्रभाकर विभावरी को एक जगह बैठा कर स्वयं चने लाने चला जाता है। इधर विभावरी के अकेले रह जाने के कारण एक व्यक्ति उसके गले का हार खींच कर भाग जाता है। विभावरी चोर – चोर चिल्लाती है, शोर सुन कर प्रभाकर भी चने लेकर तेज़ी से भागता है। दो सिपाही प्रभाकर को भागते देख कर उसे चोर समझ कर थाने में ले जाते हैं। दूसरी ओर से असली चोर भी पकड़ा जाता है और थाने लाया जाता है। वहां पर विभावरी की माला उठाता है वह प्रभाकर का बचपन का मित्र ही होता है। दोनों पति – पत्नी तथा कृष्णन ( हार का चोर, प्रभाकर का मित्र ) इकट्ठे ही थाने से निकलते हैं। दोनों मित्र इस विचित्र मिलन पर बहुत प्रसन्न होते हैं। कृष्ण को प्रभाकर बताता है कि अमुक व्यक्ति की आज सुवर्ण चोरी जाने की भविष्य वाणी निकली थी इसीलिए जो असली स्वर्ण माला थी वह घर पर ही रखकर विभावरी नकली माला पहन कर आई थी और वही चोरी भी हो गई। उधर कृष्ण कहने लगा कि मेरी राशि वालों को आज के दिन 4 बजे से लेकर 6 बजे तक धन लाभ लिखा था सो मैंने माला लेकर भाग जाना उचित समझा। प्रभाकर और विभावरी दूसरे दिन कृष्ण को अपने घर आने का निमन्त्रण देकर उससे विदा लेते हैं। घर आते ही जिस व्यक्ति के साथ ये दम्पति रहते थे, वह सूचना देता है कि मैं राशि भविष्य पर भाषण देने गया हुआ था जब लौट कर आया तो मैंने अपने द्वार पर खड़े एक व्यक्ति को आपके कमरे में से माला ले जाते हुए देखा है मेरे चिल्लाने पर वह भाग खड़ा हुआ है। विभावरी अपनी असली माला घर पर ही छोड़ गई थी। माला अपने स्थान पर नहीं थी अतः उसे वही व्यक्ति चुरा कर ले गया होगा। अब तो भविष्यवाणी पूर्णतया सत्य हो गई। इतने में कृष्ण भागता हुआ आता है और प्रभाकर से कहता है कि भविष्य वाणी सत्य हो गई मुझे यह चमकती हुई माला की प्राप्ति हुई। विभावरी माला को देख कर कह उठती है कि यह तो मेरी माला है तुम्हें कैसे मिली। कृष्ण बताता है कि मैं जब आप दोनों से विदा लेकर घर जाने लगा तो रास्ते में टार्च के प्रकाश में मैंने देखा कि दो व्यक्ति द्रव्य का विभाजन कर रहे थे। मुझे देख कर डर के मारे भाग खड़े हुए, यह माला छूट गई। माला उठा कर मैं आपको दिखाने के लिये लाया था। प्रभाकर और विभावरी वह माला कृष्ण को ही भेंट कर देते हैं। उस समय प्रभाकर का पड़ोसी जो राशि भविष्य लिखता था उल्लास से कहता है कि मेरी भविष्य वाणी सत्य निकली। कृष्ण और प्रभाकर के पूछने पर कि ज्योतिष का अध्ययन कहां से किया, वाराह निहिर बताता है कि वह पांडुरंगाचार्य घटचोर का शिष्य रह चुका है। कृष्ण, जो कि पांडुरंगाचार्य घटचोर का पुत्र था कहता है कि उसके पिता की तो पांच वर्ष पहले मृत्यु हो चुकी है। तब वाराहमिहिर बताता है कि मैंने अपने प्रचार के लिये झूठी

कहानी रची हुई है वास्तव में मैंने ज्योतिष कहीं भी नहीं पढ़ी। मैंने तो धन – लाभ के लिये यह प्रपंच रचा है। बम्बई जैसे बड़े शहर में किसी को धन लाभ किसी को धन – हानि किसी का विवाह सम्बन्ध आदि होते रहते हैं इसलिए जिसका भी कार्य मेरे कथन के अनुसार हो जाता है वही राशि भविष्य को सच समझने लगता है वैसे इसमें मेरा तो केवल वाणी विलास ही है और कुछ नहीं।

## – व्यंग –

माला भविष्यम् नामक नाटक को केवल सामाजिक नाटक न कह कर सामाजिक व्यंग प्रधान नाटक कहा जाय तो अधिक उपयुक्त होगा क्योंकि इसमें स्थान स्थान पर समाज की कमज़ोरियों को बड़े ही व्यंगात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है। पुलिस वाले बिना अच्छी तरह परीक्षा किये जिस किसी को पकड़ कर थाने में ले जाते हैं उन्हें तो केवल यह दिखाना होता है कि वे कार्य – रत हैं। कुछ कर रहे हैं। क्या कर रहे हैं यह सोचने का उन्हें अवकाश नहीं है। प्रभाकर अपनी पत्नी की आवाज़ सुन कर चने गांठ में बांध कर दौड़ता है तो पुलिस वाले उसी को चोर समझ कर पकड़ लेते हैं। प्रभाकर के यह कहने पर भी कि इसमें केवल चने हैं वे लोग अपनी ही धुन में कहे जाते हैं कि तुम हमें बहकाओ नहीं। तुम्हीं चोर हो –– इस स्थान का लेखक ने बड़ा ही सजीव चित्रण किया है।

( प्रभाकरं धावन्तं गृहीत्वा हस्ताभ्याम् )

पुत्र पलायसे जानामि चोर लक्षणम् सम्पूर्णत्वेन। पंचविंशति संवत्सर पर्यन्त जीविकोद्यमस्तु अयमेव अस्माकम्। बहवस्ते सदृशाः चौराः गृहीताः कारावासं प्रेषिताः भग भगाय, मान वेष धारिणः संभावितदृशः।

अर्थात् ( भागते हुए प्रभाकर को हाथों से पकड़कर )

कहां भाग रहे हो, मैं पूर्ण रूप से चोर के लक्षण जानता हूं। पच्चीस साल से यही हमारी जीविका वृत्ति रही है। बहुत से तुम्हारे जैसे अच्छे दिखाई देने वाले और चमकते हुए वेश को धारण करने वाले चोर हमने पकड़े हैं और उन्हें कारावास में भेजा है।

वैसे इसी स्थल का एक दूसरा पक्ष भी है। आजकल शुभ्र – वस्त्र – धारी चोरों का युग है। यदि पुलिस वाले यही सोचते रहें कि मैले कुचैले कपड़ों वाला व्यक्ति ही चोर हो सकता है तो शायद वह किसी भी चोरी का पता न लगा सके। आज कल वास्तविक चोर और संभावित चोर में भेद कर पाना असंभव है। रक्षक चैतु के शब्दों में सुनिए ––

शीर्षकं शोभते शीर्षभागे। पदत्रं राजते पादभागे। लोल वासो लसति मध्यभागे। प्रसरति प्रावारको वक्षस्थले शिष्टत्वसूचकं ललति सर्वम्। हृदयं परं चौर्यकर्मावलिप्तम्।

ॐ
उर्णोति किं वाससा दुष्ट हृदयम्।
शिष्टस्य चोरस्य जाने न भेदम्।।

अर्थात् सिर पर शिरोवस्त्र हैं। पाद में जूते हैं। मध्य भाग में चंचल वस्त्र हैं। वक्षःस्थल में उत्तरीय कोट हैं। शिष्टत्व का सूचक सब कुछ सुशोभित हो रहा है। पर मन चोरी के काम में लगा है। नीच हृदय वस्त्र से क्या ढांपता है शिष्ट चोर का भेद जानने में नहीं आता।

अब वास्तविक चोर पकड़ा जाता है तो उसका भी वेश उतना ही शुभ्र है। रक्षक समझ नहीं पाते कि वास्तविक चोर कौन है इसीलिए रक्षक भल्लुः कहता है :—

ज्ञायते यत् संभाविताः सर्वे सुचारुवेशधारिणः चौराः संजाताः उत चौराः चारुवेशधारिणः सम्भाविताः सम्भूताः।

अर्थात् ऐसा मालूम पड़ता है कि सभी भले और अच्छे वस्त्र धारण करने वाले व्यक्ति चोर बन गये अथवा चोरों ने ही शुभ्र वेश धारण करके भले लोगों का अनुकरण करना आरम्भ कर दिया है। आज के समाज में वास्तव में कौन क्या है इसका पता लगा सकना बहुत ही कठिन है। आज के युग में ज्योतिष का समाज में क्या स्थान है इसका परिचय हमें चोर के निम्नलिखित कथन द्वारा मिल जायेगा। चोर द्वारा किये जाने वाले का कारण पूछने पर उसका उत्तर सुनिए ——

समाचार पत्रे अद्य प्रभात समये राशिभविष्यं मया पठितं यत् कन्याराशिर्येषां तेषां भवेत् अद्यलाभः सायं समये सप्तवादन समयात्प्राक्। चिन्तितं मया मनसि पठित्वा तद भविष्यं धत् धनप्राप्तिरवश्यं कर्तव्या इति। सायं समये चौपाटीं गत्वा दृष्टा च मया एकाकिनी स्थिता एका युवती। तस्याः कंठे यत्किमपि चलुलोलं चकासतं दृष्टवा उज्वलं मे भविष्यमहमपश्यम्। सहसा बलात् कंठगतां मालां तस्याः परिगृह्य पलायितो हं सप्तवादनघोषकान् सप्तघंटानादान् शृण्वन्।

अर्थात् आज प्रातःकाल समाचार पत्र में मैंने राशि भविष्य पढ़ा था उसमें लिखा था कि जिनकी कन्या राशि है उनको आज सन्ध्या काल को सात बजे से पहले उन्हें लाभ होगा। यह पढ़ कर मैंने सोचा आज धन की प्राप्ति अवश्य करनी चाहिए। सन्ध्या काल को चौपाटी जाने पर मुझे एक अकेली युवती दृष्टिगोचर हुई। उसके गले में कुछ चमकता हुआ सा देख कर मुझे अपना ही भविष्य उज्ज्वल लगा, बलपूर्वक उसके गले से चमकती हुई माला लेकर भाग निकला उसी समय मैंने सात बजने का घंटा भी सुना।

जिस तरह भविष्य पढ़ कर चोरी की जाती है उसी भविष्य पढ़ कर चोरी का परिहार भी किया जाता है। प्रभाकर भी थाने में स्थित व्यक्तियों को बताता है कि चोरी में गई माला नकली थी क्योंकि ——

मयापि अद्य समाचार पत्रे प्रगे वाचितं यत् मिथुनराशिर्यस्य तस्य भवेत् धन हानि रद्य इति। मम पत्न्याः मिथुन राशिः। यदा आवां सायं चौपाटीं गन्तुमुद्यतौ तदा अहं पत्नयै एकां काचमणि प्रोतां मालां सुशोभनां दत्तवान्। तथापि सुवर्णविद्धा मुक्तामणिमाला गृहे स्वस्थ पेटिकायां निधाय कंठगता कृता काचमणिमाला चतुराणकैः क्रीता।

अर्थात् मैंने आज सुबह समाचार पत्र में पढ़ा था कि जिसकी मिथुन राशि होगी उसकी आज सायंकाल को धन हानि होगी। मेरी पत्नी की मिथुन राशि है। जब हम सन्ध्या को चौपाटी आने के लिये प्रस्तुत हुए तब मैंने पत्नी

को कांच के मोतियों की सुन्दर माला दी। उसने भी सुवर्ण की मुक्ता मणि माला अपनी पेटिका में रख कर चार आने की खरीदी हुई माला अपने गले में डाल दी।

आजकल प्रत्येक क्षेत्र में धांधली चल रही है फिर चाहे वह कार्य आदर की दृष्टि से देखा जाता हो चाहे हेय दृष्टि से। वाराहमिहिर नाम के व्यक्ति को जो अपने आपको पांडुरंग शास्त्री का शिष्य बताता है, जब यह मालूम पड़ता है कि कृष्ण उन्हीं पांडुरंग शास्त्री का पुत्र है तो सम्पूर्ण परिस्थिति ही बदल जाती है। तब वह पांडुरंग शास्त्री के पुत्र से क्षमा मांगने लगता है।

कृष्णमहाभाग! क्षमां याचे। असत्यमेव एतन्सर्व यन्मया उक्तम्। न मया कदाचिदपि ज्योतिषशास्त्रस्य अध्ययनं कृतं तत्र, परं पांडुरंगशास्त्रि शिष्योहमिति उदघोषयामि सर्वत्र। तद् ज्ञात्वा समाचारपत्रसंपादकेन एकेन विपुलधनदानेन नियुक्तोहं राशिभविष्यलेखनार्थं प्रतिदिनम् नामापि मया वराह मिहिरः इति स्वीकृतम्।

अर्थात् कृष्ण महोदय, मैं क्षमा याचना करता हूं। यह सब झूठ ही है जो मैंने कहा। कभी भी मैंने ज्योतिष शास्त्र का अध्ययन नहीं किया पर मैं पांडुरंग शास्त्री का शिष्य हूं यह सब जगह घोषित कर देता हूं। यह जान कर एक समाचारपत्र के सम्पादक ने पर्याप्त धन पर मुझे प्रतिदिन राशि भविष्य लिखने के लिये नियुक्त कर लिया। नाम भी मैंने वाराहमिहिर ही रख लिया।

दूसरों के लिये सच्ची भविष्य वाणी करने वाला व्यक्ति स्वयं कितना बड़ा झूठ बोल सकता है इस पर शीघ्र विश्वास नहीं हो पाता।

## — शैली —

शब्द चित्र — लेखक शब्द – चित्र खींचने में सिद्धहस्त है। बम्बई नगरी के चने बेचने वाले भी कितने वाक् चतुर होते हैं तथा कयकला निपुण होते हैं इसका कितना सजीव चित्रण लेखक ने किया है।

चाणविकः – हं हो मम मित्र। हं हो मम मित्र। चणकं चंड तिग्मम्। चणकं जोषकरं तोषकरं पोषकरम्। चणकं स्वादु मृषम्। भक्षय सकृत्।

एक और शब्दचित्र देखिए जिस समय बहुत अधिक भीड़ में कोई घटना हो जाती है तो सब व्यक्ति प्रश्नों की बौछार लगा देते हैं। जिस व्यक्ति के साथ घटना घटित हुई हो वह चाहे उन सभी प्रश्नों को उत्तर दे सके या न दे सके। जिस समय विभावरी का हार चोर लेकर भाग जाता है उस समय उससे क्या क्या नहीं पूछा जाता।

जनाः – किं जातं किं भूतं किं भूतं, का कथा, किं सम्पन्नं, केन किं कृतम्। किं चोरः। कुत्र गतः। किं नीतम्। हारः नीतः। सुवर्णमयः कंठस्थः।

लोग :– क्या हुआ, क्या हुआ, क्या बात है, क्या हो गया, किसने क्या किया। क्यों चोर है ? कहां गया ? क्या

ले गया ? हार ले गया। सोने का, कंठ में पहिना हुआ।

लेखक ने उपयुक्त सीलों पर गीतों को स्थान दिया है जो आधुनिक नाटक होने के कारण सुरुचिपूर्ण हैं। किन्तु किसी किसी स्थल पर अनुचित स्थल पर भी गीत की सृष्टि की गई है जो अधिक ठीक नहीं लगता, जैसे विभावरी के पति को जब थाने ले जाते हैं तब उसका गीत गाना खटकता है। हालांकि गीत के भाव अच्छे हैं।

धिगहह वत अहह अहो। भालाहृता मे कंठे स्थिता सुशोभा। शाकुन्तले यथा वा। नष्टां गुलयिकं वे। कष्टान् दिनानं ददर्श। जाने कृते ममापि। माला भवेद्धि दुःखम्।

हा धिक, हाय हाय, मेरे गले की सुन्दर माला का अपहरण हो गया। जिस प्रकार शाकुन्तल में हुआ। अंगूठी खो गई। इसके बाद शकुन्तला को दुःखद दिन झेलने पड़े। मैं समझती हूं कि मेरे लिये भी माला दुःख का कारण बनेगी।

वाराहमिहिर अपनी ज्योतिष विद्या की सत्यता प्रमाणित हुई देख कर प्रसन्न होकर गाता है उस समय सभी लोग आश्चर्य चकित हो जाते हैं।

शास्त्रं ज्योतिषं सत्यं शिवं सुन्दरम्। भासते शोभनं लोभनं, लसति ललामम्। आभिवादये मित्रं परम्। सकलग्रहेशम्। शास्त्रं ज्योतिषम्।

## चरित्र चित्रण

प्रभाकर – ज्योतिष विद्या में विश्वास करने वाला साधारण युवक है। पत्नी की हर इच्छा की पूर्ति करना वह अपना कर्तव्य समझता है। बचपन का मित्र मिल जाने पर बहुत अधिक प्रसन्न होता है। भ्रमण – शील व्यक्ति है।

## दो विशिष्ट चरित्र

चाणविक – प्रत्येक बड़े शहर में हमें इसके दर्शन होंगे। अत्यधिक वाक् – पटु और अपने आस – पास होने वाली सभी घटनाओं से परिचित होता है। अपने प्रत्येक ग्राहक को प्रसन्न रखना भी इनकी एक विशेषता होती है। बहुत से बालक चने वाले को घेर कर खड़े हो जाते हैं। वह किसको क्या उत्तर दे तथा सभी ग्राहकों को किस तरह निपटाये यह गुर वह अच्छी तरह जानता है। उसकी जिह्वा एक क्षण के लिये भी बन्द नहीं होती यह एक और बड़ी विशेषता है। वह चने भी देता है और साथ ही उसकी जिह्वा भी अविरल गति से अपना कार्य करती जाती है। देखिए –:

ददामि ददामि हं हो मम मित्र। बालक मित्र चणकं जोषकरम्। चणकं स्वादु भृष्टम्। चणकं चंडंतिग्मम्। लवणावतं विवतावतं जंबीरसेन च संसिक्तं संसृष्टं बाढं बाढ़ं भृशं भृशं आम्ल युतम्। ददामि चणकं तुभ्यं भृष्टं भृष्टं बहुपुष्टम्।

चने बेचने वाले की दृष्टि में प्रतिदिन चोरी आदि की घटनायें आती रहती हैं अतः वह इनसे अधिक प्रभावित न होकर अपनी कार्य करने में संलग्न रहता है तथा सभी को अपनी तरह ही निरलेप रहने की सलाह देता है। अपने आस पास होने वाली घटनाओं से वह कितना अधिक परिचित है इसका परिचय उसके निम्नलिखित गीत से ही लग जाता है।

प्रतिदिनमेतद् भवति ह्यत्र। युवती काचित विलसति कुत्र। चिद्धन चपला हरते चित्तम्। कश्चित् चोरः हरति चहारम् प्रतिदिनमेतद् भवति ह्यत्र। चुवम् त्वमद्धि स्वादु भृष्टम्। लवणाक्तं वै तिक्ताक्तम्। जंबीर रसेन च संसिक्तम् संसृष्टं बाढ़ं बाढ़ं भृशं भृशम्। चणकं चणकं जोषकरम्। भयक्ष युवजानिर्युवसंस्त्वम्। चणकं चणकं तोषकरम् युवन त्वमद्धि प्रीतिकरम्। जोषकरम् पोषकरम्।

## —— वराह मिहिर ——

वराहमिहिर अपनी जाति का एक विशिष्ट प्रतिनिधि है और अपने कार्यकलापों द्वारा दूसरों को धोखा देना अच्छी प्रकार जानता है। आजकल के समाज में ज्योतिष एक ऐसी विद्या समझी जाती है जिसका ज्ञाता बड़े से बड़े व्यक्ति को अपने वश में कर सकता है। अपना भविष्य कौन नहीं जानना चाहता, उसके लिये थोड़ा बहुत धन व्यय करना पड़े तो किसी को अखरता नहीं लेकिन वह भविष्य वाणी सच्ची है इसे तो वर्तमान काल से परखा नहीं जा सकता इसलिए ज्योतिष कुछ मीठी कुछ कड़वी भविष्यवाणी करके अपनी जीविका चला लेते हैं। जो व्यक्ति अधिक चतुर होते हैं वह अपनी विद्या का बहुत अधिक प्रचार करके अधिक मात्रा में लोगों को ठगने का उपक्रम करते हैं। वराहमिहिर भी उन व्यक्तियों में से ही है। उसने ज्योतिष विद्या का कहीं अध्ययन नहीं किया लेकिन सभी जगह यह प्रचार किया हुआ है कि वह प्रसिद्ध ज्योतिषाचार्य पांडुरंगाचार्य घट चौर का शिष्य है और उनसे लगातार 12 वर्ष विद्या का अध्ययन किया है। कृष्ण जो कि वास्तव में पांडुरंगाचार्य का पुत्र था उसके सामने भेद खुलते ही वराह - मिहिर कह उठता है कि यह सब झूठ है। मैं तो केवल अपनी जीविका के लिये इतना बड़ा झूठ बोलता हूं वैसे न तो मैंने ज्योतिष विद्या का अध्ययन किया है और न ही मेरी भविष्य वाणियां पूर्णतया सच्ची ही होती है।। वह स्वयं कहता है —:

लोकानां मानसिक दौर्बल्यमेव राशिभविष्यस्यस्योत्पत्तिस्थानम्। भवतु तद् भविष्यं सत्यमसत्यं वा यथा - कथांचित् परं विश्वसन्ति जनाः बहवः राशि भविष्यं सत्यमिति। प्रार्थये हं परं यत् न कुर्वन्तु भवन्तः गोप्यस्य स्फोटम्। अन्यथा मम वृत्तिच्छेदो भवेत्।

लोगों की मानसिक दुर्बलता ही राशि भविष्य की उत्पत्ति का मूल है। वह भविष्य जैसा कैसा भी हो सच हो या झूठ, पर बहुत से लोग इस पर विश्वास करते हैं कि राशि भविष्य सच होता है। पर मेरी यह प्रार्थना है कि आप (इस) रहस्य का उद्घाटन न कीजिएगा नहीं तो मेरी जीविका मारी जायगी।

Black कृष्ण –– एक ऐसा युवक है जो अत्यन्त योग्य और विद्वान् व्यक्ति का पुत्र होते हुए भी स्वयं अपनी योग्यता न होने के कारण चोर बन गया है। उसके पिता की इतनी प्रसिद्धि थी कि लोग उनका नाम लेकर अपनी जीविका चलाते थे, लेकिन उन्हीं का पुत्र धन के अभाव में चौर्य कर्म में रत है। हार चुरा लेने के पश्चात् जब वह पकड़ा जाता है और उससे चोरी का कारण पूछा जाता है तो उसके ये शब्द होते हैं –

नाहं सत्यत्वेन ।

यह है एक योग्य पिता के अयोग्य पुत्र की कहानी जिसे पिता अपने योग्यता रूपी उत्तराधिकार से वंचित कर गया।

# मालाभविष्यम्

'लाला वैद्यम्' की तरह ही ' माला भविष्यम् ' भी स्कन्द शंकर खोत द्वारा लिखित आधुनिक लघु नाटक है। इसमें बहुत ही सरस ढ़ंग से आधुनिक पत्रों में निकलने वाले आपका भविष्य वाले स्तम्भ पर छींटा-कशी की है। इस नाटक के लिखने की एक कहानी भी है। एक ज्योतिषी ने लेखक को कहा कि एक वर्ष के भीतर ही लेखक के घर में पुत्र जन्म होगा। लेखक को पुत्र की आकांक्षा नहीं थी लेकिन पुत्र-जन्म जैसा ही आनन्दकारी कार्य उन्होंने माला भविष्यम नामक लघु नाटक लिख कर किया। वर्ष बीत जाने पर भी पुत्र-जन्म नहीं हुआ। फिर भी ज्योतिषी की भविष्य वाणी सत्य ही हुई ( नाटक की उत्पत्ति के कारण ) ऐसा लेखक का मत है।

## कथा

बम्बई नगरी के प्रसिद्ध स्थान चौपाटी में सांयकाल के समय सभी लोग भ्रमण करने के लिये निकलते हैं। चने आदि बेचने वाले भी वहां आ जाते हैं। विभावरी और प्रभाकर नाम के पति-पत्नी भी भ्रमणार्थ वहां आते हैं। विभावरी चने खाने की इच्छा करती है। चने वाले के पास भीड़ होने के कारण प्रभाकर विभावरी को एक जगह बैठा कर स्वयं चने लाने चला जाता है। इधर विभावरी के अकेले रह जाने के कारण एक व्यक्ति उसके गले का हार खींच कर भाग जाता है। विभावरी चोर-चोर चिल्लाती है, शोर सुन कर प्रभाकर भी चने लेकर तेज़ी से भागता है। दो सिपाही प्रभाकर को भागते देख कर उसे चोर समझ कर थाने में ले जाते हैं। दूसरी ओर से असली चोर भी पकड़ा जाता है और थाने लाया जाता है। जो विभावरी की माला उठाता है वह प्रभाकर का बचपन का मित्र ही होता है। दोनों पति-पत्नी तथा कृष्ण ( हार का चोर, प्रभाकर का मित्र ) इकट्ठे ही थाने से निकलते हैं। दोनों मित्र इस विचित्र मिलन पर बहुत प्रसन्न होते हैं। कृष्ण को प्रभाकर बताता है कि अमुक व्यक्ति की आज सुवर्ण चोरी जाने की भविष्य वाणी निकली थी इसीलिए जो असली स्वर्ण माला थी वह घर पर ही रखकर विभावरी नकली माला पहन कर आई थी और वही चोरी भी हो गई। उधर कृष्ण कहने लगा कि मेरी राशि वालों को आज के दिन 4 बजे से लेकर 6 बजे तक धन लाभ लिखा था सो मैंने माला लेकर भाग जाना उचित समझा। प्रभाकर और विभावरी दूसरे दिन कृष्ण को अपने घर आने का निमन्त्रण देकर उससे विदा लेते हैं। घर आते ही जिस व्यक्ति के साथ ये दम्पती रहते थे, वह सूचना देता है कि मैं राशि भविष्य पर भाषण देने गया हुआ था जब लौट कर आया तो मैंने अपने द्वार पर खड़े एक व्यक्ति को आपके कमरे में से माला ले जाते हुए देखा है। मेरे चिल्लाने पर वह भाग खड़ा हुआ है। विभावरी अपनी असली माला घर पर ही छोड़ गई थी। माला अपने स्थान पर नहीं थी अतः उसे वही व्यक्ति चुरा कर ले गया होगा। अब तो भविष्यवाणी पूर्णतया सत्य हो गई। इतने में कृष्ण भागता हुआ आता है और प्रभाकर से कहता है कि भविष्य वाणी सत्य हो गई मुझे यह चमकती हुई माला की प्राप्ति हुई। विभावरी माला को देख कर कह उठती है कि यह तो मेरी माला है तुम्हें कैसे मिली। कृष्ण बताता है कि मैं जब आप दोनों से विदा लेकर घर जाने लगा तो रास्ते में टार्च के प्रकाश में मैंने देखा कि दो व्यक्ति द्रव्य का विभाजन कर रहे थे। मुझे देख कर डर के मारे भाग खड़े हुए, यह माला छूट गई। माला उठा कर मैं आपको दिखाने के लिये लाया था। प्रभाकर और विभावरी वह माला कृष्ण को ही भेंट कर देते हैं। उस समय प्रभाकर का पड़ोसी जो राशि भविष्य लिखता था उल्लास से कहता है कि मेरी भविष्य वाणी सत्य निकली। कृष्ण और प्रभाकर के पूछने पर कि ज्योतिष का अध्ययन उसने कहां से किया वाराह मिहिर (भविष्य लिखने वाला व्यक्ति) बताता है कि वह पांडुरंगाचार्य घटचोर का शिष्य रह चुका है। कृष्ण, जो कि पांडुरंगाचार्य घटचोर का पुत्र है कहता है कि उसके पिता की तो पांच वर्ष पहले मृत्यु हो चुकी है। तब वाराहमिहिर बताता है कि मैंने अपने प्रचार के लिये झूठी कहानी रची हुई है वास्तव में मैंने ज्योतिष कहीं भी नहीं पढ़ा। मैंने तो

धन-लाभ के लिये यह प्रपंच रचा है। बम्बई जैसे बड़े शहर में किसी को धन लाभ किसी को धन-हानि किसी का विवाह सम्बन्ध आदि होते रहते हैं इसलिए जिसका भी कार्य मेरे कथन के अनुसार हो जाता है वही राशि भविष्य को सच समझने लगता है। वैसे इसमें मेरा तो केवल वाणी विलास ही है और कुछ नहीं।

## व्यंग्य

माला भविष्यम् नामक नाटक को केवल सामाजिक नाटक न कह कर सामाजिक व्यंग्य प्रधान नाटक कहा जाय तो अधिक उपयुक्त होगा क्योंकि इसमें स्थान स्थान पर समाज की कमज़ोरियों को बड़े ही व्यंग्यात्मक ढ़ंग से प्रस्तुत किया गया है। पुलिस वाले बिना अच्छी तरह परीक्षा किये जिस किसी को पकड़ कर थाने में ले जाते हैं। उन्हें तो केवल यह दिखाना होता है कि वे कार्य-रत हैं। कुछ कर रहे हैं। क्या कर रहे हैं यह सोचने का उन्हें अवकाश नहीं है। प्रभाकर अपनी पत्नी की आवाज़ सुन कर चने गांठ में बांध कर दौड़ता है तो पुलिस वाले उसी को चोर समझ कर पकड़ लेते हैं। प्रभाकर के यह कहने पर भी कि इसमें केवल चने हैं वे लोग अपनी ही धुन में कहे जाते हैं कि तुम हमें बहकाओ नहीं। तुम्हीं चोर हो– इस स्थान का लेखक ने बड़ा ही सजीव चित्रण किया है।

( प्रभाकरं धावन्तं गृहीत्वा हस्ताभ्याम् )

पुत्र पलायसे जानामि चोरलक्षणम् सम्पूर्णत्वेन। पंचविंशतिसंवत्सरपर्यन्तजीविकोद्यमस्तु अयमेव अस्माकम्। बहवस्ते सदृशाः चौराः गृहीताः कारावासं प्रेषिताः भगभगायमान वेषधारिणः संभावितदृशः।

अर्थात् ( भागते हुए प्रभाकर को हाथों से पकड़कर )

बच्चू, भाग रहे हो, मैं पूरी तरह चोर के लक्षण जानता हूं। पच्चीस साल से यही हमारी जीविका वृत्ति रही है। बहुत से तुम्हारे जैसे अच्छे दिखाई देने वाले और चमकते हुए वेश को धारण करने वाले चोर हमने पकड़े हैं और उन्हें कारावास में भेजा है।

वैसे इसी स्थल का एक दूसरा पक्ष भी है। आजकल शुभ्र-वस्त्र-धारी चोरों का युग है। यदि पुलिस वाले यही सोचते रहें कि मैले कुचैले कपड़ों वाला व्यक्ति ही चोर हो सकता है तो शायद वह किसी भी चोरी का पता न लगा सके। आजकल वास्तविक चोर और संभावित चोर में भेद कर पाना असंभव है। रक्षक चैतु के शब्दों में सुनिए–

शीर्षकं शोभते शीर्षभागे। पदत्रं राजते पादभागे। लोलवासो लसति मध्यभागे। प्रसरति प्रावारको वक्षःस्थले शिष्टत्वसूचकं ललति सर्वम्। हृदयं परं चौर्यकर्मावलिप्तम्।

ऊर्णोति किं वाससा दुष्टहृदयम्।
शिष्टस्य चोरस्य जाने न भेदम्।।

अर्थात् सिर पर शिरोवस्त्र हैं। पाद में जूते हैं। मध्य भाग में चंचल वस्त्र हैं। वक्षःस्थल में उत्तरीय कोट हैं। शिष्टत्व का सूचक सब कुछ सुशोभित हो रहा है। पर मन चोरी के काम में लगा है। नीच हृदय वस्त्र से क्या ढांपता

है। शिष्ट चोर का भेद जानने में नहीं आता।

जब वास्तविक चोर पकड़ा जाता है तो उसका भी वेश उतना ही शुभ्र है। रक्षक समझ नहीं पाते कि वास्तविक चोर कौन है इसीलिए रक्षक भल्लु कहता है :—

ज्ञायते यत् संभाविताः सर्वे सुचारुवेशधारिणः चौराः संजाताः उत चौराः चारुवेशधारिणः सम्भाविताः सम्भूताः।

अर्थात् ऐसा मालूम पड़ता है कि सभी भले और अच्छे वस्त्र धारण करने वाले व्यक्ति चोर बन गये हैं अथवा चोरों ने ही शुभ्र वेश धारण कर भले लोगों का अनुकरण करना आरम्भ कर दिया है। आज के समाज में वास्तव में कौन क्या है इसका पता लगा सकना बहुत ही कठिन है। आज के युग में ज्योतिष का समाज में क्या स्थान है इसका परिचय हमें चोर के निम्नलिखित कथन द्वारा मिल जायेगा। चोर द्वारा किये जाने वाले कार्य का कारण पूछने पर उसका उत्तर सुनिए ——

समाचार पत्रे अद्य प्रभातसमये राशिभविष्यं मया पठितं यत् कन्याराशिर्येषां तेषां भवेत् अद्य लाभः सायं समये सप्तवादनसमयात्प्राक्। चिन्तितं मया मनसि पठित्वा तद् भविष्यं यत् धनप्राप्तिरवश्यं कर्तव्या इति। सायं समये चौपाटीं गत्वा दृष्टा च मया एकाकिनी स्थिता एका युवती। तस्याः कंठे यत्किमपि चललोलं चकासतं दृष्ट्वा उज्जवलं मे भविष्यमहमपश्यम्। सहसा बलात् कंठगतां मालां तस्याः परिगृह्य पलायितो ऽहं सप्तवादनघोषकान् सप्तघंटानादान् शृण्वन्।

अर्थात् आज प्रातःकाल समाचार पत्र में मैंने राशि भविष्य पढ़ा था उसमें लिखा था कि जिनकी कन्या राशि है उन्हें आज सन्ध्या के सात बजे से पहले लाभ होगा। यह पढ़ कर मैंने सोचा कि आज धन की प्राप्ति अवश्य करनी चाहिए। सन्ध्या काल को चौपाटी जाने पर मुझे एक अकेली युवती दृष्टिगोचर हुई। उसके गले में कुछ चमकता हुआ सा देख कर मुझे अपना ही भविष्य उज्ज्वल लगा। बलपूर्वक उसके गले से चमकती हुई माला लेकर मैं भाग निकला। उसी समय मैंने सात बजने का घंटा भी सुना।

जिस तरह भविष्य पढ़ कर चोरी की जाती है उसी भविष्य पढ़ कर चोरी का परिहार भी किया जाता है। प्रभाकर भी थाने में स्थित व्यक्तियों को बताता है कि चोरी में गई माला नकली थी क्योंकि—

मयापि अद्य समाचारपत्रे प्रगे वाचितं यत् मिथुनराशिर्यस्य तस्य भवेत् धनहानि रद्य इति। मम पत्न्याः मिथुनराशिः। यदा आवां सायं चौपाटीं गन्तुमुद्यवो स्तदा अहं पत्न्यै एकां काचमणिप्रोतां मालां सुशोभनां दत्तवान्। तयापि सुवर्णविद्धा मुक्तामणिमाला गृहे स्वस्थ्यपेटिकायां निधाय कंठगता कृता काचमणिमाला चतुराणकैः क्रीता।

अर्थात् मैंने आज सुबह समाचार पत्र में पढ़ा था कि जिसकी मिथुन राशि होगी उसकी आज सायंकाल को धन हानि होगी। मेरी पत्नी की मिथुन राशि है। जब हम सन्ध्या को चौपाटी आने के लिये प्रस्तुत हुए तब मैंने पत्नी को कांच के मोतियों की सुन्दर माला दी। उसने भी सुवर्ण की मुक्ता मणि माला अपनी पेटिका में रख कर चार आने की खरीदी हुई माला अपने गले में डाल दी।

आजकल प्रत्येक क्षेत्र में धांधली चल रही है फिर चाहे वह कार्य आदर की दृष्टि से देखा जाता हो या हेय दृष्टि से। वाराहमिहिर नाम के व्यक्ति को जो अपने आपको पांडुरंग शास्त्री का शिष्य बताता है, जब यह मालूम पड़ता है कि कृष्ण उन्हीं पांडुरंग शास्त्री का पुत्र है तो सम्पूर्ण परिस्थिति ही बदल जाती है। तब वह पांडुरंग शास्त्री के पुत्र से क्षमा मांगने लगता है।

कृष्णमहाभागं! क्षमां याचे। असत्यमेव एतन्सर्व यन्मया उक्तम्। न मया कदाचिदपि ज्योतिषशास्त्रस्य अध्ययनं कृतं तत्र, परं पांडुरंगशास्त्रिशिष्यो ऽहमिति उद्घोषयामि सर्वत्र। तद् ज्ञात्वा समाचारपत्रसंपादकेन एकेन विपुलधनदानेन नियुक्तो ऽहं राशिभविष्यलेखनार्थं प्रतिदिनम् नामापि मया वराहमिहिरः इति स्वीकृतम्।

अर्थात् कृष्ण महोदय, मैं क्षमा याचना करता हूं। यह सब झूठ ही है जो मैंने कहा। कभी भी मैंने ज्योतिष शास्त्र का अध्ययन नहीं किया पर मैं पांडुरंग शास्त्री का शिष्य हूं यह सब जगह घोषित कर देता हूं। यह जान कर एक समाचारपत्र के सम्पादक ने पर्याप्त धन पर मुझे प्रतिदिन राशि भविष्य लिखने के लिये नियुक्त कर लिया। नाम भी मैंने वाराहमिहिर ही रख लिया।

दूसरों के लिये सच्ची भविष्य वाणी करने वाला व्यक्ति स्वयं कितना बड़ा झूठ बोल सकता है इस पर शीघ्र विश्वास नहीं हो पाता।

शैली

शब्द चित्र– लेखक शब्द-चित्र खींचने में सिद्धहस्त है। बम्बई नगरी के चने बेचने वाले भी कितने वाक् चतुर होते हैं तथा क्रयकला निपुण होते हैं इसका कितना सजीव चित्रण लेखक ने किया है।

चाणविकः – हं हो मम मित्र! हं हो मम मित्र! चणकं चंडतिग्मम्। चणकं जोषकरं तोषकरं पोषकरम्। चणकं स्वादु भृष्टम्। भक्षय सकृत्।

एक और शब्दचित्र देखिए। जिस समय बहुत अधिक भीड़ में कोई घटना हो जाती है तो सब व्यक्ति प्रश्नों की बौछार लगा देते हैं। जिस व्यक्ति के साथ घटना घटित हुई हो वह चाहे उन सभी प्रश्नों को उत्तर दे सके या न दे सके। जिस समय विभावरी का हार चोर लेकर भाग जाता है उस समय उससे क्या क्या नहीं पूछा जाता।

जनाः – किं जातं किं भूतं किं भूतं, का कथा, किं सम्पन्नं, केन किं कृतम्। किं चोरः। कुत्र गतः। किं नीतम्। हारः नीतः। सुवर्णमयः कंठस्थः।

लोग :– क्या हुआ, क्या हुआ, क्या बात है, क्या हो गया, किसने क्या किया। क्या चोर है ? कहां गया ? क्या ले गया ? हार ले गया। सोने का, कंठ में पहिना हुआ।

लेखक ने उपयुक्त स्थलों पर गीतों को स्थान दिया है जो आधुनिक नाटक होने के कारण सुरुचिपूर्ण हैं। किन्तु कहीं कहीं अनुचित स्थल पर भी गीत की सृष्टि की गई है जो अधिक ठीक नहीं लगता, जैसे विभावरी के पति को जब थाने ले जाते हैं तब उसका गीत गाना खटकता है। हालांकि गीत के भाव अच्छे हैं।

धिगहह बत अहह अहो। माला हृता मे कंठे स्थिता सुशोभा। शाकुन्तले यथा वा नष्टांगुलयिकं मे। कष्टानि दिनानि ददर्श। जाने कृते ममापि माला भवेद्धि दुःखम्।

हा धिक्, हाय हाय, मेरे गले की सुन्दर माला का अपहरण हो गया। जिस प्रकार शाकुन्तल में हुआ। अंगूठी खो गई। इसके बाद शकुन्तला को दुःखद दिन झेलने पड़े। मैं समझती हूं कि मेरे लिये भी माला दुःख का कारण बनेगी।

वाराहमिहिर अपनी ज्योतिष विद्या की सत्यता प्रमाणित हुई देख प्रसन्न होकर गाता है उस समय सभी लोग आश्चर्य चकित हो जाते हैं।

शास्त्रं ज्योतिषं सत्यं शिवं सुन्दरम्। भासते शोभनं लोभनं, लसति ललामम्। आभिवादये मित्रं परम्। सकलग्रहेशम्। शास्त्रं ज्योतिषम्।

## चरित्र चित्रण

प्रभाकर – ज्योतिष विद्या में विश्वास करने वाला साधारण युवक है। पत्नी की हर इच्छा की पूर्ति करना वह अपना कर्तव्य समझता है। बचपन का मित्र मिल जाने पर बहुत अधिक प्रसन्न होता है। भ्रमण-शील व्यक्ति है।

## दो विशिष्ट चरित्र

चाणविक – प्रत्येक बड़े शहर में हमें इसके दर्शन होंगे। अत्यधिक वाक्-पटु और अपने आस-पास होने वाली सभी घटनाओं से परिचित होता है। अपने प्रत्येक ग्राहक को प्रसन्न रखना भी इनकी एक विशेषता होती है। बहुत से बालक चने वाले को घेर कर खड़े हो जाते हैं। वह किसको क्या उत्तर दे तथा सभी ग्राहकों को किस तरह निपटाये यह गुर वह अच्छी तरह जानता है। उसकी जिह्वा एक क्षण के लिये भी बन्द नहीं होती यह एक और बड़ी विशेषता है। वह चने भी देता है और साथ ही उसकी जिह्वा भी अविरल गति से अपना कार्य करती जाती है । देखिए –:

ददामि ददामि हं हो मम मित्र। बालक मित्र चणकं जोषकरम्। चणकं स्वादु भृष्टम्। चणकं चंडंतिग्मम्। लवणावतं विवतावतं जंबीररसेन च संसिक्तं संसृष्टं बाढं बाढं भृशं भृशं आम्ल युतम्। ददामि चणकं तुभ्यं भृष्टं भृष्टं बहुपुष्टम्।

चने बेचने वाले की दृष्टि में प्रतिदिन चोरी आदि की घटनायें आती रहती हैं। अतः वह इनसे अधिक प्रभावित न होकर अपनी कार्य करने में संलग्न रहता है तथा सभी को अपनी तरह ही निर्लेप रहने की सलाह देता है। अपने आस पास होने वाली घटनाओं से वह कितना अधिक परिचित है इसका परिचय उसके निम्नलिखित गीत से ही लग जाता है।

प्रतिदिनमेतद् भवति द्युत्र। युवती काचित् विलसति कुत्र। चिद्धन चपला हरते चित्तम्। कश्चित् चोरः हरति हारम् प्रतिदिनमेतद् भवति द्युत्र। युवन् त्वमद्धि स्वादु भृष्टम्। लवणाक्तं वै तिक्ताक्तम्। जंबीररसेन च संसिक्तम् संसृष्टं बाढं बाढं भृशं भृशम्। चणकं चणकं जोषकरम्। भक्षय युवजानिर्युवकस्त्वम्। चणकं चणकं तोषकरम् युवन् त्वमद्धि प्रीतिकरम्। जोषकरम् पोषकरम्।

## वराह मिहिर

वराहमिहिर अपनी जाति का एक विशिष्ट प्रतिनिधि है और अपने कार्यकलापों द्वारा दूसरों को धोखा देना अच्छी तरह जानता है। आजकल के समाज में ज्योतिष एक ऐसी विद्या समझी जाती है जिसका ज्ञाता बड़े से बड़े व्यक्ति को अपने वश में कर सकता है। अपना भविष्य कौन नहीं जानना चाहता? उसके लिये थोड़ा बहुत धन व्यय करना पड़े तो किसी को अखरता नहीं लेकिन वह भविष्य वाणी सच्ची है इसे तो वर्तमान काल से परखा नहीं जा सकता इसलिए ज्योतिषी कुछ मीठी कुछ कड़वी भविष्यवाणी करके अपनी जीविका चला लेते हैं। जो व्यक्ति अधिक चतुर होते हैं वह अपनी विद्या का बहुत अधिक प्रचार करके अधिक मात्रा में लोगों को ठगने का उपक्रम करते हैं। वराहमिहिर भी उन व्यक्तियों में से ही है। उसने ज्योतिष विद्या का कहीं अध्ययन नहीं किया लेकिन सभी जगह यह प्रचार किया हुआ है कि वह प्रसिद्ध ज्योतिषाचार्य पांडुरंगाचार्य घटचौर का शिष्य है और उनसे लगातार 12 वर्ष विद्या का अध्ययन किया है। कृष्ण के जौ कि वास्तव में पांडुरंगाचार्य का पुत्र है सामने भेद खुलते ही वराहमिहिर कह उठता है कि यह सब झूठ है। मैं तो केवल अपनी जीविका के लिये इतना बड़ा झूठ बोलता हूं। वैसे न तो मैंने ज्योतिष विद्या का अध्ययन किया है और न ही मेरी भविष्य वाणियां पूर्णतया सच्ची ही होती है।। वह स्वयं कहता है :

लोकानां मानसिकदौर्बल्यमेव राशिभविष्यस्यस्योत्पत्तिस्थानम्। भवतु तद् भविष्यं सत्यमसत्यं वा यथा-कथंचित्, परं विश्वसन्ति जनाः बहवः राशिभविष्यं सत्यमिति। प्रार्थये ऽहं परं यत् न कुर्वन्तु भवन्तः गोप्यस्य स्फोटम्। अन्यथा मम वृत्तिच्छेदो भवेत्।

लोगों की मानसिक दुर्बलता ही राशि भविष्य की उत्पत्ति का मूल है। वह भविष्य जैसा कैसा भी हो सच हो या झूठ, पर बहुत से लोग इस पर विश्वास करते हैं कि राशि भविष्य सच होता है। पर मेरी यह प्रार्थना है कि आप (इस) रहस्य का उद्घाटन न कीजिएगा नहीं तो मेरी जीविका मारी जायगी।

कृष्ण– एक ऐसा युवक है जो अत्यन्त योग्य और विद्वान् व्यक्ति का पुत्र होते हुए भी स्वयं अपनी योग्यता न होने के कारण चोर बन गया है। उसके पिता की इतनी प्रसिद्धि थी कि लोग उनका नाम लेकर अपनी जीविका चलाते थे, लेकिन उन्हीं का पुत्र धन के अभाव में चौर्य कर्म में रत है। हार चुरा लेने के पश्चात् जब वह पकड़ा जाता है और उससे चोरी का कारण पूछा जाता है तो उसके ये शब्द होते हैं –

नाहं सत्यत्वेन ।

यह है एक योग्य पिता के अयोग्य पुत्र की कहानी जिसे पिता अपने योग्यता रूपी उत्तराधिकार से वंचित कर गया।

# धर्मरक्षणम्

धर्म का वास्तविक स्वरूप क्या है ? धर्म के कितने प्रकार हैं ? क्या युग के साथ धर्म भी परिवर्तित होता है अथवा नहीं ? क्या ऐसे शाश्वत धर्म का अस्तित्व सम्भव है जो कभी परिवर्तित नहीं होता ? इन सभी प्रश्नों के उत्तर ही श्री भूपति लक्ष्मीनारायण का छः अंकों का नाटक ' धर्मरक्षणम् ' है। धर्म क्या है और उसकी रक्षा किस प्रकार, कैसे और किससे की जाती है, यही नाटक का विषय है। इस अत्यधिक आध्यात्मिक प्रश्न का उत्तर श्री भूपति ने महाभारत के उस कथानक में ढूंढ़ निकाला है, जब कौरवों का अत्याचार सीमातीत हो गया था, सभी क्षत्रिय विलासिता में डूब गये थे। भीष्म और धृतराष्ट्र जैसे व्यक्ति द्रौपदी की असहाय अवस्था में कुछ न कर सके। युद्धिष्ठिर जैसे तपस्वी उपाधिकारी भी जुए में अपना सब कुछ हार कर भाई तथा स्त्री तक को दांव पर लगाने से नहीं चूके। ऐसी अवस्था में युग धर्म संकट में था, श्रीकृष्ण ने गीता में अपनी निम्नलिखित घोषणा के अनुसार –

'धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे '

अपना कर्तव्य पालन करना था, इसलिए धर्म के रास्ते में जो व्यक्ति बाधक स्वरूप सिद्ध हुए उन सभी को मृत्यु के घाट उतार दिया। अधर्मी कौरवों को हरा कर धर्मावलम्बी पाण्डवों की विजय करवाई। जिस किसी प्रकार से भी धर्म की संस्थापना करनी थी इसलिए धार्मिक पुरुष में भी जहां श्रीकृष्ण ने थोड़ी सी दुर्बलता आती देखी झट उसी समय उसे दण्डित किया। पाण्डवों का 13 वर्ष का वनवास भी उनके जुआ खेलने जनित दोष को दूर करने के लिये ही था। जब अधर्मियों का इस पृथ्वी से लोप हो गया था तो जिन्हें विजय का मद आ गया था उनका नाश करना भी श्री कृष्ण ने अपना कर्तव्य समझा इसीलिए मदोन्मत्त यादव वंश का नाश भी श्री कृष्ण की अपनी इच्छा से ही हुआ।

## कथानक

श्री कृष्ण दुर्योधन के पास शान्ति सन्देश ले कर जाते हैं किन्तु दुर्योधन उनकी बात नहीं मानता और श्रीकृष्ण को निराश हो कर लौटना पड़ता है। श्री कृष्ण भीष्म, द्रोण आदि को इस बात के लिये दोषी ठहराते हैं कि वे भी दुर्योधन को समझाने में असमर्थ हैं। श्रीकृष्ण बताते हैं कि बहुत भयंकर युद्ध होगा, जिसके परिणामस्वरूप असंख्य व्यक्तियों की हत्या होगी, कौरवकुल का नाश हो जायगा, इतनी हानि होगी जिसका अनुमान लगाना कठिन हो जायगा। भीष्म और द्रोण कुल नाश न चाहते हुए भी असमर्थ हैं और वे दुर्योधन की आज्ञा से बाहर नहीं जा सकते। वे यह भी कहते हैं कि इस समय युद्ध से पीछे हटना सबके लिये अयशस्कर होगा। श्री कृष्ण उन्हें समझाते हैं कि बुरे कार्य को न करने से अयश कभी नहीं होता, अयश तो ऐसे कार्यों से हुआ है जो उनके परिवार में हो चुके हैं। द्रौपदी का चीर हरण आदि ऐसी घटनाएं हैं जिससे उनका बहुत अधिक अयश हो चुका है। उनके पापों की इतनी बड़ी सूची बन चुकी है कि अब उनका नाश युद्ध रूपी यज्ञ में ही होगा जिसमें कौरव पशुओं की आहुति दी जायगी। अन्त में श्रीकृष्ण निराश होकर वापिस लौट जाते हैं किन्तु जाते समय कुछ दूर तक कर्ण को अपने साथ ले जाते हैं और रास्ते में उसे उसके जन्म का रहस्य बताते हैं कि वह पाण्डवों का सगा भाई कुन्ती का पुत्र है किन्तु कुमार्यवस्था में ही उत्पन्न होने के कारण उसे नदी में बहा दिया गया था। कर्ण इस रहस्य का भेद खुलने पर बड़ा खिन्न होता है।

इधर दुर्योधन और दुश्शासन परस्पर वार्तालाप करते हुए कहते हैं कि कर्ण सूत पुत्र नहीं है उसके शील, सौजन्य, शौर्य और उदारता आदि गुणों से ऐसा प्रतीत होता है मानो वह बहुत ही उच्च कुलोत्पन्न है। श्री कृष्ण से

भेंट होने के पश्चात् वह उद्विग्न सा प्रतीत होता है। भीष्म के द्वारा सूतपुत्र कहे जाने पर बहुत क्रोधित हुआ तथा उसने प्रतिज्ञा की कि पितामह भीष्म के मरने से पहले वह शस्त्र ग्रहण नहीं करेगा। इतने में ही स्वयं कर्ण उपस्थित हो जाता है और दुर्योधन से क्षमा मांगता हुआ कहता है कि उसे दुःख है कि उसे ऐसी प्रतिज्ञा करनी पड़ी। कर्ण दुर्योधन को यह भी बताता है कि भीष्म और द्रोण चाहे कितने ही बड़े योद्धा हों, चाहे दुर्योधन के साथ कितना ही स्नेह क्यों न हो किन्तु पाण्डवों के साथ भी उनका स्नेह कम नहीं वरन कुछ अंशों में तो पाण्डवों के साथ अधिक ही है इसलिए वे अर्जुन को अपने हाथों से कभी नहीं मारेंगे इसलिए अर्जुन प्रतिद्वन्दी या तो स्वयं था, अब यदि उसने भीष्म के मरने तक शस्त्र ग्रहण न करने की शपथ खाई तो अर्जुन का प्रतिद्वन्दी उसे ढूंढ़ना पड़ेगा।

सौभाग्य से कर्ण को अर्जुन का प्रतिद्वन्दी मिल जाता है। उद्विग्न सा कर्ण कुछ समय के लिये वन में बिहार करने के लिये जाता है, वहां उसे निषादराज एकलव्य मिलता है जो वन के हिरण मारे जाने के कारण कर्ण के सैनिकों से युद्ध करने के लिये सन्नद्ध हो कर आता है। वह कर्ण से युद्ध करना चाहता है लेकिन कर्ण उससे धनुर्विद्या की परीक्षा में उत्तीर्ण होने के पश्चात् ही युद्ध का प्रतिद्वन्दी स्वीकार करता है। एकलव्य कर्ण द्वारा निर्धारित परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाता है। इसके पश्चात् कर्ण को अपने से उसे व्यक्तित्व का रहस्य मिलता है, एकलव्य प्रसन्न होता है और क्षमा मांगता है।

कर्ण को एकलव्य का जीवन वृत्तान्त जान कर ज्ञात होता है कि अर्जुन का वह घोर शत्रु है। कर्ण को अर्जुन का प्रतिद्वन्दी मिल जाने पर बड़ी प्रसन्नता होती है। वह उसे कौरव सेना में भर्ती कर लेता है। अर्जुन को पराजित करने के लिये कर्ण एकलव्य को मन्त्र द्वारा शस्त्र चलाने की भी शिक्षा देता है।

जब यह बात युयुत्सु द्वारा कुन्ती को ज्ञात होती है तो उसे बड़ा दुःख होता है। कर्ण और अर्जुन दोनों सगे भाई परस्पर जान के बैरी बन रहे हैं यह सोच कर कुन्ती के दःख का अन्त नहीं रहता। एकलव्य शस्त्र विद्या में पूर्ण निष्णात होने पर कहीं सचमुच ही अर्जुन को पराजित कर उसका वध न कर दे इस चिन्ता में मग्न कुन्ती इस विषय में श्रीकृष्ण से सलाह करती है। श्री कृष्ण उसे सांत्वना देते हैं कि अर्जुन का बालबांका भी नहीं होगा। वे उसे अपने मस्तिष्क में आई हुई युक्ति बताते हैं।

श्री कृष्ण को मालूम है कि निषादराज एकलव्य युद्ध रूपी यज्ञ में बाधा डालेगा इसलिए सबसे पहले उसी की आहुति देनी चाहिए। जिस वन में एकलव्य रहता है श्री कृष्ण अपना वास्तविक रूप छिपा कर उसी वन में जाते हैं और एकलव्य को बताते हैं कि उसने कौरवों की सेना में सम्मिलित होकर और अर्जुन का प्रतिपक्षी बन कर अधर्म का पक्ष लिया है। एकलव्य यह स्वीकार करते हुए भी कि उसका पक्ष अधर्म से युक्त है अर्जुन के साथ अपनी शत्रुता रूपी निर्बलता से छुटकारा नहीं पा सकता। दूसरे उसने अर्जुन से लड़ने का वचन दे दिया है अब वह वचन भंग नहीं करेगा। श्रीकृष्ण उसे बताते हैं कि श्री कृष्ण ने अर्जुन की रक्षा का वचन लिया है। उसे कोई नहीं मार सकता जो कोई भी उसे मारने का प्रयत्न करेगा उसे अपनी प्राण रक्षा करनी कठिन हो जायगी। इस पर एकलव्य कहता है कि श्री कृष्ण के हाथों मरने पर उसे दुःख नहीं होगा वरन् यह बात उसके गौरव के लिये ही होगी।

श्री कृष्ण कहते हैं कि यह आवश्यक नहीं कि श्री कृष्ण एकलव्य को युद्ध में मारें वे उसे युद्ध से पहले भी मार सकते हैं। इतना कह कर वे तलवार निकाल कर एकलव्य की छाती में भौंक देते हैं। गिरते हुए एकलव्य को अपने बाहुपाश में भर कर श्री कृष्ण अपना सत्य स्वरूप प्रकट कर देते हैं। एकलव्य अन्तिम समय श्रीकृष्ण के दर्शन कर

शान्तिपूर्वक मृत्यु का आलिंगन करता है। श्रीकृष्ण अट्टहास करते हुए यह घोषणा करते हैं कि इस युद्ध रूपी यज्ञ में जो कोई भी रुकावट डालेगा, उसका यही परिणाम होगा। घटोत्कच से लेकर अभिमन्यु पर्यन्त सभी लोग शलभों की भांति मारे जायेंगे। सबसे पहले आहुति उसमें एकलव्य की है। नाटक की समाप्ति यहीं पर हो जाती है।

## नाटक का उद्येश्य

जैसा कि नाटककार स्वयं कहता है कि धर्म के स्वरूप के विषय में दार्शनिकों में परस्पर बहुत अधिक मतभेद है किन्तु कुछ तत्त्व ऐसे हैं जिनके विषय में बहुत ही कम मतभेद हैं जैसे समाज के अधिकतम तथा उच्चतम सुख के लिये हमें क्षुद्रतम सुखों की आहुति देनी पड़ेगी। न्याय का पक्ष सबल करने के लिये अन्यायी और पापी का वध ा करने में धर्म की वृद्धि ही होती है। इसी धारणा को लेकर भूपति लक्ष्मी नारायण ने प्रस्तुत नाटक की रचना की है। कौरवों के अत्याचार बहुत अधिक बढ़ गये थे। उनका क्षय करके ही पुनः धर्म की स्थापना हो सकती थी। कौरव तथा उनके सहायक, जो कोई भी अधर्म का पक्ष लेगा, वह धर्म के स्तम्भ श्री कृष्ण के लिये वध्य होगा– यही धर्म है। इसी भाव को ग्रहण कर श्रीकृष्ण के शब्द हैं–

किरातपुङ् व ! – मन्यसे वा प्रकृति सिद्धं मानवत्वमिति। मानवत्वं पशुत्वं वा गुणशीलायत्तम्। न तावत् बाह्यरूपायत्तम्। किं मन्यसे कंसमागधादयोऽपि मानवा एवेति ? सतीमणिं कुलवधूं मध्येसभं तादृशीमवस्थां नीतवन्तो घातुक मृगयवोऽपि अधमा एव। को वा संशयः तादृशनररूपराक्षसानां हितकारिणः त्वादृशा अपि राक्षसा एवेति अवश्यमेव हन्तव्या इत्यत्र च।

किरात श्रेष्ठ, तुम मानवता को प्रकृति सिद्ध समझते हो। (किन्तु) मानवता अथवा पशुता तो गुणों पर आश्रित है। बाहर के रूप पर नहीं। कंस और मागध आदि क्या मनुष्य हैं ? सतियों में मणि के स्वरूप कुल वधू को सभा के बीच ऐसी दशा करने वाले घातक पशुओं से भी अधम हैं। इसमें क्या संशय है कि ऐसे नरराक्षसों को अवश्य ही मार देना चाहिए।

## चरित्र चित्रण

श्री कृष्ण एक ऐसी दैवी शक्ति के रूप में इस नाटक में आते हैं जो मनुष्य के घोर पाप समूह को नष्ट करने के लिये ही समय समय पर प्रकट होती हैं। श्री राम, श्री कृष्ण, वराह, नृसिंह, वामन आदि भी ऐसी ही शक्तियां थीं, जिन्होंने पृथ्वी को पाप के भार से मुक्त किया। ये दैवी शक्तियां अधिकतर तो समाज के पुण्यशाली पुरुषों के द्व ारा ही अपना कार्य करती हैं, उन्हीं पुण्यात्माओं में ऐसी प्रेरणा भर देती है जिससे वे स्वयं धर्म से अनुप्राणित हो अच्छे कृत्य करते हैं और समाज से पापों का क्षय होता है, किन्तु उन सभी पुण्यात्माओं को यह कार्य कष्ट सह कर ही करने पड़ते हैं, असह्य दुःख अनन्त यातनाएं सह कर ही वे लोग अपना कार्य कर पाते हैं, किन्तु कहीं-कहीं पर उन दैवी शक्तियों को स्वयं प्रकट हो कर चमत्कार दिखाने पड़ते हैं जिससे साधारण जन और विशेषकर पापी जनों को यह तीव्र अनुभूति हो सके कि मनुष्य के कार्यकलापों के पीछे, चाहे वे अच्छे हों चाहे बुरे दैवी शक्ति अदृष्ट रूप से उनके पीछे अवश्य रहती है। गांधारी, धृतराष्ट्र, कुन्ती, द्रौपदी और अर्जुन इन सभी पुण्यात्माओं ने धर्म के पथ पर अग्रसर होते हुए बहुत कष्ट सहे। इनके साथ ही साथ श्री कृष्ण अपनी दैवी शक्ति से इनका पथ आलोकित करते रहे। द्रौपदी के चीर हरण के समय श्री कृष्ण ने चमत्कार दिखाया तथा अन्य कई स्थलों पर भी श्री कृष्ण ने चमत्कार से अपने भक्तों की रक्षा की।

श्री कृष्ण ने जिस प्रकार एकलव्य का वध किया हो सकता है कि पौराणिक धारणाओं में विश्वास करने वाले पण्डित इसे श्री कृष्ण के अवतार पुरुष होने के कारण न मानें अथवा उनके चरित्र के उपयुक्त न समझें लेकिन हमें देखना यह है कि दैवी शक्तियों के कार्य कलाप को समझने में मानवीय बुद्धि अल्यल्प है। किस कार्य में कौन सी भलाई छिपी है इसे मानव नहीं समझ सकता। पञ्चम अंक में जब अर्जुन किंकर्तव्य विमूढ़ सा हो अपने कर्तव्या-कर्तव्य के विषय में पूछता है तो श्रीकृष्ण यही उत्तर देते हैं। इससे धर्म का अत्यन्त गूढ़ तत्व से युक्त होना सिद्ध हो जाता है।

कृपण– पृथानन्दन ! दुरवगाहं खलु धर्मतत्त्वं। प्राणिनां दुःसाधः
तत्स्वरूपनिर्णयः । अतीन्द्रियस्य धर्मस्य रक्षणार्थं कदाचित्
नश्येयुरनेके निर्दोषाः। कृत्स्नमिदं विश्वं रक्ताप्लुतं भवेत्।
कृते ऽपि महति प्रयत्ने दैवविमुखतया धर्मस्यापि हानिरापद्येत।
कदाचिद्वे समुदै ऽपि पुरुषप्रयत्नलोपेन धर्मो ऽपि न फलेत्।
प्रकृतिजडतया मनोदौर्बल्येन च धर्मरक्षा न घटेत। सततप्रयत्नबलेन
अकुण्ठितचैतन्येन, अक्षय्यान्तरशक्त्या, निर्ममेन मनोनिग्रहेण निरहंकारेण
निष्कामकर्मणा च भाव्यं धर्मस्य रक्षणम्।।

पृथा को आनन्द देने वाले (पृथापुत्र = अर्जुन), धर्म का तत्व गहन है। प्राणियों के लिये उसका तत्वनिरूपण करना अत्यन्त कठिन है। इस सूक्ष्म अतीन्द्रय धर्म की रक्षा के लिये कभी कभी अनेक निर्दोष भी मारे जाते हैं। यह सम्पूर्ण विश्व रक्त से भर उठता है। बहुत प्रयत्न करने पर भी दैव के विमुख होने पर धर्म की हानि हो जाती है। कभी दैव अनुकूल भी हो परन्तु पुरुष के प्रयत्न के अभाव में धर्म फलता नहीं। जड़ प्रकृति के कारण अथवा मन की दुर्बलता के कारण धर्म की रक्षा नहीं होती। सतत प्रयत्न से, सतत जागरूकता से कभी कम न होने वाली शक्ति से, कठोर मनःसंयम से, अहंकार रहित होकर निक्षकाम कर्म करने से धर्म की रक्षा होती है।

<u>कुन्ती</u>

प्रस्तुत नाटक में कुन्ती एक तपस्विनी और चिरदुःखिता के रूप में दिखाई गई है। एक ओर तो वह अपने ही परिवार में होने वाले युद्ध को रोकना चाहती है दूसरी ओर अपने पुत्रों के प्रति किये गये अत्याचारों का बदला लेना चाहती है और अपने पुत्रों से युद्ध की अपेक्षा करती है। उसके एक ही वाक्य में उसके मन का संघर्ष द्योतित हो जाता है। श्री कृष्ण सन्धि के लिये कौरवों के पास गये थे किन्तु उनका सन्धि का प्रयत्न विफल हुआ। इस पर कुन्ती कहती है–

माधव ! विफलो नु ते सन्धिप्रयत्नः। इतः परमपि क्षात्रधर्मे प्रवर्तते धर्मजः उत याचक वृत्तिमवलम्ब्य वंश प्रतिष्ठाया म मापादयन्ति।

हे माधव, तुम्हारा सन्धि का प्रयत्न निष्फल हो गया। इस पर भी धर्मराज युद्धिष्ठिर छात्र धर्म में प्रवृत्त होता है अथवा मांगने वालों जैसी वृत्ति का आलम्बन ले वंश की प्रतिष्ठा भंग करता है।

कुन्ती एक वीर माता है और कभी भी अपने पुत्रों को युद्ध से विमुख हुआ नहीं चाहती है। श्री कृष्ण कुन्ती से

पूछते हैं कि दुर्योधन का उत्तर मैं तुम्हारे पुत्रों को सुनाने जा रहा हूं तुम्हारा उन्हें क्या सन्देश दूं? तब वह वीरता से सने शब्दों में अपने पुत्रों को सन्देश भेजती हैं–

कुन्ती – माधव ! कुलधर्मः निजवंशोचितरवृत्तिश्च सर्वदा परिपालनीयौ भवद्भिरित्यतः अन्यः को वास्ति सन्देशः। कृते पराक्रमे जीवनवृत्तेः राज्ञां नास्तीतरा वृत्तिरिति त्वं जानासि। निस्तेजस्कतया याञ्ज्ञावृत्या लब्धा संपत् दैन्यावहा हेया चेति न जानीति किं धर्मजः।

हे कृष्ण कुल के धर्म के अनुसार अपने वंश के अनुकूल वीरत्व भाव आप सबको पालन करना चाहिए इसके अतिरिक्त और क्या सन्देश हो सकता है। पराक्रम के अतिरिक्त राजाओं की और कोई वृत्ति नहीं है ऐसा तुम जानते हो। तेज से हीन मांगने वालों जैसी वृत्ति जैसी वृत्ति का आलम्बन लेकर ली हुई संपत्ति अत्यन्त हीन है ऐसा धर्मराज युद्धिष्ठिर क्या जानते नहीं?

कुन्ती के इन्हीं वीरता से भरे शब्दों से उसकी वीर जननी होने का सबल प्रमाण मिल जाता है।

कुन्ती ने अपने बाल्यकाल से ही अनन्त दुःख सहे थे। भगवान् से उसकी प्रार्थना कितनी करुणा भरी है ––

दयानिधे ! कथं न शृणोषि मदीयामम्यर्थनाम्। दुःखभावजमिदं जीवितानिलो ऽपि क्रियन्तं कालं मां अति वाहयिष्यसि ? बाल्य एव मदीयान्तरंगे अनिर्वापणीयमनलं सन्धुक्षितवानसि ।

हे दया के निधान क्या तुम मेरी प्रार्थना नहीं सुनते हो। इस दुःख से भरे हुए जीवन का भार मैं कब तक सहूंगी। बाल्यकाल से लेकर आज तक मेरे भीतर अग्नि जल रही है।

अर्जुन

अर्जुन एक सच्चे वीर के रूप में प्रदर्शित किया गया है।

एकलव्य – वीरता में अर्जुन और कर्ण सदृश तथा अपने हठ का पक्का एकलव्य सच्चा निषादराज है। उसे यदि किसी से वैर है तो वह आजन्म रहेगा, चाहे उसे समझाने वाले स्वयं श्रीकृष्ण हों। वह अपने वचन का पक्का है। वचन तोड़ना उसके लिये मृत्यु से भी बढ़ कर है। तभी वह कहता है–

एकलव्यः– राजन्। धर्मो वा भवतु अधर्मो वा भवतु। अविमृश्यकारिणा मया दत्तं वचः अधुना विज्ञायापि कथमहं करिष्ये वचो। भङ्म् ? न सम्भवेत्तत्कदाचिदपि।

हे राजन् चाहे यह धर्म हो चाहे अधर्म। बिना सोचे समझे मैंने वचन दे दिया है। अब जान कर भी मैं वचन कैसे तोड़ सकता हूं। यह मेरे लिये असम्भव है।

वह श्रीकृष्ण के हाथों मृत्यु प्राप्त करना चाहता है और इसे अपना गौरव समझता है।

## भाषा और शैली

' धर्मरक्षणम् ' धर्म की प्राचीन मान्यताओं को एक नवीन रूप देता है। जिस धर्म की परिभाषा करने में बड़े दार्शनिक असमंजस में पड़ गये, नाटककार ने नाटक के रूप में दृष्टान्त स्वरूप उस धर्म की परिभाषा बड़े सरल और मनोरम रूप में कर दी है।

नान्दी के श्लोक के अतिरिक्त नाटककार ने सर्वत्र गद्य का प्रयोग किया है। यहाँ तक कि भरत वाक्य की भी आवश्यकता नहीं समझी। पद्यात्मक कथोपकथन के बिना भी नाटक सम्भव है यह नाटककार ने सिद्ध कर दिया। यह नाटक मौलिक प्रयोग है।

नाटक में श्रीमदभगवद् गीता के श्लोकों का सार थोड़े से शब्द परिवर्तित करके कई स्थानों पर रखा गया है। इससे प्रकट होता है कि लेखक गीता के दर्शन का अनुयायी है और धर्म के सम्बन्ध में भी गीता की परिभाषा को ही मान्यता देता है।

पंचम अंक में अर्जुन के पूछने पर श्री कृष्ण धर्म की सूक्ष्मता की ओर उस का ध्यान दिलाते हैं —

कृष्ण— अर्जुन। मा भूः कृपणः। किमैहिकसुखलाभेनैव धर्मन्याययोः निर्णयः। अतीन्द्रियः खलु धर्मः। तस्य फलमपि न करणगोचरम्।—

अर्जुन दिल छोटा न करो। क्या इस लोक का भौतिक सुख ही धार्मिक न्याय का निर्णय है। धर्म तो अत्यन्त सूक्ष्म है इन्द्रियों से परे है। उसका फल भी कानों से सुनाई नहीं देता।

प्रस्तुत नाटक की भाषा सरल और सुबोध है। लेखक ने अपने हृदय के भाव सरलतम भाषा में रखने ही उचित समझे किन्तु फिर भी संस्कृत में प्राचीनता की छाप है।

नान्दी के पश्चात् एकाएक नाटक आरम्भ हो जाता है। सूत्रधार और नटी द्वारा नाटक के लेखक का नाम तथा स्वयं नाटक के विषय में नाटककार ने कुछ भी कहना उचित नहीं समझा। इसका कारण कथानक की अति प्रतिद्धि और अति प्राचीनता भी हो सकता है और नाटककार की नाटकों के क्षेत्र में नये प्रयोग की इच्छा भी।

# करुणापारिजात — सामाजिक नाटक

यह नाटक शबरों की स्वतन्त्रता से सम्बन्धित है। गोरक्षनाथ नाम का विलासी राजा शबरों को स्वतन्त्रता देने के पक्ष में नहीं है किन्तु पारिजात शबरों की स्वतन्त्रता का पक्षपाती है। राजा गोरक्षनाथ पारिजात से इसी कारण द्वेष करता है, इसीलिए वह पारिजात की स्त्री करुणा को शबरों द्वारा हरण करवा लेता है। शबरों को इस रहस्य का कुछ पता नहीं होता, वे करुणा को कुमारी कन्या समझ कर उसे कारावास में डाल देते हैं तथा उसे गोरक्षनाथ का वरण करने की प्रेरणा देते हैं। करुणा वन के अधिकारी अवतंसक को स्मरण दिलाती है कि मैं उसी पारिजात की विवाहिता स्त्री हूं जिसने शबरों की अत्यन्त सहायता की है और अब भी शबरों को स्वतन्त्र करने के लिये सतत प्रयत्नशील है। इस सत्य का उद्घाटन होने के पश्चात् अवतंसक करुणा को माता के समान समझता है और अत्यन्त आदर करता है। करुणा शबर लोगों के मध्य ही रहती है। दूसरी ओर गोरक्षनाथ पारिजात को कष्ट देने के विचार से शबर लोगों का दमन करने के लिये उसी के नेतृत्व में सेना भेजता है। गोरक्षनाथ का पुत्र प्रमोद अपने पिता से बिल्कुल भिन्न प्रकृति का है। वह शबरों से घृणा नहीं करता वरन् उन्हें स्वतन्त्र करने के पक्ष में है। करुणा की छोटी बहन मुदिता का भी शबर हरण कर लेते हैं। एक ही स्थान पर रहते हुए भी कई कारणों वश करुणा और मुदिता परस्पर मिल नहीं पातीं। इसलिए दोनों ही एक दूसरे का पता न होने के कारण दुखी रहती हैं। प्रमोद की मां तीर्थ करने के लिये बाहर गई हुई हैं और वहीं से सन्देश भेजती है कि जिस कन्या के हाथ पर मुद्रिका यन्त्र बंधा हो वही तुम्हारी पत्नी है उसको रास्ते में हरण कर लिया गया है। प्रमोद अपनी माता की आज्ञानुसार तपस्वी वेश धारण करके वन में ऐसी कन्या ढूंढ़ने के लिये निकल पड़ता है। जिस वन में मुदिता आसीरी तथा पिच्छिला के साथ रह रही होती है वहीं पहुंचता है। अपना पीछा करने वालों से छुटकारा पाने के लिये प्रमोद, मुदिता और आसीरी का आश्रय लेता है। इन दोनों कन्याओं के संरक्षण में प्रमोद रहता है। मुदिता प्रमोद की बहुत ही सेवा करती है और इसी बीच प्रमोद को यह ज्ञात हो जाता है कि मुदिता के हाथ में वही यन्त्र बंधा हुआ है जिसका उसकी मातामही ने संकेत किया था। मुदिता को इससे बहुत प्रसन्नता होती है। इधर पारिजात शबरों का और राजा का परस्पर समझौता करवा के वन में शबरों के पास आता है। वहीं उसे मुदिता मिल जाती है। पहले वह मुदिता को ही करुणा समझ बैठता है किन्तु बाद में साक्षात्कार होने पर पत्नी की छोटी बहन मुदिता से मिल कर उसे बहुत प्रसन्नता होती है। अपनी सखियों के साथ मुदिता शबरों की जननी के दर्शन करने जाती है और यह जान कर उसके आनन्द का अन्त नहीं रहता तब वह यह देखती है कि शबरों की जननी और कोई नहीं उसी की बहन करुणा है। वहीं पर पारिजात और करुणा का भी परस्पर मेल हो जाता है और दोनों बहुत ही आनन्दित होते हैं। इतना सब कुछ हो जाने पर भी गोरक्षनाथ की आंखें नहीं खुलतीं वह शबरों का विरोध ही करता रहता है। अन्त में सभी शबर मिल कर गोरक्षनाथ को बन्दी बना लेते हैं और उसे प्राण से मार डालने की सोचते हैं किन्तु करुणा की आज्ञा से ऐसा नहीं हो पाता। गोरक्षनाथ को बाद में मालूम होता है कि करुणा और मुदिता का पिता उसका बाल सखा था इस दृष्टिकोण से गोरक्षनाथ इन दोनों का चाचा लगा। यह सोच कर गोरक्षनाथ को बहुत ग्लानि होती है। वह करुणा से क्षमा मांगने के लिये आता है किन्तु करुणा यह कहकर कि बच्चों से बड़े क्षमा नहीं मांगते स्वयं उसके अंक में बच्चों की तरह गिर जाती है। मुदिता प्रमोद को तथा आसीरी अवतंसक को परस्पर परिणय के प्रिय बन्धन में बांध देते हैं। ऐसी सुखद परिस्थिति का अन्त होता है।

जैसा कि कथानक से ही प्रकट होता है कि यह नाटक शबरों की स्वतन्त्रता से सम्बन्धित है। जो शबर कितनों वर्षों से दासता की शृंखला में जकड़े हुए थे वे धीरे धीरे कैसे उद्बुद्ध हुए, इस सत्य का उद्घाटन करने करने के लिये लेखक ने बहुत ही मनोहारी कथानक चुना है। जिस व्यक्ति को सदैव घृणा ही मिले, जिसे सभ्य

समाज सदैव तुच्छ दृष्टि से देखे वह फिर स्वयं को वैसा ही समझने लगता है । यही हाल शबरों का भी था। अवतंसक के शब्दों में कितनी गहरी वेदना भरी हुई है ––

वन – वासिनो वयम् – नास्मान् संमानयन्ति वा गणयन्ति वा नगर वासिनः –– नास्माकं हृदयं तत्र परीक्ष्यते –– नास्माकं मनुष्यतापि प्रमाणीक्रियते – वयं हि पितृपरम्परया भूस्वामिनां दास भूताः।

हम जंगल के निवासी हैं। शहर के लोग न तो हमें कुछ समझते ही हैं और न ही हमारा आदर करते हैं। वे हमारे दिल को नहीं परखते। हमारी मनुष्यता का भी उनके लिये कोई मूल्य नहीं। हम पितृ – परम्परा से ज़मीदारों के गुलाम हैं।

किन्तु लेखक सुधारवादी है और गांधी जी के सिद्धान्तों का अनुयायी है। इसलिए सदैव पिछड़ी हुई जातियां उसी गिरी हुई स्थिति में नहीं रह सकतीं। उन्हें जागना ही होगा इसलिए करमक जान के व्यक्ति के मुख से जो उद्‌गार निकले हैं वह मानो स्वयं लेखक के हृदय की ध्वनि हैं।

इदानीमुद्‌बुद्धाः प्रकृतयः –– जागरिता – जाति धमर्मनिर्विशेषं मनुष्याः – पृथिव्यां सर्वे एव मानवाः अनन्यवशत्वेन सकलकृत्यनिर्वहणार्थं समर्था जाताः। इतः परं व्यक्ति विशेषस्य साम्राज्यमधिकारो वा न शोभेत न वा तिष्ठेत्।

अब प्रजा में जागृति आ गई है। बिना किसी जाति या धर्म के भेद के लोग सचेत हो उठे हैं। भू – मंडल पर सभी लोग किसी की अधीनता में न रह कर सभी काम करने में समर्थ हो गये हैं। अब के बाद किसी विशेष व्यक्ति या देश अधिकार या साम्राज्य न तो अच्छा ही लगेगा और न ही शायद रह भी पायेगा।

शबरों का सरल जीवन, प्रकृति से निकटता और उनका भोलापन कुछ भी लेखक की दृष्टि से अछूता नहीं रहा। उनका जीवन अत्यन्त सरल है। यह सरलता उन्हें विचारों की सरलता प्रदान करती है। उनमें छल कपट की गन्ध भी नहीं रहती। जिससे प्रेम करेंगे दिल खोल कर करेंगे। उसी तरह यदि घृणा करेंगे तब भी उतने ही खुले रूप में। कोई दुराव छिपाव वे जानते ही नहीं। करुणा और मुदिता को जितना निश्छल प्रेम उन्होंने दिया सभ्य समाज से उसका शतांश भी मिलना दुर्लभ था। मुदिता यदि रोती है तो अकेली नहीं रोती। उसके साथ सभी बनवासी रोते हैं। तभी तो मुदिता को रोते देख शबर आभीरी कहती है –

सखि। किमेवं सर्वानपि वनवासिनो रोदयसि।

सखि क्यों इस तरह जंगल के निवासियों को रुला रही हो।

इसी तरह यदि मुदिता प्रसन्न है तो उसकी प्रसन्नता में ही सभी बनवासी आनन्द – मग्न हो उठते हैं।

लेखक ने जहां पर शबरों की भोली भाली युवतियों का सरल हास्य और उन्मुक्त वातावरण का चित्रण किया है वहां पर आधुनिक रंग में रंगी महिलाओं की कृत्रिमता के प्रति भी वह पूर्णतया सजग है। किस तरह आधुनिक शिक्षिता युवतियां हाव – भावपूर्ण कटाक्षों से युवकों को अपनी ओर आकर्षित करती हैं प्रमोद को कलाशाला की छात्रा दामिनी क्या कहती है ? सुनिए ––

परन्तु प्रिय ! नाहमधिकं कालं क्षेप्तुं शक्नामि ' सेतु क्षीरोदचन्द्रः सोत्कठम् पेक्षते मम सम्मतिम् । न पुनः क्षीरोदो धनादिना भवद्भ्यो न्यूनः —— परमत्यन्तं प्रियोऽसीति एतावन्तं कालमपेक्षितवती — प्रिय! किं त्वरितं सम्मत्या अनुरक्तं न कृतार्थयसि ?

दामिनी —— परन्तु प्रिय मैं और अधिक समय नहीं गंवा सकती । वह क्षीरोदचन्द्र उत्सुकता से मेरी सम्मति जानना चाहता है । यह बात नहीं कि क्षीरोदचन्द्र धन आदि से किसी प्रकार आपसे कम है । अपितु मुझे तुम अत्यन्त प्रिय हो । इसीलिए इतना समय मैं प्रतीक्षा करती रही । प्रिय क्या तुम शीघ्र अपनी सहमति प्रकट कर मुझे कृतार्थ करोगी ?

दामिनी अपनी प्रणय कथा कह कर जाती है उसी समय चंचला देवी अपना प्रणय निवेदन करने आ जाती है । उसका प्रणय-प्रलाप दूसरे ढ़ंग का है —

चंचला — कथं जीवित नाथम् उपसर्पन्त्या आगमनं शुभं न स्यात ? प्रियतम ! नियतं जानीषे अन्येऽपि बहवो विद्यन्ते परन्तु भवत् प्रेरणा तथा परिषिक्तं में हृदयं तान् सर्वानवमत्य त्वामेव आश्रियतुमिच्छति ।

चंचला — प्रियतम को पास आती हुई का आना क्यों न शुभ हो । प्रियतम निश्चय ही तुम जानते हो कि और भी बहुत से हैं पर आपकी प्रेम में मेरा मन ऐसा प्रगाढ़ है कि उन सबकी अवहेलना कर आपका ही सहारा लेना चाहता है ।

किन्तु इस प्रणय निवेदन के पीछे स्वार्थ छिपा हुआ है और उस स्वार्थ की पूर्ति वह शीघ्रातिशीघ्र करना चाहती है । विलम्ब नहीं कर सकती ।

चंचला — नैवंचेत् प्रमोद ! कुत्रत्यस्त्वं ! क्व वा अहं कथमावयोः अत्र परिचयः — कथं वा परिचयस्य परमा काष्ठा विवाहप्रसंग : — परं प्रियतम ! न पुनश्चंचला कालातिपातं सहते — अनेकेऽत्र पाणिप्रार्थिनः अपेक्षन्ते शीघ्रमेव भवता स्वमतं निश्चेतव्यम् ।

चंचला — यदि ऐसा न हो तो प्रमोद तुम कहो कि मैं कहां थी और कैसे हम दोनों का यहां परिचय हो जाना और परिचय की पराकाष्ठा और विवाह की बातचीत चलना ।

ये है भारतीय नारी के विवाह विषयक उद्‌गार जो कि पहले लज्जा का प्रतिमूर्ति समझी जाती थी ।

आज की भारतीय नारी किस दशा तक पहुंच चुकी है इसका सजीव चित्रण प्रमोद के शब्दों में सुनिए ——

एवं हि एतो मधुकरिका बहुषु विटपेषु संलग्ना अपि न तृप्यन्ति कम स्वायत्ती कृत्य, अपरानपि कदर्थयितुं बद्ध - दीक्षा लक्ष्यन्ते —

इस प्रकार ये भंवरिया अनेक टहनियों से चिपकी हुई भी तृप्त नहीं होतीं। जैसे तैसे एक को अपने बस में करके दूसरों को भी कष्ट पहुंचाने की दीक्षा इन्होंने ले रखी हैं ऐसा प्रतीत होता है।

आधुनिक शिक्षा में रंगी हुई युवतियां प्रेम को अस्थिर और केवल दिखावे की वस्तु समझती हैं। दामिनी एक तरफ तो प्रमोदचन्द्र को अपना सर्वस्व समर्पण करने के लिये उद्यत है किन्तु दूसरी ओर एक दूसरे युवक क्षीरोचन्द्र के साथ भी उतने ही ज़ोर से प्रणय निवेदन करती है।

दामिनी – अहमत्र दामिनी देवी मतप्रियतमे श्रीमति क्षीरोदचन्द्र सिंहे चिरमनुरज्यन्ती अद्य तस्य पाणिगृहीती भवितुं दृढ़ं प्रतिजाने ।

दामिनी – मैं दामिनी देवी यहां अपने प्रियतम श्रीमान् क्षीरोदचन्द्र सिंह के प्रति चिरकाल से अनुरक्त हुई आज उसकी परिणीता पत्नी बनने की दृढ़ प्रतिज्ञा करती हूं।

## • गांधीवाद '

शबरों की स्वतन्त्रता से सम्बन्धित होने के कारण यह स्पष्ट है कि लेखक गांधी जी का अनुयायी है तथा उनके विचारों से पूर्णतया सहमत है। तभी करुणा अवतंसक के उदासीनता भरे शब्दों का आशायुक्त शब्दों से उत्तर देती है।

करुणा – अचिरादस्य भाग्य परिवृतिर्नियतं भविता सत्यं परिष्कयेत – अवश्यमेव स्वभागधेयानां स्वयं नियामिका भवन्ति प्रजाः – तदैषां सर्वस्वत्यागेनापि निरापत्ता न सम्भाव्यते।

करुणा –– शीघ्र ही इसका भाग्य परिवर्तन अवश्यमेव होगा। सचमुच इसका सुधार होगा। यह अवश्य है कि प्रजा स्वयं अपने भाग्य की विधात्री होती है। तो ये सर्वस्व त्यागने पर भी आपत्तिहीन हो सकें इसकी कोई सम्भावना नहीं।

इसी प्रकार नाटक का नायक पारिजात भी गांधी जी के विचारों का अनन्य भक्त है ––

अहो ! भारतवर्षम्, एवमेव तव ललाटलेखनम् ! एवमेव अपारमनुभव स्वसन्ततीनां नीचत्वम् येषामस्माकं भारतवासिनाम् अद्यत्वेऽपि गांधिमहात्मना प्रदर्शितेष्वपि सत्यपथेषु न स्वावलम्बनशीलता यामुद्यमः कदा वा भारतीया युष्माकं परिष्कारः स्यात् अथवा किम्वा अथवया ? अवश्यम् अवश्यम् ––

ओह भारतवर्ष, तुम्हारे माथे पर इसी प्रकार लिखा था। इसी प्रकार तू अपनी सन्तानों की असीम नीचता को अनुभव कर हम भारतीयों में आज भी, महात्मा गांधी द्वारा सत्य के मार्ग को दिखाये जाने पर भी, स्वावलम्बनशीलता के प्रति उद्योग नहीं है। अरे भारतीयो भला कब आपका सुधार होगा अथवा अवश्य, अवश्य ।



1. अथवा इस अव्यय की बोलचाल में प्रयोग अज्ञानिकता की पराकाष्ठा है।

शबरों को अस्पृश्य कह कर स्वयं उच्च जातीय व्यक्तियों ने उनके मन में हीनता की भावना भर दी है यदि कोई उच्चजातीय व्यक्ति उन्हें छू ले तो इसके लिए वे स्वयं को अपराधी समझने लगते हैं। करुणा स्नेहवश शबर कन्या आसीरी का स्पर्श करती है तो आसीरी स्वयं ही ग्लानि से भर उठती है किन्तु करुणा के स्नेह सिक्त शब्दों से उसे सांत्वना मिलती है।

करुणा – ( तामालिंग्य ) भगिनि । मैवं शंकेथाः । सर्वत्र आवश्यकत्वम् एव स्पर्शनस्य कारणम्। कर्मसु केषुचित् सहोदरमपि न स्पृशामः –– तथैव केषुचित् भवदिवधान् – परन्तु यत्रावश्यकम्, भवतु वा तत्र स्वबन्धूनां गोष्ठी स्वेष्टदेवस्य सन्निधानम् – स्वस्य राज्ञः सम्मुखं वा अवशयं वयं युष्मान् अस्मदिवधान् अस्मतोऽपि कदाचित् गुणो – रधिकतरान् बाढं स्पृशामः बाढ़म् आलिंगामः ।

करुणा – ( उसका आलिंगन कर ) बहिन, इस तरह की शंका मत करो। सभी परिस्थितियों में आवश्यकता ही स्पर्श का कारण है। किन्हीं कामों में हम सहोदर का स्पर्श भी नहीं करते हैं पर किन्हीं अन्य कामों में आप जैसों को स्पर्श कर लेते हैं पर जहां आवश्यक हो। अपने बन्धुजनों की गोष्ठी हो या अपने इष्टदेव का सान्निध्य हो अपना राजा सामने हो तो हम अवश्य आपका आप जैसों का गुणों में अपने से भी उत्कृष्ट लोगों का स्पर्श करते ही हैं, अवश्य उनका आलिंगन करते हैं।

कहीं – कहीं पर गांधीवाद स्पष्ट रूप से शबरों के मुख से ध्वनित होता है। शबर – प्रबुद्ध हो रहे हैं अब वे किसी का अत्याचार नहीं सह सकते। अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा वे स्पष्ट शब्दों में करते हैं –

राजपुरुषाश्च अनियतेषु – अनुचितेषु कर्मसु शबरान् नियोजयितुम् इत प्रभृतिनैव पीडयितुम् अर्हन्तीति।

और राजपुरुष अनियमित और अनुचित कामों में शबरों ( भीलों ) को नहीं लगा सकते और न ही आज के बाद वे किसी को कष्ट पहुंचा सकते हैं।

## • सामाजिक दृष्टिकोण '

आजकल की आधुनिक युवतियां किस प्रकार प्राचीन परम्पराओं का त्याग कर आधुनिक छिछोरे पन का प्रदर्शन करती हैं समाज के इस स्वरूप का इस नाटक में बड़ा सुन्दर निरूपण किया गया है। वे तितलियों की तरह एक युवक से दूसरे युवक के पास प्रणय निवेदन करती हैं। किसी को अपने व्यवहार से निराश करती हैं और किसी के निष्ठुर व्यवहार से स्वयं निराश होती हैं। दामिनी एक तरफ तो प्रमोद के पास जाकर प्रणय निवेदन करती है किन्तु जब क्षीरोदचन्द्र के पास आती हे तो उससे अपने स्नेहासिक्त शब्दों में अपना प्रणय निवेदन करती है। ऐसी चंचल चित्त वाली युवतियां गृहस्थी का भार किस तरह वहन कर सकती हैं इसमें सन्देह है।

राजाओं के विलास युक्त जीवन की ओर लेखक ने दृष्टिपात किया है। साधारण व्यक्ति तो अपने परिश्रम का उचित मूल्य भी प्राप्त नहीं कर सकते। किन्तु राजा अपनी विलास सामग्री जुटाने में उचित अनुचित का कोई विचार नहीं करते। गोरक्षनाथ अपनी काम – वासना की शान्ति के लिये परिणीता करुणा को हरण करने में भी

लज्जित नहीं होता उसे सब कुछ प्राप्त है किन्तु करुणा नहीं मिलती तो उसे सम्पूर्ण संसार शून्य लगता है। उसके लिये यही कार्य इतने महत्व का है कि उसे अन्य राजकार्य सूझते ही नहीं, उसे तो केवल एक ही बात की धुन है — कपोत पक्षाणमधिकारी अवतंसकः तदिवरोधिनः परिजातस्य पत्नीं करुणां विजानन्नपि दृढ़ं मध्यनुरयितुं निर्बन्धयेत। ऐसे व्यक्ति जो केवल नारी को ही अपना उच्चतम ध्येय समझ लेते हैं उनसे सुचारू रूप से सशासन की बागडोर संभाली जा सकेती है ऐसी आशा करनी ही व्यर्थ है।

## गीत

लेखक को गीत बड़े प्रिय हैं चाहे स्वतन्त्रता की उल्लासमयी भावना हो चाहे व्यथा की मर्मान्तक पीड़ा हो अथवा मिलन की मधुर मधुरिमा हो लेखक ने उनकी अभिव्यक्ति के लिये सुन्दर और सरस गीतों का चयन किया है जो बहुत ही हृदय ग्राही और अवसरोपयुक्त है। चर्खा कातती हुई शबर कन्यायें और करुणा स्वतन्त्रता की आमोदमयी आशा में झूलती हुई भारतपुत्रों को जगाने का सन्देश देती हैं।

जागृत जागृत भारतपुत्रा जागृहि भारत नारि ! त्यजत विवादं भ्रातरिमेदं स्वीकृतनिजनकृत्यम् निन्दत चिरमभिवांछित सिद्धयां विदन्त चिन्मयसत्यम्। मानस वाचिक कायज कर्मसु निपुणतमा इह यूयम् शिक्षा संस्कृति धनजनपूर्णा जननी कल्पलतेयम्।

भारत के पूतो जागो, जागो। हे भारत की नारि जागो। विवाद को छोड़ो, भाई में फूट को समाप्त करो। और अपने लोगों को हे सखि, यह झूला तुम्हें सुखी करे। यह चंचल झूला हवा से डुलाई हुई एक छोटी सी लता के समान है।

खेलतु रुचिरं तरल तरंगे
रजनीकरकलापगतिफलिता ।
दिशि दिशि चकितं चालय नयने
अकलुषसरचिज मोहन लीले।
उपचयभयतां कुसुम विलासो
निरलस मनासिजयिह मधुकाले ।

तेरी सुकोशल अंगयष्टि यौवन नये नये उभार को सुन्दर सुगन्ध लिये है। यह (झूले में) इसी प्रकार कीडा करे जैसे कि चंचल तरंग में प्रतिबिम्बित चन्द्रमा की कला। अपने नयनों को चकित भाव से हर दिशा में घुमाओ। अरी निर्मल कमल के समान मोह कीडा करने वाली ! इस सन्त काल में कुसुमों की शोभा में वृद्धि हो एवम् प्रबुद्ध काम बढ़ जाय।

वैसे तो कथानक का चयन घटनाओं का उतार — चढ़ाव है और पात्रों का चरित्र चित्रण सब कुछ उत्तम है किन्तु इन सरस गीतों के कारण नाटक बहुत ही मनोहारी बन गया है जिससे पुनः पुनः पढ़ने पर भी इसमें रुचि बनी रहती है।

## – शैली –

लेखक की भाषा अत्यन्त प्रौढ़ और सुलझी हुई है। कहीं – कहीं पर तो प्राचीन संस्कृत लेखकों जैसी भाषा का प्रयोग किया है।

नहि दक्षिणामेव आक्रम्य सर्वदा सूर्य उदेति।
सूर्य सदा दक्षिण दिशा में आकर ही उदय नहीं होता।

कहीं कहीं पर शाश्वत सत्य का निरूपण बड़े ही सुन्दर सुन्दर वाक्यों के रूप में प्रस्तुत किया है।

अधिकारी की कन्या, आशा ही धैर्य का कारण है।

अथवा

सारमेयस्यापि सिंहगोष्ठीषु यथेष्टं प्रलापः :–

न आस्पर्द्धा – परन्तु आसन्नमरणत्वम्।

यदि कुत्ता भी सिंह की गोष्ठी में जी भर कर बकवास करे तो उसमें कारण स्पर्धा नहीं है अपितु मृत्यु की समीपता है।

किसी किसी स्थान पर लेखक ने मनोवैज्ञानिक तथ्यों को बड़े ही सुचारु रूप में प्रस्तुत किया है। इससे सिद्ध होता है कि लेखक न केवल नाटककार ही है अपितु गीतिकार और मनोवैज्ञानिक भी है। प्रमोद ने अपनी प्रियतमा की केवल एक बार झलक देखी थी, पुनः अब उसे देखता है तब वह बिल्कुल भिन्न वातावरण में और भिन्न परिस्थितियों में होती है। जहां उसकी उपस्थिति की कभी संभावना ही नहीं हो सकती वहीं पर उसे देख कर राजपुत्र प्रमोद कुछ निश्चय नहीं कर पाता। कभी वह सोचता है कि यही मेरी प्रियतमा है और कोई हो ही नहीं सकती और कभी पूर्णरूपेण निराश होकर कहता है कि भला मेरी प्रियतमा यहां कहां मुझे अत्यधिक प्रेम के कारण सभी स्थानों पर अपनी प्रिया ही दिखाई देती है। इस सम्पूर्ण अविश्चयात्मक परिस्थिति का चित्रण लेखक ने केवल एक वाक्य में कर दिया है।

इयमेव सा स्यात् – अथवा सवभिव तां मन्यते अत्यन्तं समुत्सुकः प्रमोदः।

शायद यह वही हो। अथवा उत्कंठित प्रमोद सबों को वही समझता है।

# करुणापारिजातम्
## (सामाजिक नाटक)

यह नाटक शबरों की स्वतन्त्रता से सम्बन्धित है। गोरक्षनाथ नाम का विलासी राजा शबरों को स्वतन्त्रता देने के पक्ष में नहीं है किन्तु पारिजात शबरों की स्वतन्त्रता का पक्षपाती है। राजा गोरक्षनाथ पारिजात से इसी कारण द्वेष करता है। इसीलिए वह पारिजात की स्त्री करुणा का शबरों द्वारा हरण करवा लेता है। शबरों को इस रहस्य का कुछ पता नहीं होता। वे करुणा को कुमारी कन्या समझ कारावास में डाल देते हैं तथा उसे गोरक्षनाथ का वरण करने की प्रेरणा देते हैं। करुणा वन के अधिकारी अवतंसक को स्मरण दिलाती है कि मैं उसी पारिजात की विवाहिता स्त्री हूं जिसने शबरों की अत्यन्त सहायता की है और अब भी शबरों को स्वतन्त्र करने के लिये सतत प्रयत्नशील है। इस सत्य का उद्घाटन होने के पश्चात् अवतंसक करुणा को माता के समान समझता है और अत्यन्त आदर करता है। करुणा शबर लोगों के मध्य ही रहती है। दूसरी ओर गोरक्षनाथ पारिजात को कष्ट देने के विचार से शबर लोगों का दमन करने के लिये उसी के नेतृत्व में सेना भेजता है। गोरक्षनाथ का पुत्र प्रमोद अपने पिता से बिल्कुल भिन्न प्रकृति का है। वह शबरों से घृणा नहीं करता वरन् उन्हें स्वतन्त्र करने के पक्ष में है। करुणा की छोटी बहन मुदिता का भी शबर हरण कर लेते हैं। एक ही स्थान पर रहते हुए भी कई कारणों वश करुणा और मुदिता परस्पर मिल नहीं पातीं। इसलिए दोनों ही एक दूसरे का पता न होने के कारण दुखी रहती हैं। प्रमोद की मां तीर्थ करने के लिये बाहर गई हुई हैं और वहीं से सन्देश भेजती है कि जिस कन्या के हाथ पर मुद्रिका यन्त्र बंधा हो वही तुम्हारी पत्नी है। उसका रास्ते में हरण कर लिया गया है। प्रमोद अपनी माता की आज्ञानुसार तपस्वी वेश धारण कर वन में ऐसी कन्या ढूंढ़ने के लिये निकल पड़ता है। जिस वन में मुदिता आभीरी तथा पिच्छिला के साथ रह रही होती है वहीं पहुंचता है। अपना पीछा करने वालों से छुटकारा पाने के लिये प्रमोद, मुदिता और आभीरी का आश्रय लेता है। इन दोनों कन्याओं के संरक्षण में प्रमोद रहता है। मुदिता प्रमोद की बहुत ही सेवा करती है और इसी बीच प्रमोद को यह ज्ञात हो जाता है कि मुदिता के हाथ में वही यन्त्र बंधा हुआ है जिसका उसकी मातामही ने संकेत किया था। मुदिता को इससे बहुत प्रसन्नता होती है। इधर पारिजात शबरों का और राजा का परस्पर समझौता करवा के वन में शबरों के पास आता है। वहीं उसे मुदिता मिल जाती है। पहले वह मुदिता को ही करुणा समझ बैठता है किन्तु बाद में साक्षात्कार होने पर पत्नी की छोटी बहन मुदिता से मिल कर उसे बहुत प्रसन्नता होती है। अपनी सखियों के साथ मुदिता शबरों की जननी के दर्शन करने जाती है और यह जान कर उसके आनन्द का अन्त नहीं रहता जब वह यह देखती है कि शबरों की जननी और कोई नहीं उसी की बहन करुणा है। वहीं पर पारिजात और करुणा का भी परस्पर मेल हो जाता है और दोनों बहुत ही आनन्दित होते हैं। इतना सब कुछ हो जाने पर भी गोरक्षनाथ की आंखें नहीं खुलतीं। वह शबरों का विरोध ही करता रहता है। अन्त में सभी शबर मिल कर गोरक्षनाथ को बन्दी बना लेते हैं और उसे प्राण से मार डालने की सोचते हैं किन्तु करुणा की आज्ञा से ऐसा नहीं हो पाता। गोरक्षनाथ को बाद में मालूम होता है कि करुणा और मुदिता का पिता उसका बाल सखा था। इस दृष्टिकोण से गोरक्षनाथ इन दोनों का चाचा लगा। यह सोच कर गोरक्षनाथ को बहुत ग्लानि होती है। वह करुणा से क्षमा मांगने के लिये आता है किन्तु करुणा यह कहकर कि बच्चों से बड़े क्षमा नहीं मांगते स्वयं उसके अंक में बच्चों की तरह गिर जाती है। मुदिता प्रमोद को तथा आभीरी अवतंसक को परस्पर परिणय के प्रिय बन्धन में बांध दिया जाता है। ऐसी सुखद परिस्थिति में नाटक का अन्त होता है।

जैसा कि कथानक से ही प्रकट है यह नाटक शबरों की स्वतन्त्रता से सम्बन्धित है। जो शबर कितनों वर्षों से दासता की शृंखला में जकड़े हुए थे वे धीरे धीरे कैसे उद्बुद्ध हुए, इस सत्य का उद्घाटन करने के लिये लेखक ने

बहुत ही मनोहारी कथानक चुना है। जिस व्यक्ति को सदैव घृणा ही मिले, जिसे सभ्य समाज सदैव तुच्छ दृष्टि से देखे वह फिर स्वयं को वैसा ही समझने लगता है । यही हाल शबरों का भी था। अवतंसक के शब्दों में कितनी गहरी वेदना भरी हुई है ––

वन – वासिनो वयम् – नास्मान् संमानयन्ति वा गणयन्ति वा नगरवासिनः –– नास्माकं हृदयं तत्र परीक्ष्यते –– नास्माकं मनुष्यतापि प्रमाणीक्रियते – वयं हि पितृपरम्परया भूस्वामिनां दासभूताः।

हम जंगल के निवासी हैं। शहर के लोग न तो हमें कुछ समझते ही हैं और न ही हमारा आदर करते हैं। वे हमारे दिल को नहीं परखते। हमारी मनुष्यता का भी उनके लिये कोई मूल्य नहीं। हम पितृ-परम्परा से ज़मीदारों के गुलाम हैं।

किन्तु लेखक सुधारवादी है और गांधी जी के सिद्धान्तों का अनुयायी है। इसलिए सदैव पिछड़ी हुई जातियां उसी गिरी हुई स्थिति में नहीं रह सकतीं। उन्हें जागना ही होगा इसलिए करमक जान के व्यक्ति के मुख से जो उद्‌गार निकले हैं वह मानो स्वयं लेखक के हृदय की ध्वनि हैं।

इदानीमुद्‌बुद्धाः प्रकृतयः –– जागरिता – जाति धमर्मनिर्विशेषं मनुष्याः – पृथिव्यां सर्वे एव मानवाः अनन्यवशत्वेन सकलकृत्यनिर्वहणार्थं समर्था जाताः। इतः परं व्यक्तिविशेषस्य साम्राज्यमधिकारो वा न शोभेत न वा तिष्ठेत्।

अब प्रजा में जागृति आ गई है। बिना किसी जाति या धर्म के भेद के लोग सचेत हो उठे हैं। भू – मंडल पर सभी लोग किसी की अधीनता में न रह कर सभी काम करने में समर्थ हो गये हैं। अब के बाद किसी विशेष व्यक्ति या देश पर अधिकार या साम्राज्य न तो अच्छा ही लगेगा और न ही शायद रह भी पायेगा।

शबरों का सरल जीवन, प्रकृति से निकटता और उनका भोलापन कुछ भी लेखक की दृष्टि से अछूता नहीं रहा। उनका जीवन अत्यन्त सरल है। यह सरलता उन्हें विचारों की सरलता प्रदान करती है। उनमें छल कपट की गन्ध भी नहीं है। जिससे प्रेम करेंगे दिल खोल कर करेंगे। उसी तरह यदि घृणा करेंगे तब भी उतने ही खुले रूप में। कोई दुराव छिपाव वे जानते ही नहीं। करुणा और मुदिता को जितना निश्छल प्रेम उन्होंने दिया सभ्य समाज से उसका शतांश भी मिलना दुर्लभ था। मुदिता यदि रोती है तो अकेली नहीं रोती। उसके साथ सभी वनवासी रोते हैं। तभी तो मुदिता को रोते देख शबर आभीरी कहती है –

सखि! किमेवं सर्वानपि वनवासिनो रोदयसि।

सखि क्यों इस तरह जंगल के निवासियों को रुला रही हो।

इसी तरह यदि मुदिता प्रसन्न है तो उसकी प्रसन्नता में ही सभी वनवासी आनन्द-मग्न हो उठते हैं।

लेखक ने जहां पर शबरों की भोली भाली युवतियों का सरल हास्य और उन्मुक्त वातावरण का चित्रण किया है वहां

पर आधुनिक रंग में रंगी महिलाओं की कृत्रिमता के प्रति भी वह पूर्णतया सजगता दिखाई है। किस तरह आधुनिक शिक्षिता युवतियां हाव-भावपूर्ण कटाक्षों से युवकों को अपनी ओर आकर्षित करती हैं यह प्रमोद की कलाशाला की छात्रा दामिनी से सुनिए–

परन्तु प्रिय ! नाहमधिकं कालं क्षेप्तुं शक्नामि ' स तु क्षीरोदचन्द्रः सोत्कठमपेक्षते मम सम्मतिम्। न पुनः क्षीरोदो धनादिना भवद्भ्यो न्यूनः– परमत्यन्तं प्रियोऽसीति एतावन्तं कालमपेक्षितवती – प्रिय! कथं त्वरितं सम्मत्या अनुरक्तं जनं न कृतार्थयसि ?

दामिनी– परन्तु प्रिय मैं और अधिक समय नहीं गंवा सकती। वह क्षीरोदचन्द्र उत्सुकता से मेरी सम्मति जानना चाहता है। यह बात नहीं कि क्षीरोदचन्द्र धन आदि से किसी प्रकार आपसे कम है। अपितु मुझे तुम अत्यन्त प्रिय हो। इसीलिए इतना समय मैं प्रतीक्षा करती रही। प्रिय क्यों नहीं तुम शीघ्र अपनी सहमति प्रकट कर मुझे कृतार्थ करते ?

दामिनी जैसे ही अपनी प्रणय कथा कह कर जाती है वैसे ही चंचला देवी अपना प्रणय निवेदन करने आ जाती है। उसका प्रणय-प्रलाप दूसरे ढ़ंग का है –

चंचला – कथं जीवितनाथम् उपसर्पन्त्या आगमनं शुभं न स्यात् ? प्रियतम ! नियतं जानीषे अन्येऽपि बहवो विद्यन्ते परन्तु भवत्प्रेरणा तथा परिषिक्तं मे हृदयं तान् सर्वानवमत्य त्वामेव आश्रियतुमिच्छति ।

चंचला – प्रियतम के पास आती हुई का आना क्यों न शुभ हो? प्रियतम निश्चय ही तुम जानते हो कि और भी बहुत से हैं पर आपके प्रेम में मेरा मन ऐसा प्रगा है कि वह उन सबकी अवहेलना कर आपका ही सहारा लेना चाहता है।

किन्तु इस प्रणय निवेदन के पीछे स्वार्थ छिपा हुआ है और उस स्वार्थ की पूर्ति वह शीघ्रातिशीघ्र करना चाहती है। विलम्ब नहीं कर सकती।

चंचला – नैवं चेत् प्रमोद ! कुत्रत्यस्त्वं ! वा अहं कथमावयोः अत्र परिचयः – कथं वा परिचयस्य परमा काष्ठा विवाहप्रसंग : – परं प्रियतम ! न पुनश्चंचला कालातिपातं सहते – अनेकेऽत्र पाणिप्रार्थिनः अपेक्षन्ते शीघ्रमेव भवता स्वमतं निश्चेतव्यम् ।

चंचला – यदि ऐसा न हो तो प्रमोद तुम कहो कि मैं कहां थी और कैसे हम दोनों का यहां परिचय हो जाना और परिचय की पराकाष्ठा और विवाह की बातचीत चलना।

ये है भारतीय नारी के विवाह विषयक उद्गार जो कि पहले लज्जा का प्रतिमूर्ति समझी जाती थी।

आज की भारतीय नारी किस दशा तक पहुंच चुकी है इसका सजीव चित्रण प्रमोद के शब्दों में सुनिए —

एवं हि एता मधुकरिका बहुषु विटपेषु संलग्ना अपि न तृप्यन्ति कमपि स्वायत्तीकृत्य, अपरानपि कदर्थयितुं बद्धदीक्षा लक्ष्यन्ते –

इस प्रकार ये भंवरिया अनेक टहनियों से चिपकी हुई भी तृप्त नहीं होतीं। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे तैसे एक को अपने बस में कर दूसरों को भी कष्ट पहुंचाने की दीक्षा इन्होंने ले रखी हैं।

आधुनिक शिक्षा में रंगी हुई युवतियां प्रेम को अस्थिर और केवल दिखावे की वस्तु समझती हैं। दामिनी एक ओर तो प्रमोदचन्द्र को अपना सर्वस्व समर्पण करने को उद्यत है, दूसरी ओर एक दूसरे युवक क्षीरोचन्द्र के साथ भी उतने ही ज़ोर से प्रणय निवेदन करती है।

दामिनी – अहमत्र दामिनी देवी मत्प्रियतमे श्रीमति क्षीरोदचन्द्रसिंहे चिरमनुरज्यन्ती अद्य तस्य पाणिगृहीती भवितुं दृढ़ं प्रतिजाने ।

दामिनी – मैं दामिनी देवी यहां अपने प्रियतम श्रीमत्न् क्षीरोदचन्द्र सिंह के प्रति चिरकाल से अनुरक्त हुई आज उसकी परिणीता पत्नी बनने की दृढ प्रतिज्ञा करती हूं।

## 'गांधीवाद'

शबरों की स्वतन्त्रता से सम्बन्धित होने के कारण यह स्पष्ट है कि लेखक गांधी जी का अनुयायी है तथा उनके विचारों से पूर्णतया सहमत है। तभी करुणा अवतंसक के उदासीनता भरे शब्दों का आशायुक्त शब्दों से उत्तर देती है।

करुणा – अचिरादस्य भाग्यपरिवृत्तिर्नियतं भविता सत्यं परिष्क्रयेत – अवश्यमेव स्वभागधेयानां स्वयं नियामिका भवन्ति प्रजाः – तदैषां सर्वस्वत्यागेनापि निरापत्ता न सम्भाव्यते।

करुणा – शीघ्र ही इसका भाग्य परिवर्तन अवश्यमेव होगा। सचमुच इसका सुधार होगा। यह अवश्य है कि प्रजा स्वयं अपने भाग्य की विधात्री होती है। तो ये सर्वस्व त्यागने पर भी आपत्तिहीन हो सकें इसकी कोई सम्भावना नहीं।

इसी प्रकार नाटक का नायक पारिजात भी गांधी जी के विचारों का अनन्य भक्त है ––

अहो ! भारतवर्षम्, एवमेव तव ललाटलेखनम् ! एवमेव अपारमनुभव स्वसन्ततीनां नीचत्वम्, येषामस्माकं भारतवासिनाम् अद्यत्वेऽपि गांधिमहात्मना प्रदर्शितेष्वपि सत्यपथेषु न स्वावलम्बनशीलतायामुद्यमः कदा वा भारतीयाः युष्माकं परिष्कारः स्यात अथवा, किम्वा अथवया ? अवश्यम् अवश्यम् ––

ओह भारतवर्ष, तुम्हारे माथे पर यही लिखा है। इसी प्रकार तू अपनी सन्तानों की असीम नीचता को अनुभव कर। हम भारतीयों में आज भी, महात्मा गांधी द्वारा सत्य के मार्ग को दिखाये जाने पर भी, स्वावलम्बनशीलता के प्रति

उत्साह नहीं है। अरे भारतीयो, भला कब आपका सुधार होगा। अथवा, अथवा से क्या, अवश्य (होगा), अवश्य ।

शबरों को अस्पृश्य कह कर स्वयं उच्च जातीय व्यक्तियों ने उनके मन में हीनता की भावना भर दी है यदि कोई उच्चजातीय व्यक्ति उन्हें छू ले तो इसके लिए वे स्वयं को अपराधी समझने लगते हैं। करुणा स्नेहवश शबर कन्या आभीरी का स्पर्श करती है तो आभीरी स्वयं ही ग्लानि से भर उठती है किन्तु करुणा के स्नेह सिक्त-शब्दों से उसे सांत्वना मिलती है।

करुणा – ( तामालिंग्य ) भगिनि! मैवं शंकेथाः । सर्वत्र आवश्यकत्वम् एव स्पर्शनस्य कारणम्। कर्मसु केषुचित् सहोदरमपि न स्पृशामः –– तथैव केषुचित् भवदि्वधान् – परन्तु यत्रावश्यकम्, भवतु वा तत्र स्वबन्धूनां गोष्ठी स्वेष्टदेवस्य सन्निधानम् – स्वस्य राज्ञः सम्मुखं वा अवश्यं वयं युष्मान् अस्मदि्वधान् अस्मत्तोऽपि कदाचित् गुणैरधिकतरान् बाढं स्पृशामः बाढम् आलिंगामः ।

करुणा – ( उसका आलिंगन कर ) बहिन, इस तरह की शंका मत करो। सभी परिस्थितियों में आवश्यकता ही स्पर्श का कारण है। किन्हीं कामों में हम सहोदर का स्पर्श भी नहीं करते हैं पर किन्हीं अन्य कामों में आप जैसों का स्पर्श कर लेते हैं। पर जहां आवश्यक हो, अपने बन्धुजनों की गोष्ठी हो या अपने इष्टदेव का सान्निध्य हो अपना राजा सामने हो तो हम अवश्य आपका आप जैसों का गुणों में अपने से भी उत्कृष्ट लोगों का स्पर्श करते ही हैं, अवश्य उनका आलिंगन करते हैं।

कहीं-कहीं पर गांधीवाद स्पष्ट रूप से शबरों के मुख से ध्वनित होता है। शबर प्रबुद्व हो रहे हैं अब वे किसी का अत्याचार नहीं सह सकते। अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा वे स्पष्ट शब्दों में करते हैं –

राजपुरुषाश्च अनियतेषु – अनुचितेषु कर्मसु शबरान् नियोजयितुम् इतः प्रभृति नैव पीडयितुम् अर्हन्तीति।

और राजपुरुष अनियमित और अनुचित कामों में शबरों ( भीलों ) को नहीं लगा सकते और न ही आज के बाद वे किसी को कष्ट पहुंचा सकते हैं।

## 'सामाजिक दृष्टिकोण'

आधुनिक युवतियां किस प्रकार प्राचीन परम्पराओं का त्याग कर छिछोरे पन का प्रदर्शन करती हैं, समाज के इस स्वरूप का इस नाटक में बड़ा सुन्दर निरूपण किया गया है। वे तितलियों की तरह एक युवक से दूसरे युवक के पास प्रणय निवेदन करती हैं। किसी को अपने व्यवहार से निराश करती हैं और किसी के निष्ठुर व्यवहार से स्वयं निराश होती हैं। दामिनी एक ओर तो प्रमोद के पास जाकर प्रणय निवेदन करती है, दूसरी ओर जब क्षीरोदचन्द्र के पास आती हे तो उससे अपने स्नेहासिक्त शब्दों में अपना प्रणय निवेदन करती है। ऐसी चंचल चित्त वाली युवतियां गृहस्थी का भार किस तरह वहन कर सकती हैं इसमें सन्देह है।

राजाओं के विलास युक्त जीवन की ओर भी लेखक ने दृष्टिपात किया है। साधारण व्यक्ति तो अपने परिश्रम का उचित मूल्य भी प्राप्त नहीं कर सकते। किन्तु राजा अपनी विलास सामग्री जुटाने में उचित–अनुचित का कोई

विचार नहीं करते। गोरक्षनाथ अपनी काम-वासना की शान्ति के लिये परिणीता करुणा का हरण करने में भी लज्जित नहीं होता। उसे सब कुछ प्राप्त है किन्तु करुणा नहीं मिलती तो उसे सम्पूर्ण संसार शून्य लगता है। उसके लिये यही कार्य इतने महत्व का है कि उसे अन्य राजकार्य सूझते ही नहीं। उसे तो केवल एक ही बात की धुन है – कपोतपक्षाणमधिकारी अवतंसकः तद्विरोधिनः परिजातस्य पत्नीं करुणां विजानन्नपि दृढं मध्यनुरयितुं निर्बन्धयेत। ऐसे व्यक्ति जो केवल नारी को ही अपना उच्चतम ध्येय समझ लेते हैं उनसे सुचारु रूप से शासन की बागडोर संभाली जा सके ऐसी आशा करना ही व्यर्थ है।

## गीत

लेखक को गीत बड़े प्रिय हैं। चाहे स्वतन्त्रता की उल्लासमयी भावना हो चाहे व्यथा की मर्मान्तक पीड़ा हो अथवा मिलन की मधुर मधुरिमा हो लेखक ने उनकी अभिव्यक्ति के लिये सुन्दर और सरस गीतों का चयन किया है जो बहुत ही हृदय ग्राही और अवसरोपयुक्त है। चर्खा कातती हुई शबर कन्यायें और करुणा स्वतन्त्रता की आमोदमयी आशा में झूलती हुई भारतपुत्रों को जगाने का सन्देश देती हैं।

जागृत जागृत भारतपुत्रा
जागृहि भारतनारि !
त्यजत विवादं भ्रातरि भेदं स्वीकृतनिजनकृत्यम्
नन्दत चिरमभिवांछितसिद्धयां
विदन्त चिन्मयसत्यम्।
मानसवाचिककायजकर्मसु निपुणतमा इह यूयम्
शिक्षा संस्कृति धनजनपूर्णा जननी कल्पलतेयम्।

भारत के पूतो जागो, जागो। हे भारत की नारि जागो। विवाद को छोड़ो, भाई में फूट को समाप्त करो। और अपने सखि, यह झूला तुम्हें सुखी करे। यह चंचल झूला हवा से डुलाई हुई एक छोटी सी लता के समान है।

खेलतु रुचिरं तरलतरंगे
रजनीकरकलापगतिफलिता ।
दिशि दिशि चकितं चालय नयने
अकलुषसरसिजमोहनलीले।
उपचयमयतां कुसुमविलासो
निरलसमनसिजमिह मधुकाले ।

तेरी सुकोमल अंगयष्टि यौवन के नये नये उभार की सुन्दर सुगन्ध लिये है। यह ( झूले में ) इसी प्रकार क्रीडा करे जैसे कि चंचल तरंग में प्रतिबिम्बित चन्द्रमा की कला। अपने नयनों को चकित भाव से हर दिशा में घुमाओ। अरी निर्मल कमल के समान मोह क्रीडा करने वाली ! इस बसन्त काल में कुसुमों की शोभा में वृद्धि हो एवम् प्रबुद्ध काम बढ़ जाय।

वैसे तो कथानक का चयन घटनाओं का उतार-चढ़ाव है और पात्रों का चरित्र चित्रण सब कुछ उत्तम है किन्तु इन सरस गीतों के कारण नाटक बहुत ही मनोहारी बन गया है जिससे पुनः पुनः पढ़ने पर भी इसमें रुचि बनी रहती है।

## — शैली —

लेखक की भाषा अत्यन्त प्रौढ़ और सुलझी हुई है। कहीं-कहीं पर तो प्राचीन संस्कृत लेखकों जैसी भाषा का इसमें प्रयोग है।

नहि दक्षिणामेव आक्रम्य सर्वदा सूर्य उदेति।
सूर्य सदा दक्षिण दिशा में आकर ही उदय नहीं होता।

कहीं कहीं पर शाश्वत सत्य का निरूपण बड़े ही सुन्दर सुन्दर वाक्यों में प्रस्तुत किया गया है।

अधिकारी की कन्या, आशा ही धैर्य का कारण है।

अथवा

सारमेयस्यापि सिंहगोष्ठीषु यथेष्टं प्रलापः :—

न आस्पर्द्धा — परन्तु आसन्नमरणत्वम्।

यदि कुत्ता भी सिंह की गोष्ठी में जी भर कर बकवास करे तो उसमें कारण स्पर्धा नहीं अपितु मृत्यु की समीपता है।

किसी किसी स्थान पर लेखक ने मनोवैज्ञानिक तथ्यों को बड़े ही सुचारु रूप में प्रस्तुत किया है। इससे सिद्ध होता है कि लेखक न केवल नाटककार ही है अपितु गीतिकार और मनोवैज्ञानिक भी। प्रमोद ने अपनी प्रियतमा की केवल एक बार झलक देखी थी, पुनः अब उसे देखता है तब वह बिल्कुल भिन्न वातावरण में और भिन्न परिस्थितियों में होती है। जहां उसकी उपस्थिति की कभी संभावना ही नहीं हो सकती वहीं पर उसे देख राजपुत्र प्रमोद कुछ निश्चय नहीं कर पाता। कभी वह सोचता है कि यही मेरी प्रियतमा है और कोई हो ही नहीं सकती और कभी पूर्णरूपेण निराश होकर कहता है कि भला मेरी प्रियतमा यहां कहां! मुझे अत्यधिक प्रेम के कारण सभी स्थानों पर अपनी प्रिया ही दिखाई देती है। इस सम्पूर्ण अनिश्चयात्मक परिस्थिति का चित्रण लेखक ने केवल एक वाक्य में कर दिया है।

इयमेव सा स्यात् — अथवा सर्वमेव मन्यते अत्यन्तं समुत्सुकः प्रमोदः।

शायद यह वही हो। अथवा उत्कंठित प्रमोद सबों को वही समझता है।

# सरस्वती — एकांकी नाटक

## लेखक : श्री सदाशिव दीक्षितः

तीन दृश्यों से युक्त सम्पूर्ण पद्यमयी संस्कृत में तथा आर्यावृत्त में लिखा गया यह नाटक संस्कृत तथा भारतीय संस्कृति से सम्बन्धित है। लेखक ने इस नाटक में यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि आजकल संस्कृत भाषा और आर्य संस्कृति दोनों का ही जो ह्रास दृष्टिगोचर होता है उसकी पुनः उन्नति कैसे हो सकती है। सबके मूल में अध्यापन प्रणाली में सुधार की आवश्यकता बताई गई है।

नान्दी के अन्त में तथा नेपथ्य में भारत की वन्दना स्वरूप गीत के पश्चात् प्रथम दृश्य में संस्कृत विद्वत्परिषद् के सामने अध्यक्ष पद पर सुरेश चन्द्र आसीन हैं। वे शिवेन्द्र कवि से प्रार्थना करते हैं कि वे प्रवचन द्वारा विद्वज्जनों को अपनी संस्कृत भाषा और अपनी संस्कृति के बारे में कुछ बतायें।

शिवेन्द्र कहते हैं कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् राष्ट्रभाषा कौन सी हो इस विषय पर बहुत वाद – विवाद हो रहा है किन्तु भला संस्कृत के अतिरिक्त राष्ट्र – भाषा पद पर आसीन होने योग्य कौन सी भाषा है। वही तो सम्पूर्ण भारतीय भाषाओं की जननी है। दर्शन, साहित्य और विज्ञान का जितना सूक्ष्म और विस्तृत ज्ञान आर्य जाति को था उतना और किसे होगा। आधुनिक राकेट तथा ' एटम ' सब ऐसी वस्तुएं हैं जिनका ज्ञान भारतीय मुनियों को था। अतः संस्कृत भाषा की उन्नति करना हम लोगों का परम कर्तव्य है।

शिवेन्द्र जी के भाषण के पश्चात् सुरेश चन्द्र जी कहते हैं कि इनके प्रवचन से बहुत सी बातों पर प्रकाश पड़ा है किन्तु हमें चाहिए कि हमें सहस्त्रों वर्ष पूर्व की भाषा को आधुनिक समय के अनुकूल बनाना चाहिए तभी उसे साधारण व्यक्ति भी ग्रहण कर सकेगा।

द्वितीय दृश्य में ——

भारत मन्दिर में बैठा हुआ तथा पाश्चात्य वेशधारी एक पुरुष भारत का वैभव तथा उसी वैभव के कारण भारत विदेशियों द्वारा लूटा जाता है, इस विषय में चिन्तन करता है। उधर से शिवेन्द्र भारत का गुणगान करता हुआ आता है। सम्पूर्ण भारत की विशालता और राजा पुरु तथा अशोक आदि की महानता का यशोगान करता हुआ भारतवर्ष की चन्दन और अक्षत से पूजा करता है। फिर बैठे हुए को सम्बोधित करके कहता है कि युवरूप देश ( यूरोप ) आदि सम्पूर्ण पाश्चात्य देशों में भारत संस्कृति का सन्देश दो तथा उन्हें बताओ कि प्राचीन काल में भी भारत ही उनका सांस्कृतिक शिक्षक था।

नन्दन जो कि इतिहासज्ञ होने पर भी कहता है कि दो सौ वर्षों की दासता से ही भारत में इतनी दीनता आ गई है कि कभी ये देश वैभव शाली था इस विषय में भी सन्देह होता है। इस पर शिवेन्द्र उसे बताते हैं कि सम्पूर्ण पाश्चात्य जगत में अभी भी भारतीय संस्कृति का ही अनुशीलन होता है। भाक्षिक देश में अभी तक रामगाथा गायी जाती है।

?. श्वेत, पीत, रक्त और कृष्ण, सृष्टि के चार युगों की व्यवस्थिति की है और प्रत्येक युग के अन्त में प्रलय होती

है। इसके पश्चात् दोनों भारत की स्तुति में गाते हैं।

तृतीय दृश्य में ---

एक पुरुष, आसनस्थ शिवेन्द्र से प्रश्न करता है कि भारतवर्ष के लोग समुद्र यात्रा का निषेध करते हैं। अतः संस्कृत के कारण ही वे कूप मंडूक बने हुए हैं। इस प्रश्न के उत्तर में शिवेन्द्र कहते हैं संस्कृत भाषा तो विश्व भाषा थी, कूप मंडूक भाषा की संज्ञा देना उचित नहीं है। कम्बोज देश के शिला – लेख, भारतीय नामों के अनुसार ही नामकरण यह द्योतित करते हैं कि कम्बोज देश में भारतीय संस्कृति ही थी। मलय द्वीप के तो कई शब्द ही संस्कृत से ही उद्भूत हुए हैं।

बहुत से यूनानी और अंग्रेज़ी शब्दों की जननी संस्कृत भाषा है इसका विश्वास हो जाने पर नागेश ( द्वितीय पुरुष पात्र ) पूछता है कि यदि संस्कृत राष्ट्रभाषा जो जाय तो उसकी उन्नति के लिये अथवा प्रचार के लिये विद्वज्जन क्या करेंगे। इसके उत्तर में शिवेन्द्र कहते हैं कि बालकों को प्रारम्भ से ही अपनी प्रान्तीय भाषा के साथ साथ राष्ट्र भाषा संस्कृत के भी कतिपय शब्द चाहिएं तभी संस्कृत भाषा लोग सीख सकेंगे। तथा संस्कृत भाषा के माध्यम से ही अर्थशास्त्र, राज्य – शास्त्र तथा इतिहास आदि का ज्ञान बालकों को देना चाहिए।

शैली – यह तो सिद्ध है कि नाटक संस्कृत भाषा के प्रचार और उन्नति के क्या क्या उपाय हो सकते हैं --- इन्हें दृष्टि से रख कर लिखा गया है। सम्पूर्ण नाटक पद्यमय होने के कारण उसमें भाषा लालित्य होने के कारण उसमें भाषा लालित्य अत्यधिक है। आधुनिक शिक्षा प्रणाली में क्या क्या दोष हैं इसका लेखक ने अच्छी प्रकार विवेचन किया है।

यदि विज्ञाः प्रान्तीयान् निजदेशे व्यवहृतान् शब्दान् अमराणां भाषाया बाल्क बोधे प्रयुंजीरन्ख तर्ह्येतस्या विहन राष्ट्रे सुगमः प्रचारः स्यात्। प्रान्तिक दैशिक शब्दान् साहित्यादौ प्रयुज्जन्तः ग्रन्थान् रचयेयुस्ते।

अर्थात् – यदि विद्वान् लोग बालक बोध में अपने प्रान्तीय प्रचलित शब्दों के साथ साथ संस्कृत शब्दों का प्रयोग करें तो राष्ट्र भाषा का प्रचार बहुत सुगम हो जायगा। उन्हें ऐसे शब्द ग्रन्थ की रचना करते समय ही प्रयुक्त करने चाहिए।

कहीं – कहीं पर लेखक ने अंग्रेजी मुहावरों का संस्कृत में अनुवाद भी दिया है। इससे उनके इंगलिश भाषा में भी अच्छी गति होने का परिचय मिलता है। जैसे –

आवश्यकता माता विष्कारणाम्।
अर्थात् – आवश्यकता अविष्कारों की जननी है।

उनके नाटकों में किस ज्वलन्त प्रश्न का उत्तर है इसका संकेत प्रस्तावना में उन्होंने स्वयं कर दिया है।

स्वतन्त्रताणः सुखसरितो भारतो देशः निजरूपं निजसंस्कृतिमथ निज भाषां विवेचयति। भाषायाः संस्कृत्या

है। इसके पश्चात् दोनों भारत की स्तुति में गाते हैं।

तृतीय दृश्य में ---

एक पुरुष, आसनस्थ शिवेन्द्र से प्रश्न करता है कि भारतवर्ष के लोग समुद्र यात्रा का निषेध करते हैं। अतः संस्कृत के कारण ही वे कूप मंडूक बने हुए हैं। इस प्रश्न के उत्तर में शिवेन्द्र कहते हैं संस्कृत भाषा तो विश्व भाषा थी, कूप मंडूक भाषा की संज्ञा देना उचित नहीं है। कम्बोज देश के शिला – लेख, भारतीय नामों के अनुसार ही नामकरण यह द्योतित करते हैं कि कम्बोज देश ामें भारतीय संस्कृति ही थी। मलय द्वीप के तो कई शब्द ही संस्कृत से ही उद्भूत हुए हैं।

बहुत से यूनानी और अंग्रेज़ी शब्दों की जननी संस्कृत भाषा है इसका विश्वास हो जाने पर नागेश ( द्वितीय पुरुष पात्र ) पूछता है कि यदि संस्कृत राष्ट्रभाषा जो जाय तो उसकी उन्नति के लिये अथवा प्रचार के लिये विद्वज्जन क्या करेंगे। इसके उत्तर में शिवेन्द्र कहते हैं कि बालकों को प्रारम्भ से ही अपनी प्रान्तीय भाषा के साथ साथ राष्ट्र भाषा संस्कृत के भी कतिपय शब्द चाहिएं तभी संस्कृत भाषा लोग सीख सकेंगे। तथा संस्कृत भाषा के माध्यम से ही अर्थशास्त्र, राज्य – शास्त्र तथा इतिहास आदि का ज्ञान बालकों को देना चाहिए।

शैली – यह तो सिद्ध है कि नाटक संस्कृत भाषा के प्रचार और उन्नति के क्या क्या उपाय हो सकते हैं --- इन्हें दृष्टि से रख कर लिखा गया है। सम्पूर्ण नाटक पद्यमय होने के कारण ~~उसमें भाषा लालित्य होने के कारण~~ उसमें भाषा लालित्य अत्यधिक है। आधुनिक शिक्षा प्रणाली में क्या क्या दोष हैं इसका लेखक ने अच्छी प्रकार विवेचन किया है।

यदि विज्ञाः प्रान्तीयान् निजदेशे व्यवहृतान् शब्दान् अमराणां भाषाया बालक बोधे प्रयुंजीरन्खतर्ह्येतस्या विहन राष्ट्रे सुगमः प्रचारः स्यात्। प्रान्तिक दैशिक शब्दान् साहित्यादौ प्रयुज्जन्तः ग्रन्थान् रचयेयुस्ते।

अर्थात् – यदि विद्वान् लोग बालक बोध में अपने प्रान्तीय प्रचलित शब्दों के साथ साथ संस्कृत शब्दों का प्रयोग करें तो राष्ट्र भाषा का प्रचार बहुत सुगम हो जायगा। उन्हें ऐसे शब्द ग्रन्थ की रचना करते समय ही प्रयुक्त करने चाहिए।

कहीं – कहीं पर लेखक ने अंग्रेजी मुहावरों का संस्कृत में अनुवाद भी दिया है। इससे उनके ~~इंगलिश~~ भाषा में भी अच्छी गति होने का परिचय मिलता है। जैसे –

आवश्यकता माता विष्काराणाम्।
अर्थात् – आवश्यकता अविष्कारों की जननी है।

उनके नाटकों में किस ज्वलन्त प्रश्न का उत्तर है इसका संकेत प्रस्तावना में उन्होंने स्वयं कर दिया है।

स्वतन्त्रताणः सुखसरितो भारतो देशः निजरूपं निजसंस्कृतिमथ निज भाषां विवेचयति। भाषायाः संस्कृत्या

सम्बन्धस्तार्किकैः ख्यातः अन्योन्याश्रयनाम्ना। अतएव ईसौ महान् प्रश्नः भाषा सम्बन्धगतः सर्वेषां मनसि जागर्ति।

अर्थात् – स्वतन्त्रता के सुख से भरा – पूरा यह भारत देश अपने स्वरूप, संस्कृति और भाषा का विवेचन करता है। भाषा और संस्कृति का सम्बन्ध अन्योन्याश्रित है। इसलिए यह भाषा सम्बन्धी महान् प्रश्न सबके हृदय में उठता है।

लेखक ने कितने ही ऐसे अंग्रेजी के शब्दों को उद्धृत किया है जिनका मूल स्रोत वह संस्कृत के शब्दों को ही मानते हैं। ' साकेंटीज ' शब्द का उद्भव वे संस्कृत के ' स्वीकृति ' को ही मानते हैं।

# सरस्वती

## एकांकी नाटक

श्री सदाशिव दीक्षित प्रणीन्त

तीन दृश्यों वाला सम्पूर्ण पद्यमयी संस्कृत में तथा आर्यावृत्त में रचित यह एकांकी संस्कृत तथा भारतीय संस्कृति से सम्बन्धित है। लेखक ने इस में यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि आजकल संस्कृत भाषा और आर्य संस्कृति दोनों का ही जो ह्रास दृष्टिगोचर होता है उसकी पुनः उन्नति कैसे हो सकती है। सबके मूल में अध्यापन प्रणाली में सुधार की आवश्यकता बताई गई है।

नान्दी के अन्त में तथा नेपथ्य में भारत की वन्दना स्वरूप गीत के पश्चात् प्रथम दृश्यं में संस्कृत विद्वत्परिषद् के सामने अध्यक्ष पद पर सुरेश चन्द्र आसीन हैं। वे शिवेन्द्र कवि से प्रार्थना करते हैं कि वे प्रवचन द्वारा विद्वज्जनों को अपनी संस्कृत भाषा और अपनी संस्कृति के बारे में कुछ बतायें।

शिवेन्द्र कहते हैं कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् राष्ट्रभाषा कौन सी हो इस विषय पर बहुत वाद–विवाद हो रहा है किन्तु भला संस्कृत के अतिरिक्त राष्ट्र-भाषा पद पर आसीन होने योग्य कौन सी भाषा है। वही तो सम्पूर्ण भारतीय भाषाओं की जननी है। दर्शन, साहित्य और विज्ञान का जितना सूक्ष्म और विस्तृत ज्ञान आर्य जाति को था उतना और किसे होगा। आधुनिक राकेट तथा 'एटम' सब ऐसी वस्तुएं हैं जिनका ज्ञान भारतीय मुनियों को था। अतः संस्कृत भाषा की उन्नति करना हम लोगों का परम कर्तव्य है।

शिवेन्द्र के भाषण के पश्चात् सुरेश चन्द्र कहते हैं कि इनके प्रवचन से बहुत सी बातों पर प्रकाश पड़ा है किन्तु हमें चाहिए कि हमें सहस्रों वर्ष पूर्व की भाषा को आधुनिक समय के अनुकूल बनायें तभी उसे साधारण व्यक्ति भी ग्रहण कर सकेगा।

द्वितीय दृश्य–

भारत मन्दिर में बैठा हुआ तथा पाश्चात्य वेशधारी एक पुरुष भारत का वैभव तथा उसी वैभव के कारण भारत विदेशियों द्वारा लूटा जाता है, इस विषय में चिन्तन करता है। उधर से शिवेन्द्र भारत का गुणगान करता हुआ आता है। सम्पूर्ण भारत की विशालता और राजा पुरु तथा अशोक आदि की महानता का यशोगान करता हुआ भारतवर्ष की चन्दन और अक्षत से वह पूजा करता है। फिर बैठे हुए को सम्बोधित करके कहता है कि युवरूप देश ( यूरोप ) आदि सम्पूर्ण पाश्चात्य देशों में भारत संस्कृति का सन्देश दो तथा उन्हें बताओ कि प्राचीन काल में भी भारत ही उनका सांस्कृतिक शिक्षक था।

नन्दन जो कि इतिहासज्ञ होने पर भी कहता है कि दो सौ वर्षो की दासता से ही भारत में इतनी दीनता आ गई है कि कभी ये देश वैभव शाली था इस विषय में भी सन्देह होता है। इस पर शिवेन्द्र उसे बताते हैं कि सम्पूर्ण पाश्चात्य जगत् में अभी भी भारतीय संस्कृति का ही अनुशीलन होता है। माक्षिक देश में अभी तक रामगाथा गायी जाती है।

श्वेत, पीत, रक्त और कृष्ण, सृष्टि के चार युगों की व्यवस्थिति की है और प्रत्येक युग के अन्त में प्रलय होती

है। इसके पश्चात् दोनों भारत की स्तुति में गीत गाते हैं।

तृतीय दृश्य–

एक पुरुष, आसनस्थ शिवेन्द्र से प्रश्न करता है कि भारतवर्ष के लोग समुद्र यात्रा का निषेध करते हैं। अतः संस्कृत के कारण ही वे कूप मंडूक बने हुए हैं। इस प्रश्न के उत्तर में शिवेन्द्र कहते हैं संस्कृत भाषा तो विश्व भाषा थी। इसे कूप मंडूक भाषा की संज्ञा देना उचित नहीं है। कम्बोज देश के शिला-लेख, भारतीय नामों के अनुसार ही नामकरण यह द्योतित करते हैं कि कम्बोज देश में भारतीय संस्कृति ही थी। मलय द्वीप के तो कई शब्द ही संस्कृत से उद्भूत हुए हैं।

बहुत से यूनानी और अंग्रेज़ी शब्दों की जननी संस्कृत भाषा है इसका विश्वास हो जाने पर नागेश (द्वितीय पुरुष पात्र) पूछता है कि यदि संस्कृत राष्ट्रभाषा जो जाय तो उसकी उन्नति के लिये अथवा प्रचार के लिये विद्वज्जन क्या करेंगे। इसके उत्तर में शिवेन्द्र कहते हैं कि बालकों को प्रारम्भ से ही अपनी प्रान्तीय भाषा के साथ साथ राष्ट्र भाषा संस्कृत के भी कतिपय शब्द जानने चाहिएं तभी संस्कृत भाषा लोग सीख सकेंगे। तथा संस्कृत भाषा के माध्यम से ही अर्थशास्त्र, राज्य–शास्त्र तथा इतिहास आदि का ज्ञान बालकों को देना चाहिए।

शैली – यह तो स्पष्ट है कि नाटक संस्कृत भाषा के प्रचार और उन्नति के क्या क्या उपाय हो सकते हैं– इन्हें दृष्टि से रख कर इस नाट्यकृति की रचना हुई है। सम्पूर्ण कृति पद्यमय होने के कारण उसमें भाषा लालित्य अत्यधिक है। आधुनिक शिक्षा प्रणाली में क्या क्या दोष हैं इसका लेखक ने अच्छी प्रकार विवेचन किया है।

यदि विज्ञाः प्रान्तीयान् निजदेशे व्यवहृतान् शब्दन् अमराणां भाषाया बालकबोधे प्रयुंजीरन्ख तर्ह्येतस्या विहन राष्ट्रे सुगमः प्रचारः स्यात्। प्रान्तिकदैशिक शब्दन् साहित्यादौ प्रयुञ्जन्तः ग्रन्थान् रचयेयुस्ते।

अर्थात् – यदि विद्वान् लोग बालक-बोध में अपने प्रान्तीय प्रचलित शब्दों के साथ साथ संस्कृत शब्दों का प्रयोग करें तो राष्ट्र भाषा का प्रचार बहुत सुगम हो जायगा। उन्हें ऐसे शब्द ग्रन्थ की रचना करते समय ही प्रयुक्त करने चाहिए।

कहीं-कहीं पर लेखक ने अंग्रेजी मुहावरों का संस्कृत में अनुवाद भी दिया है। इससे उनके अंग्रेज़ी भाषा में भी अच्छी गति होने का परिचय मिलता है। जैसे–

आवश्यकता माता ऽऽविष्काराणाम् ।
अर्थात् – आवश्यकता अविष्कारों की जननी है।

उनके नाटकों में किस ज्वलन्त प्रश्न का उत्तर है इसका संकेत प्रस्तावना में उन्होंने स्वयं कर दिया है।

स्वतन्त्रतायाः सुखभरितो भारतो देशः निजरूपं निजसंस्कृतिमथ निजभाषां विवेचयति। भाषायाः संस्कृत्या सम्बन्धस्तार्किकैः ख्यातः अन्योन्याश्रयनाम्ना। अतएवासौ महान् प्रश्नः भाषा सम्बन्धगतः सर्वेषां मनसि जागर्ति।

अर्थात् – स्वतन्त्रता के सुख से भरा-पूरा यह भारत देश अपने स्वरूप, संस्कृति और भाषा का विवेचन करता है। भाषा और संस्कृति का सम्बन्ध अन्योन्याश्रित है। इसलिए यह भाषा सम्बन्धी महान् प्रश्न सबके हृदय में उठता है।

लेखक ने कितने ही ऐसे अंग्रेजी के शब्दों को उद्धृत किया है जिनका मूल स्रोत वह संस्कृत के शब्दों को ही मानते हैं। 'सेक्रेटीज' शब्द का उद्भव वे संस्कृत के 'स्वीकृति' को ही मानते हैं।

# हर्ष दर्शनम्

आधुनिक काल में संस्कृत भाषा में लिखे गये नाटकों की कितनी अल्प संख्या है इस ओर दृष्टिपात करवाते हुए इस नाटयकृति के रचयिता श्री डेग्वेकर पाण्डुरंग शास्त्री लिखते हैं –

सूत्रधार – मारीष! चिरकालं राजाश्रयाभावात् वाऽन्यकारेणेन बा संस्कृतभाषामधिकृत्य नवनाटकनिर्मितिः अत्यल्पप्रमाणा। किं बहुना उदुंबरकुसुमप्रायेव। क्वचित् दिष्ट्या दृष्टिपथं आयाति। एतादृशी दशा वर्तते। अस्यामपि दशायां संस्कृत-भाषया विरचितस्य 'हर्षदर्शनाख्यस्य' नव नाटकस्य प्रयोगो वर्तत इति घोषणां श्रत्वैव किमिद नवनाटकमिति दर्शन कुतूहलिनी विद्वत्प्रचुरा परिषदेषा सोत्सुकं तिष्ठति।

जिस वस्तु का प्रचार बहुत कम हो जाता है और वह यदा-कदा ही दृष्टिगोचर होती है, उसे देखने का कौतूहल लोगों में बहुधा हो जाता है। आधुनिक समय में यही अवस्था संस्कृत नाटक की हो रही है। बहुत ही कम संख्या में लिखे जाने के कारण और उससे भी कम अभिनय के योग्य होने के कारण यदि कहीं भी संस्कृत नाटकों का अभिनय प्रदर्शित किया जाता है तो वहां दर्शक केवल इस कौतूहल के लिये जाते हैं कि संस्कृत नाटक में कैसा और किस प्रकार अभिनय किया जाता है। उसे पूरा समझ कर उसकी प्रशंसा करना तो बहुत ही कम लोगों के भाग्य में होता है। ऐसी भावना की ओर ही दृष्टिपात करवाना ही लेखक का उद्देश्य है।

नाटक का कथानक – महाराज हर्षवर्धन की उत्तर भारत की दिग्विजय से सम्बन्धित है। सूत्रधार लेखक का परिचय निम्नलिखित शब्दों में देता है –

तस्मादस्मिन् सारस्वतानुकूलकाले विद्वज्जनानुरोधात् पुष्यपत्तनवासिना कुलपरम्परागतसाहित्यादिविरचय्य विद्याप्रवीणेन, डेग्वेकरोपनामकेन पांडुरंगाख्येन कविना कुरुक्षेत्रनामकं महाकाव्यं रचयित्वा सर्गबन्धात्मककाव्यरचनारुचिं किंचित् विहाय, इदं हर्षदर्शनाख्यं नवनाटकंव्यरचि।

इतने में ही नेपथ्य से सूचना मिलती है कि महाराज उत्तर दिग्विजय के लिये प्रस्थान करेंगे। उसके लिये उत्सव का दिवस कल है। अतः कल ही शाम को सभी लोग सपरिवार आकर राजा का अभिनन्दन करें। सूत्रधार स्वयं भी इस शुभ अवसर पर अपना प्रयोग कौशल दिखाने के लिये प्रस्तुत होता है किन्तु इतने में दूसरी ओर से उसे दो स्त्रियों का वार्तालाप सुनाई देता है। पहले तो, उसे स्वर अपरिचित सा लगता है किन्तु बाद में स्मरण करके कहता है कि अब मुझे मालूम हो गया है। उद्यान में राजा शान्ति वर्म की कन्या प्रतिमा तथा उसके सचिव की कन्या चन्द्रिका हैं। राजा शान्ति वर्मा का सम्पूर्ण राज्य चारुदेव ने अपहरण कर लिया है इसलिए शान्ति वर्मा की कन्या प्रतिमा अपने बाल्यकाल से ही मामा के पास ही रही है और वहीं उसने युद्ध विद्या की शिक्षा ग्रहण की है। अब आश्रय के अभाव में सभी लोग कुटुम्ब सहित राजा हर्ष के आश्रय में आ गये हैं। प्रतिमा का मातुल परम पूज्य भर्गाचार्य का शिष्य है। इतना कहकर सूत्रधार तो चला जाता है। उद्यान में प्रतिमा और चन्द्रिका परस्पर वार्तालाप करती दिखाई देती हैं। उन्होंने राजकीय उद्यान में बिना आज्ञा के प्रवेश किया है इसलिए वे भयभीत हैं। उद्यानरक्षक आकर उन्हें सूचना देता है कि बिना आज्ञा के वे उद्यान के भीतर क्यों आई हैं। अब उन्हें रास्ता छोड़ कर दूर खड़ा होना चाहिए क्योंकि अभी राजोद्यान में महाराज हर्ष पधार रहे हैं। उसके इतना कहते ही महाराज हर्ष अपने मित्र चकोर के साथ उद्यान में प्रवेश करते हैं। दोनों सखियां उन्हें दिखाई पड़ जाती हैं। प्रतिमा राजा हर्ष की ओर चन्द्रिका चकोर की

ओर आकर्षित होती है। प्रतिमा और चन्द्रिका दोनों प्रार्थना करती हैं कि उन्हें आश्रय चाहिए। इस पर हर्ष कहते हैं कि यदि राजा के आश्रय में रहने की इच्छा है तो इच्छा पूर्ण होगी। इसके पश्चात् सभी लोग चले जाते हैं। भर्गाचार्य अपनी शिष्य मंडली के साथ प्रवेश करते हैं। वे अपने शिष्यों से कहते हैं कि चाहे वैराग्य ग्रहण किया होने के कारण उन्हें संसार से अलग रहना चाहिए किन्तु फिर भी लोक कल्याण की भावना से संसार में कहां क्या हो रहा है इसका ध्यान रखना ही पड़ता है। इसलिए हर्ष को बचाने के लिये उसके शत्रु पक्ष ने क्या षड्यंत्र किया है। इसकी सूचना उन्हें उसे देनी है। वे चकोर से पूछते हैं कि उत्सव में आसनों की व्यवस्था ठीक तरह से कर दी है? इस पर चकोर उन्हें आश्वासन देता है कि सम्पूर्ण कार्य ठीक तरह से किया गया है। भर्गाचार्य बताते हैं कि उत्तर प्रदेश का भ्रमण करते समय मैंने विश्वस्त सूत्रों से पता लगाया है कि हर्ष के उत्तर दिग्विजय की सूचना पाने पर जलन के मारे मगध का राजा शशांक चंडदेव को प्रोत्साहित कर रहा है। वे दोनों ही हर्ष के वध के लिये गुप्त योजना बना रहे हैं। योजना की सफलता के लिये उन लोगों ने हर्ष के राज्य में एक मंडल की स्थापना भी की है। यह सम्पूर्ण सूचना देने के लिये ही भर्गाचार्य वहां से शीघ्रातिशीघ्र चल कर आये हैं। चकोर सम्पूर्ण सूचना पाकर चला जाता है। इसके पश्चात् भर्गाचार्य अपने शिष्य वरुण और अरुण से कहते हैं कि वे मध्याह्न सन्ध्या के लिये जा रहे हैं। उनके शिष्य उनसे नालन्दा में उध्ययन करने के लिये आये हुए चीनी विद्यार्थी ह्वेन सांग के विषय में कुछ पूछते हैं। भर्गाचार्य उन्हें बताते हैं कि विदेशी छात्र हमारी संस्कृति का अध्ययन करने के लिये आते हैं, इस कार्य के लिये उनके देश वाले उन्हें धन और आदर से सम्मानित करते हैं।

द्वितीय अंक में – हर्ष के गुप्त प्रासाद मन्दिर में हर्ष चकोर गुप्तचर शात निशात और गुरू भर्गाचार्य सभी मिल कर मन्त्रणा करते हैं। हर्ष को इस बात की बड़ी प्रसन्नता है कि उसके गुरु भर्गाचार्य ने शत्रुओं के ऐसे गुप्त रहस्य का पता लगा लिया है जिसका उसके बड़े से बड़े गुप्त्चर भी पता नहीं लगा सके। इतने में एक रक्षक हर्ष को सूचना देता है कि हमारे द्वारा पकड़ा गया शत्रु पक्ष का एक व्यक्ति जहां पर बन्दी बना कर रखा गया था उसे शत्रुपक्ष के दो युवक बलपूर्वक हमारे रक्षकों को हटा कर उसे छुड़ा कर ले गये हैं। इस घटना से सभी को आश्चर्य होता है। गुप्तचर प्रमुख शात निशात इस घटना के सम्बन्ध में जांच करने की प्रतिज्ञा करते हैं। इसके पश्चात् भर्गाचार्य पारिजात प्रासाद में हर्ष के साथ चले जाते हैं और अरुण, वरुण उत्सव में आये हुए चीन देशीय छात्र से वाग्विलास करते हैं, किन्तु चतुर चीन देशीय व्यक्ति उनके प्रत्येक प्रश्न का उत्तर बड़ी चतुरतापूर्वक देता है। इसके पश्चात् सभी लोग उत्सव और नगर की साजसज्जा देखने में प्रवृत्त हो जाते हैं। वे महाराज हर्ष की भूरि भूरि प्रशंसा करते हैं। सबसे अन्त में गुरु भर्गाचार्य उनकी स्तुति करते हैं और उन्हें सर्वविजयी होने का आशीर्वाद देते हैं। हर्ष उल्लास पूर्वक दो घोषणाएं करते हैं। प्रथम यह कि वे उत्तर दिग्विजय के समय दुष्ट चंडदेव का दमन करेंगे और दूसरी स्थाण्वीश्वर के स्थान पर अब राजधानी कान्यकुब्ज नगरी होगी।

तृतीय अंक में – चंडदेव के भवन में चंडदेव और मगध का राजा शशांक परस्पर विचार करते हैं। वे सोचते हैं कि हर्ष का वध कैसे किया जाय। शशांक चंडदेव को बताता है कि उसके मित्र मालव के अधिपति ने हर्ष और वर्धन के भगिनीपति गृहवर्मा को मार डाला था। इस पर क्रोधित होकर हर्षवर्धन ने मालवाधिपति का वध कर दिया था। मालवाधिपति उसका मित्र था इसलिए उस मित्रघाती राजवर्धन का शीघ्र ही वध कर दिया। इस पर राजा हर्ष अपने भाई का और भगिनीपति के वध का प्रतिशोध लेने के लिये उत्तर दिग्विजय करेगा। अब हर्ष का वध करने के लिये चंडदेव की सहायता की आवश्यकता है। वे हर्ष द्वारा फेलाये गये गुप्तचर जाल के प्रति भी चिन्ता प्रकट करते हैं। चंडदेव और शशांक द्वारा निकाले गये कितने ही सामन्त और योद्धा हर्ष की सेना में जा मिले हैं जिससे चंडदेव और शशांक का प्रत्येक रहस्य हर्ष को मालूम हो गया है। इतने में चंडदेव का मन्त्री उग्रसेन तीन व्यक्तियों को साथ लेकर

आता है जिनमें एक तो गुप्तचर तुषार है और दो अन्य व्यक्ति हैं। तुषार चण्डोक को बताता है कि उन दोनों ने मेरे प्राण बचाए हैं। चंडसेन के परिचय पूछने पर वे बताते हैं कि वे अश्व विद्या और धनुर्विद्या में प्रवीण हैं और दक्षिण देश के निवासी हैं किन्तु वहां अकाल पड़ जाने के कारण आश्रय लेने के लिये राजा चंडदेव के पास आये हैं क्योंकि राजा हर्ष के पास तो धार्मिक पाखंडी लोग ही आश्रय पाते हैं। योद्धा अपना नाम कीर्तिसेन बताता है और दूसरे का महासेन। राजा चंडदेव अपनी प्रशंसा सुन कर बड़ा प्रसन्न होता है और अश्व परीक्षा के उपरान्त उन्हें अपनी सेना में रख लेता है। कीर्तिसेन राजा चंडदेव के आश्रय में रहता है और महासेन राजा शशांक के आश्रय में। तुषार चंडदेव को बताता है कि उनके द्वारा फेलाया हुआ सम्पूर्ण कपटजाल छिन्न भिन्न हो गया है क्योंकि हर्ष के गुरु भर्गाचार्य और उनके शिष्यों ने सम्पूर्ण रहस्य खोल दिया है तथा हमारे द्वारा निष्कासित सामन्तों ने भी सम्पूर्ण रहस्य भेद कर दिया है। चंडदेव पूछता है कि स्थाण्वीश्वर के बाह्य भाग से लेकर हर्ष के प्रसाद तक जो सुरंग निर्माण का कार्य यशस्वी कालिय आदि को समर्पण किया था उसका क्या परिणाम निकला। इस पर तुषार कहता है कि वे कालिय आदि तो शत्रुपक्ष के थे आपके पास भेद लेने के लिये आये थे। आज जब मैं सुरंग का वृत्तान्त जानने के लिये गया तो उन्होंने मुझे पकड़ लिया। तब इन्हीं दो वीरों ने मुझे छुड़ा कर मेरी जान बचाई है और मुझे यहां तक लाये हैं। यह बात सुन कर चंडसेन का कीर्तिसेन और महासेन नामक दोनों योद्धाओं पर विश्वास अधिक बढ़ जाता है।

चतुर्थ अंक – अश्वविद्या में युवक तरुण को देखकर महाराज चंडसेन की रानी कलावती उस पर रीझ जाती है और अपनी दासी चतुरा से कीर्तिसेन को अपने पास बुलाने की युक्ति सोचती है। चतुरा कीर्तिसेन को बुलाने भी जाती है किन्तु कीर्तिसेन बहुत उदासीनता से उत्तर देता है कि उसे महारानी से मिलने की इच्छा नहीं है। उसे तो अपना कार्य ठीक से करना है। इस पर चतुरा एक दूसरी युक्ति सोचती है। जिस समय राजा चंडदेव उद्यान में अपनी रानी कलावती से मिलने जाता है उस समय रानी कलावती राजा को देखकर भी न देखने जैसे अभिनय करके अपनी सखी चतुरा को झूठ मूठ ही एक घटना सुनाती है कि वह उस दिन वाटिका में अकेली भ्रमण कर रही थी। उधर से सेनापति ने आकर मुझ पर कुदृष्टि डाली। मैंने सहायता के लिये शोर मचाया तो संयोग से कीर्तिसेन उधर से निकल आया और उसे देखते ही सेनापति भाग खड़ा हुआ। इस तरह कीर्तिसेन के कारण वह बच गई। चतुरा भी बनावटी रूप में कहती है कि यह रहस्य की बात तुम राजा से कहो। रानी उत्तर देती है कि मुझे यह बात राजा से कहते हुए डर लगता है। राजा उद्यान में प्रवेश करते पर सम्पूर्ण बात सुन चुका होता है और प्रकट होकर रानी से कहता है कि उसने दोनों का सम्पूर्ण वार्तालाप सुन लिया है। वह शीघ्र ही सेनापति को जेल में डाल देगा और उसके स्थान पर कीर्तिसेन को सेनापति बनाएगा। रानी और चतुरा अपनी युक्ति की सफलता पर बहुत प्रसन्न होती हैं किन्तु इतने में ही कंचुकी आकर चंडदेव को एक पत्र देता है जिसे पढ़ कर घबराहट में चंडदेव मन्त्री को बुलाने की आज्ञा देता है। मन्त्री के आने पर उसे सेनापति को शशांक राज्य सीमा पर भेजने की और उसके स्थान पर कीर्तिसेन को सेनापति नियुक्त करने की आज्ञा देता है। दूसरी ओर राजा हर्ष और उनका मित्र चकोर शशांक राज्य की सीमा पर अपना शिबिर डाल कर क्रोधित मुद्रा में शशांक के नाश और वध की घोषणा करते हैं। हर्ष अत्यन्त क्रोध में भर कर कहता है कि जिस व्यक्ति ने मेरे भगिनीपति और भाई का वध किया है मैं उसका समूल नाश कर दूंगा। इतने में द्वारपाल आकर चकोर को एक पत्र देता है जिसमें एक रहस्य श्लोक लिखा होता है। यह श्लोक वास्तव में चन्द्रिका नामक लड़की का लिखा होता है जिससे हर्ष और चकोर की पहले पहल उद्यान में भेंट होती है। वे दोनों पत्र का रहस्य जान वैसे ही कार्य करते हैं और युद्ध की तैयारी में लग जाते हैं।

पंचम अंक– चंडदेव और उसका मित्र नन्दन परस्पर वार्तालाप करते हैं। नन्दन चंडदेव को बताता है कि

कांकायन और शलंकायन जो आपके और शशांक के परम मित्र थे वे शत्रु पक्षीय हो गये हैं। इस पर चंडदेव बहुत दुखी होता है। इतने में महामन्त्री आकर सूचना देता है कि हर्ष की सेना ने सम्पूर्ण मगध राज्य को अपने अधीन कर लिया है और एक विशाल व्यक्ति जो कहीं से आकर महाराज शशांक के आश्रय में रह रहा था पहले तो उसने अपना विश्वास जमा लिया लेकिन बाद में उसी ने शशांक को हर्ष के अधीन करवा दिया। और अब हर्ष की सेना आपके राज्य की सीमा पर आक्रमण कर रही है। इस समाचार से चंडदेव को बहुत दुःख होता है और वह अपने नये नियुक्त सेनापति को युद्ध के लिये भेजना चाहता है किन्तु वही पुरुष बताता है कि आज प्रातः काल से ही नये सेनापति का कुछ पता नहीं है। इस पर चंडदेव स्वयं युद्ध के लिये उद्यत होता है।

दूसरी ओर से शिष्यों सहित भर्गाचार्य प्रवेश कर सभी नागरिकों का आश्वासन देते हैं कि अब दुःशासन से तुम्हारी मुक्ति हो गई है। अब तुम महाराज हर्ष की प्रजा हो। अब तुम्हें किसी प्रकार का दुःख नहीं होगा। इतने में चंड को मार कर हर्ष आते हुए दिखाई देते हैं और उनके साथ ही शरीर को ढक कर आने वाला एक अन्य व्यक्ति आता है। भर्गाचार्य के पूछने पर आवृत शरीर वाली स्त्री बोलती है कि वह पुरुष नहीं है। हर्ष और भर्गाचार्य इत्यादि सभी को इस बात का आश्चर्य होता है। इतने में कपड़ा उतार कर प्रतिमा सम्मुख खड़ी होकर कहती है कि मैं वही लड़की हूं जिसकी पहले पहल उपवन में आपसे भेंट हुई थी। दूसरी ओर से चकोर भी अपनी प्रिया चन्द्रिका के साथ आता है। चन्द्रिका और प्रतिमा परस्पर गले मिलती हैं और एक दूसरे द्वारा अभिनीत नाटक की प्रशंसा करती हैं। भर्गाचार्य हर्ष को बताते हैं कि चंड और शशांक द्वारा मारे गये शन्ति वर्मा की कन्या प्रतिमा है ओर उसके मन्त्री की कन्या चन्द्रिका है। इन्होंने बचपन में ही युद्ध विद्या का अध्ययन किया था। अपने राज्य में विप्लव हो जाने के कारण वे आश्रय लेने के लिये स्थाण्वीश्वर आई थीं। अब तुम इस प्रतिमा नामक कन्या को पत्नी रूप में ग्रहण करो और चकोर भी चन्द्रिका को पत्नी के रूप में स्वीकार करे। इसके पश्चात् भर्गाचार्य नागरिकों को सम्बोधित कर कहते हैं कि जिनके प्रताप से तुम दुष्ट चंड के शासन से मुक्त हुए हो ये वही महाराज हर्ष हैं। इसके पश्चात् भरत वाक्य के उच्चारण के साथ ही इस नाटक की समाप्ति होती है।

## चरित्र चित्रण

हर्ष– ' हर्ष दर्शनम् ' का नायक हर्ष, एक ऐतिहासिक व्यक्ति है और प्रस्तुत लेखक ने नायक के चरित्र के साथ पूर्णतया न्याय किया है। ' हर्षदर्शनम् ' का नायक अत्यधिक वीर और कूटनीतिज्ञ तो है ही साथ ही अत्यन्त धार्मिक, दानी और गुरूजनों का आदर सत्कार करने वाला भी है। आश्रय चाहने वालों के लिये उसका द्वार सदैव खुला है तभी दो लड़कियों प्रतिमा और चन्द्रिका के आश्रय मांगने पर वह कहता है–

हर्ष – आश्रयाभवात् राजपरिग्रहस्य इच्छा चेत् तदनुरूपं भवेदेव।
अर्थात् आश्रय के अभाव में यदि राज्य की सहायता की अपेक्षा हो तो ऐसा ही हो।

हर्ष के गुरू भर्गाचार्य उसे प्रत्येक कार्य में सहायता देते हैं तो हर्ष के लिये भी गुरु से बढ़ कर और कोई शक्ति नहीं है। इतने बड़े साम्राज्य में कहां क्या हो रहा है इस रहस्य का ज्ञान कुछ तो गुरु अपनी दिव्य दृष्टि से ही लगा लेते हैं और कुछ अपने विस्तृत शिष्य मंडल के द्वारा। हर्ष के शत्रु चंडदेव और शशांक द्वारा जो कपट जाल फैलाया गया था उसका रहस्योद्घाटन भर्गाचार्य ने ही किया था। इसलिए गुरु के प्रति कृतज्ञता से भर कर हर्ष कहता है –

हर्ष – अहो देवेन्द्रस्यापि गुरोरपेक्षा। किं पुनर्मानवानाम् ।

गुरूदेवदृढां नौकां यवा धरपिवासवाः । सुखेनैवाभवन् लोके राज्यसागरपारगाः ।

अर्थात् इन्द्र को भी गुरु की अपेक्षा होती है ऐसी अवस्था में मनुष्यों का क्या कहना। गुरु ही एक ऐसी दृढ़ नौका है जिस पर पृथ्वी के वासी राज्य रूपी सागर से सुखपूर्वक पार हो जाते हैं। गुरु के आदर-सत्कार करने में तो हर्ष अद्वितीय हैं ही, सभा-पंडित और कवियों के प्रति उनकी सद्भावना भी अत्यन्त स्तुल्य है। उनकी सभा सदैव विद्वज्जनों से सुशोभित रहती थी।

पश्यन्तु तत्रभवन्तः सभ्याः । सम्राजः हर्षदेवस्य इयं पंडितरत्नमंडिता सभा भासेन वीरमयी, मयूरेण चित्रमयी, मातंगेन श्रीमयी दिवाकरेण तेजोमयीति भाति।

हे सभ्यो, इधर ज़रा ध्यान दीजिए। सम्राट् हर्ष देव की यह पंडित रूपी रत्नों से मंडित सभा भास कवि से वीरमयी है। मयूर कवि के कारण चित्रमयी है। मातंग के कारण श्रीमयी है। दिवाकर के कारण तेजोमयी है।

हर्ष स्वयं भी अत्यन्त विद्वान् उदार और दानी थे किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि उनमें वीर रस की उतनी उद्दामता नहीं थी। जब उन्हें क्रोध आता था तो शत्रु का बच निकलना असंभव होता था। शशांक ने उनके बड़े भाई राज्यवर्धन का वध किया था। जब हर्ष उसका प्रतिशोध लेने आते हैं तो उसका वध करके और उसका राज्य तहस नहस करके ही जाते हैं। उनके क्रोध के सामने ठहरने की किसे हिम्मत है ?

हर्षः – ( सप्तक्रोधम् ) रे रे नराधम। अस्मत्परमपूज्यस्य ज्येष्ठभ्रातुः राज्यवर्धनस्य उपांशुधातिन्, इदानी क्व गच्छसि। रे क्षुद्रपशो। अद्य त्यवमात्मानं व्याघ्राघ्रातं जानीहि ।

न त्वं क्षत्रिय वीर्यजोऽसि पिशुनः प्रच्छन्नशालावृकः
मित्राणां हितकांक्षिणामपि महान् विश्वासघाती खलः।
हिंस्रेभ्यः किल भोजनार्थमचिरा? दोदस्यामि हस्तास्फुरत् ।
खड्गाऽऽघातविभिन्नवर्ष्मविगलद्रक्ताऽऽक्तगात्राणि ते।।

अर्थात् तुम क्षत्रिय नहीं हो वरन् छिपे हुए तुच्छ शृगाल हो। अपने मित्रों के और हित चाहने वालों के साथ महान् विश्वासघात करने वाले हो। शीघ्र ही खड्ग के आघात से काटे गये और रक्त से सने हुए तुम्हारे अंगों को हिंस्र जन्तुओं को भोजन के लिये मैं हाथ से फैंक फैंक कर दूंगा।

सम्पूर्ण उत्तर दिग्विजय कर चुकने के पश्चात् हर्ष अपने हृदय की अपार विशालता का परिचय देते हैं। वे नगर भर में घोषणा करवा देते हैं।

भोः भोः । मे प्रियपौराः । श्रीमत्कृतसत्कारं स्वीकृत्य श्रीमत्प्रदत्तं यद्धनं तत्सर्वमपि लोककल्याणायात्रैव स्थापितमिति सानन्दं समुदघुष्यते। तथा व च साम्राज्यान्तर्गतानां लोकानां हिताय प्रतिवर्ष पंचकोटिसंख्याकस्य धनराशैः व्ययो भवतीति घोषणाऽपि क्रियते।

हर्ष का मित्र चकोर भी आरम्भ से अन्त तक हर्ष का साथ देता है और प्रत्येक स्थिति में सहायता पहुंचाता है।

भर्गाचार्य– जिस प्रकार चन्द्रगुप्त मौर्य पर चाणक्य का वरद हस्त था उसी प्रकार हर्ष को भर्गाचार्य का संरक्षण प्राप्त था। मुनि वृत्ति होने पर भी लोक कल्याण की भावना से वे सम्पूर्ण देश का भ्रमण करते थे और प्रत्येक बुरे कार्य को रोकने का प्रयत्न करते थे। राज्य विषयक सम्पूर्ण षड्यन्त्रों की सूचना उन्हें अपने शिष्य मंडल से मिलती रहती थी और वे सभी सूचनायें राजा हर्ष के पास भेज दिया करते थे। यही कारण था कि शत्रुओं का कोई भी षड्यंत्र सफल नहीं हो पाता था। इस विषय में उनका कथन हैं :

सर्वोत्कर्षं भजति भुवने यः सदा तं दि्वषन्ति, ये नो लोके प्रबलनृपतेः सत्पदं गन्तुमीशाः ।

तैः स्वार्थान्धैः विपुलविभवैः, मत्सरग्रस्तचितैः मन्दाक्रान्तं कृतमिति परैर्ज्ञायते राज्यभेतत् ।।

राज्य कार्य को देखते हुए भी और चतुर्दिक् अपनी दिव्य दृष्टि का प्रसार करते हुए भी वे अपने दैनिक जीवन में आचार व्यवहार के विषय में सजग थे। मध्याह्न पूजा का समय होने पर वे सभी अन्य कार्य स्थगित कर देते हैं और स्नान के लिये चले जाते हैं ––

भर्गाचार्यः – वत्सौ वरुणारुणौ । अयं मध्याह्न-सन्ध्यासमयः इति विभाकरः करैर्मां निबोधयति। तस्मादहं अस्याः सरस्वत्याः तीरात् स्नानविधिं समाप्य यावदागच्छामि तावत् युवाभ्यां अस्य महतः शाल्मलीतरोरथस्ताद् आसनमास्तीर्य कानिचित् फलानि आहर्तयानि।

अर्थात् हे वत्स वरुण और अरुण सूर्य अपनी किरणों द्वारा मुझे सूचित कर रहा है कि अब मध्याह्न सन्ध्या का समय हो गया है इसलिए मैं सरस्वती के तट पर जब तक स्नान करके आता हूं तब तक तुम दोनों इस बड़े शाल्मली वृक्ष के नीचे आसन फैला कर कुछ फल ले आओ।

इस प्रकार आध्यात्मिक जीवन को अक्षुण्ण रखते हुए और साथ ही साथ राज्य कार्य करते हुए प्राचीन राज्य गुरु अपना जीवन यापन करते थे।

प्रतिमा चन्द्रिका और कलावती –– नाटक की तीन स्त्री पात्रियां भी अपनी अपनी विशेषता रखती हैं। प्रतिमा और चन्द्रिका क्रमशः राजपुत्री और सचिव पुत्री हैं और अपने वंश और अधिकार के अनुसार ही प्रतिमा राजा हर्ष के प्रति आकर्षित होती है और चन्द्रिका हर्ष के मित्र चकोर के प्रति। किन्तु वे समासक्त न होकर अपने कर्तव्य को पूरी तरह निभाती हैं और जब पूर्णतया अपना कर्तव्य कर चुकती हैं तो अपने अभीष्ट को प्राप्त करती हैं। उन्हें आरम्भ से ही युद्ध की शिक्षा दी जाती है जिससे वे अपना कार्य करने में सफल होती हैं। दोनों ही बहु कुशाग्र बुद्धि हैं तभी तो उनके द्वारा खेले गये नाटक को बड़े गुप्तचर भी न पकड़ पाये और सबसे बड़ी बात यह है कि लड़की हो कर लड़के का वेश बना नर और फिर शत्रुओं के घर रह कर उन पर पूर्णतया अपना विश्वास जमा कर अपनी अभीष्ट सिद्धि करना यह द्योतित करता है कि हर्ष के समय में लड़कियों को कितनी सर्वांगीण शिक्षा दी जाती थी। वे केवल गृहिणी के कार्य में ही कुशल नहीं होती थी वरन् समय आने पर अश्व पर चढ़कर तलवार चलाने और युद्ध करने में भी वे पीछे नहीं हटती थीं। उनके सभी कार्य रहस्यमय थे। शत्रु पक्ष के गुप्तचर तुषार को छुड़ा कर उसे शत्रुओं के पास

हर्ष का मित्र चकोर भी आरम्भ से अन्त तक हर्ष का साथ देता है और प्रत्येक स्थिति में सहायता पहुंचाता है।

भर्गाचार्य– जिस प्रकार चन्द्रगुप्त मौर्य पर चाणक्य का वरद हस्त था उसी प्रकार हर्ष को भर्गाचार्य का संरक्षण प्राप्त था। मुनि वृत्ति होने पर भी लोक कल्याण की भावना से वे सम्पूर्ण देश का भ्रमण करते थे और प्रत्येक बुरे कार्य को रोकने का प्रयत्न करते थे। राज्य विषयक सम्पूर्ण षड्यन्त्रों की सूचना उन्हें अपने शिष्य मंडल से मिलती रहती थी और वे सभी सूचनायें राजा हर्ष के पास भेज दिया करते थे। यही कारण था कि शत्रुओं का कोई भी षड्यंत्र सफल नहीं हो पाता था। इस विषय में उनका कथन हैं :

सर्वोत्कर्षं भजति भुवने यः सदा तं द्विषन्ति, ये नो लोके प्रबलनृपतेः सत्पदं गन्तुमीशाः ।

तैः स्वार्थान्धैः विपुलविभवैः, मत्सरग्रस्तचितैः मन्दाक्रान्तं कृतमिति परैर्ज्ञायते राज्यभेतत् ।।

राज्य कार्य को देखते हुए भी और चतुर्दिक् अपनी दिव्य दृष्टि का प्रसार करते हुए भी वे अपने दैनिक जीवन में आचार व्यवहार के विषय में सजग थे। मध्याह्न पूजा का समय होने पर वे सभी अन्य कार्य स्थगित कर देते हैं और स्नान के लिये चले जाते हैं ––

भर्गाचार्यः – वत्सौ वरुणारुणौ । अयं मध्याह्न-सन्ध्यासमयः इति विभाकरः करैर्मां निबोधयति। तस्मादहं अस्याः सरस्वत्याः तीरात् स्नानविधिं समाप्य यावदागच्छामि तावत् युवाभ्यां अस्य महतः शाल्मलीतरोरथस्ताद् आसनमास्तीर्य कानिचित् फलानि आहर्तयानि।

अर्थात् हे वत्स वरुण और अरुण सूर्य अपनी किरणों द्वारा मुझे सूचित कर रहा है कि अब मध्याह्न सन्ध्या का समय हो गया है इसलिए मैं सरस्वती के तट पर जब तक स्नान करके आता हूं तब तक तुम दोनों इस बड़े शाल्मली वृक्ष के नीचे आसन फैला कर कुछ फल ले आओ।

इस प्रकार आध्यात्मिक जीवन को अक्षुण्ण रखते हुए और साथ ही साथ राज्य कार्य करते हुए प्राचीन राज्य गुरु अपना जीवन यापन करते थे।

प्रतिमा चन्द्रिका और कलावती –– नाटक की तीन स्त्री पात्रियां भी अपनी अपनी विशेषता रखती हैं। प्रतिमा और चन्द्रिका क्रमशः राजपुत्री और सचिव पुत्री हैं और अपने वंश और अधिकार के अनुसार ही प्रतिमा राजा हर्ष के प्रति आकर्षित होती है और चन्द्रिका हर्ष के मित्र चकोर के प्रति। किन्तु वे समासक्त न होकर अपने कर्तव्य को पूरी तरह निभाती हैं और जब पूर्णतया अपना कर्तव्य कर चुकती हैं तो अपने अभीष्ट को प्राप्त करती हैं। उन्हें आरम्भ से ही युद्ध की शिक्षा दी जाती है जिससे वे अपना कार्य करने में सफल होती हैं। दोनों ही बहु कुशाग्र बुद्धि हैं तभी तो उनके द्वारा खेले गये नाटक को बड़े गुप्तचर भी न पकड़ पाये और सबसे बड़ी बात यह है कि लड़की हो कर लड़के का वेश बना नर और फिर शत्रुओं के घर रह कर उन पर पूर्णतया अपना विश्वास जमा कर अपनी अभीष्ट सिद्धि करना यह द्योतित करता है कि हर्ष के समय में लड़कियों को कितनी सर्वांगीण शिक्षा दी जाती थी। वे केवल गृहिणी के कार्य में ही कुशल नहीं होती थी वरन् समय आने पर अश्व पर चढ़कर तलवार चलाने और युद्ध करने में भी वे पीछे नहीं हटती थीं। उनके सभी कार्य रहस्यमय थे। शत्रु पक्ष के गुप्तचर तुषार को छुड़ा कर उसे शत्रुओं के पास

पहुंचाना शत्रुओं में अपने विश्वास दिलाने का एक सबल कारण था और इसी के आधार पर वे लगातार सफल होती गई।

सूत्रधार प्रतिमा और चन्द्रिका का परिचय देते हुए स्वयं कहता है –

बाल्ये वयसि एव प्रतिभा स्वमातुलात् अतिनिपुरातया युद्धशिक्षां गृहीतवती। तत्रैव चन्द्रिका ऽपि–

एक और चामत्कारिक बात यह है कि दोनों कन्याएं प्रथम अंक में और अन्तिम, पंचम, अंक में ही प्रकट होती हैं किन्तु उनका कार्य लगातार चलता रहता है और वे सम्पूर्ण कार्य अदृष्ट होकर ही करती हैं। उनका रहस्योद्घाटन अन्त में जाकर होता है कि वे पहले जो कुछ भी रहस्यमय हुआ उनकी कार्यकत्री ये दोनों थीं।

कलावती– शत्रु पक्ष के दुष्ट राजा चंडदेव की पत्नी है। वह एक कामुक स्त्री है। अपने पति को कामुकता के प्रतिशोध स्वरूप वह भी किसी सुन्दर पुरुष से काम केलि करना चाहती है और किसी भी सुन्दर पुरुष को यदि वह चाहती है तो किसी न किसी प्रकार उसे पाने का प्रयत्न करती है। पुरुष वेश धारी प्रतिमा पर रीझ कर वह उसे अपनी चेटी चतुरा द्वारा अपने पास बुलाती है। जब वह उदासीनता प्रकट करती है तो एक और कपट जाल बिखेरती है जिसमें फंस कर चंडदेव प्रतिमा को सेनापति बना देता है। किन्तु रानी कलावती उपने कार्य में सफल नहीं हो पाती– एक तो प्रतिमा के उसके प्रति उदासीन होने से ( क्योंकि वह स्वयं स्त्री थी ) और दूसरे चंडदेव के ऊपर आ पड़ी युद्ध की आपत्ति के फल स्वरूप।

कलावती उन अनेक रानियों का प्रतिनिधित्व करती है जो कामुक राजाओं की रानी कहलाने का अधिकार तो रखती हैं लेकिन स्वयं किसी न किसी अन्य व्यक्ति में आसक्त होकर समय-यापन करती हैं। उसके लिए उनका नैतिक स्तर अत्यन्त गिर भी जाये तो इसकी उन्हें चिन्ता नहीं होती।

## भाषा और शैली

विषय, भाषा और कथानक के दृष्टिकोण से नाटक उत्तम कोटि का है। लेखक की वर्णन शक्ति अद्भुत है। एक दृश्य का या व्यक्तित्व का वर्णन करते समय एक चित्र सा खिंच जाता है। नगर की रचना का कितना सुन्दर चित्रण है –

प्रोत्तुंगमेरुशिखराग्रसमान हर्म्यं काम्यं सुरैरपि च यत् रचनाविशेषात्।
रम्यं विकासि वनितावदनारविन्दैः साम्यं यदीयनगरं सरसां विधत्ते ।।

और साथ ही कविवर मयूर द्वारा हर्ष की प्रतिमा का चित्र कितना भव्य है ––

राजन् विभावसुरिवात्र करैः समग्रैः आदाय लोकजलधेर्धनतोयमुच्चैः।
तस्य स्थितं प्रकुरुषे धनकोषमध्ये काले तु तुंगवति लोकहितार्थमेव।।

लेखक का अनुप्रास प्रिय अलंकार है। इसका एक सुन्दर उदाहरण देखिए — केवल अनुप्रास ही नहीं सुन्दर वनिताओं के यौवन का चित्रण होने के कारण शृंगार रस का उद्दीपन भी इस रूप में है ——

कश्चित्कांचनकांचिकिंकिणिरवैः कुर्वन्ति कर्णोत्सवम् (अनुप्रास)
कासां नुपुर सिंजित कलरवं हंसादिका ऽऽ कर्षकम् ।
कासां स्थूलनितम्बमन्दगमनं यन्नेत्रयोः कौतुकम्।
काश्चित् कूणित वीक्षणैः सुललितैः चित्तव्यथां कुर्वते ।।

'ल' का अनुप्रास भी दर्शनीय है —

प्रमदा मदुवल्लरीः मृदुहस्तेन लुनन्ति लीलया।
मृदुभिस्तु कटाक्षपातनैः युवचित्तं दलयन्त्यपि ध्रुवम् ।।

(चीन देश के वासियों का भारत में आने का क्या प्रयोजन होता था इसकी ओर लेखक ने प्रकाश डाला है। भर्गाचार्य से उनके शिष्य पूछते हैं कि ह्वेन सांग का भारत आने का क्या प्रयोजन हो सकता है तब भर्गाचार्य बताते हैं—

विदेशीयानां विषये तु एवं प्रतिभाति। एते खलु केवलं स्वदेश – प्रेरण एव परदेशं प्राप्य तत्र संस्कृते गाढ़तरं अध्ययनं कुर्वन्ति। प्रसंगवशात् शिक्षासौकर्यार्थम् अभिमतधर्मस्यदीक्षामपि गृह्यन्ति। सर्वत्र आहि ण्डमानाः देशेऽस्मिन् कीदृशः आचारविचारः धर्मग्रन्था प्रजासु कियती धर्मश्रद्धा अनुशासननिष्ठा, राजाप्रजयोः परस्परविषयेः कीदृशः आदरः, कियत् सैन्यबलं लोकेषु धैर्यं शौर्यं वर्तते वा न वा मन्त्रिमंडलस्य च सेनापतेः कीदृगैकमत्यं, ज्ञानविज्ञानयोः कीदृशी संपन्नता प्रगतिश्च इत्यादिकं किं बहुना सर्वमपि निपुणतरं समीचीनासमीचीनं निरीक्ष्य विलिख्य च प्रकाशयन्ति। ऐतिस्यदृष्टया अस्य महानुपयोगः इति ते मन्वते।

कहीं कहीं पर रूपक की अनुपम छटा है —

निशोद्गतेन तमसा ग्रस्येत प्राङ्मुखं यदा।
तदा तद् ध्वंसनं कर्तुं कः शब्दो भानुना विना।।

# पुरुष रमणीयम्

## श्री जीव शर्मा गोणी

### कथानक

श्री जीव शर्मा रचित दो अंकों का यह छोटा सा प्रहसन है। इसमें भीख मांगने वालों के अर्न्तद्वन्द्व के साथ शुद्ध मन से दिये गये दान का महत्व वर्णित है।

प्रथम अंक के पहले दृश्य में दो विद्यार्थी, सुबन्धु और सोमदत्त, जिन्होंने अपनी शिक्षा समाप्त कर ली है तथा जिन्हें जीविका का कोई साधन प्राप्त नहीं हुआ, रास्ते पर जा रहे होते हैं। सुबन्धु अधिक चुस्त और चतुर है लेकिन सोमदत्त कुछ सुस्त और कोमल फ्लेवर का व्यक्ति है। आयु में भी सुबन्धु से कम है। उन्हें कहीं से सूचना मिलती है कि किसी दूसरे प्रान्त की रानी सीमन्तिनी जो कि शिव भक्त है, दरिद्रों को दान देती है। सुबन्धु और सोमदत्त यह सोच कर कि शायद वहीं कुछ द्रव्य राशि प्राप्त हो जाय रानी के पास ही जा रहे होते हैं। सुबन्धु अधिक बलिष्ट है। वह द्रव्य के महत्व को जानता है तथा उसे इस बात की चिन्ता नहीं कि भीख मांगना बुरी बात है। इसलिए वह सोमदत्त को जो कि भीख मांगना बुरा समझता है तथा जो इसी चिन्ता के मारे मार्ग में पीछे ही रह जाता है जल्दी-जल्दी चलने के लिए प्रेरित करता है। जब ये दोनों रानी के भवन के पास पहुंचते हैं तो एक मनुष्य जो अपने आप को राजपुरुष बतलाता है, उनसे कहता है कि रानी की आज्ञा है कि उसके भवन के भीतर कोई भी व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत धनराशि नहीं ले जा सकता इसलिए आप जो कुछ भी है यहीं रख जाइये। रानी से भेंट करने के पश्चात् जाते समय आपको, आपकी वस्तु समर्पित कर दी जाएगी। सुबन्धु के यह पूछने पर कि इसका क्या प्रमाण है कि वह राजपुरुष ही है, वह चोर भी हो सकता है। इस पर वह व्यक्ति कहता है कि भीख मांगने से तो चोरी करके खाना अच्छा है। उसमें कम से कम शौर्य तो है। सुबन्धु को उसकी बात चुभ जाती है, वह चुपचाप अपनी तलाशी दे देता है। दोनों के पास कुछ नहीं मिलता इसलिए वह व्यक्ति उन्हें अन्दर करके खाना अच्छा है जंच जाती है। अतः वह सोमदेव से कहता है कि मैं भी अब चोरी करूंगा। इतने में एक वृद्ध दम्पति जिन्हें रानी से बहुत अधिक दान मिलता है परस्पर वार्तालाप करते हुए आते हैं कि रानी की कृपा से अब हमारे सभी कष्ट दूर हो गये हैं, इस धनराशि से हम अपने दिन चैन काट सकते हैं। सुबन्धु सोमदत्त से कहता है कि इन्हीं वृद्धजनों की चोरी करनी चाहिए। अतः वह वृद्ध के पास जा कर कहता है जो कुछ भी तुम्हारे पास हो वह दे दो। वृद्ध अनुभवी व्यक्ति था, उसने कहा कि तुम वृद्ध को मारने का पाप सिर पर क्यों उठाते हो मेरी स्त्री के कपड़े ले जाओ और तुम दोनों में से व्यक्ति स्त्री का भेष धारण कर ले। दम्पत्ति के रूप में रानी के पास जाओगे तो वह बहुत सत्कार करेगी और धन भी देगी। सुबन्धु को उसकी बात ठीक लगती है। सोमदत्त की आकृति अधिक कमनीय भी इसलिए उसी का स्त्री वेश बनाया गया। रानी ने उन्हें दम्पत्ति ही समझा और उन्हें बहुत सा द्रव्य दिया। लौटती बार जब सोमदत्त स्त्रीवेश का परित्याग कर पुनः पुरुषोचित वेश धारण करने लगा तो दोनों ने देखा कि सोमदत्त वास्तव में ही स्त्री बन गया था। सोमदत्त इस लिंग परिवर्तन पर बहुत दुःखी होता है और कुएं में डूब मरने की सोचता है। इतने में वही व्यक्ति जो उन्हें आती बार मिला था दिखाई देता है। यह कह कर कि सुबन्धु के साथ जाती बार कोई स्त्री नहीं थी तथा अब यह स्त्री को भगा कर ले चला है, वह उसके साथ युद्ध करता है। इतने में ही वह राजपुरुष जो बाद में दस्यु के रूप में अपना परिचय देता है अपने वास्तविक रूप में प्रकट होता है। उनके सामने स्वयं भगवान् शिव आ खड़े होते हैं। आशुतोष शिव उन दोनों को आशीर्वाद देते हुए कहते हैं कि तुम दोनों मेरी परम भक्त रानी सीमान्तिनी के पास पति – पत्नी के रूप में गये

थे। उसने तुम्हें पति – पत्नी समझा, उसकी इच्छाशक्ति के कारण की सोमदत्त को वास्तव में स्त्री बनना पड़ा। सच्चे भक्त को धोखा देने का यही फल है। अब सबसे श्रेष्ठ मार्ग यही है कि तुम दोनों आपस में विवाह कर लो और सुखपूर्वक रहो।

- पुरुष रमणीयम् ' अर्थात् पुरुष का रमणीभाव को प्राप्त होना –– इस तथ्य को सामने रख कर ही इस प्रहसन का नाम रखा गया है। इसका आन्तरिक भाव यही है कि शिव की भक्ति करने वाले में इतनी शक्ति होती है कि जो वह सच्चे मन से सोचता है वास्तव में वैसा ही हो जाता है। नाटक के अन्त में यह दिखाया गया है कि दोनों का शुभ – विवाह सम्पन्न हो जाता है इसी कारण इसे प्रहसन कहना ही उपयुक्त होगा यद्यपि अन्य स्थलों पर हास्य का पुट बहुत कम है।

## चरित्र चित्रण

सुबन्धु : – व्यवहार कुशल व्यक्ति आदर्शवादी नहीं हो सकता और आदर्शवादी व्यक्ति से व्यवहार कुशलता की आशा करना व्यर्थ है।

वैसे एक ही व्यक्ति के स्वभाव में मात्रा भेद से गुणों का समावेश सम्भव है लेकिन उस व्यक्ति को मध्यस्थ ही माना जायगा। न तो वह पूर्णतया आदर्शवादी ही कहलायेगा और न ही यथार्थवादी। एक गुण की अधिकता दूसरे के गुण के अभाव की द्योतक है। इस प्रहसन का पात्र सुबन्धु व्यवहार कुशल माना जायगा। और सोमदत्त आदर्शवादी। जीवन के लिये धन की आवश्यकता है यह सुबन्धु भी जानता है और सोमदत्त भी, फिर भी उसकी प्राप्ति के विषय में दोनों के विभिन्न मत हैं। सुबंधु भिक्षा द्वारा प्राप्त धन को भी ग्राह्य मानता है जब कि सोमदत्त की अंतरात्मा उसे स्वीकार करने में हिचकिचाती है। जीवन के प्रति दोनों का दृष्टिकोण भिन्न है, जबकि दोनों शिक्षा एक ही गुरू से प्राप्त की है।

प्रहसन में जब सबसे प्रथम सुबन्धु रंगमंच पर आता है तो वह कहता है ––

जामातृ वद यासि सलीलगत्या
निमन्त्रितः किं श्वशुरस्य गेहे।
भिक्षो रवाहूत ! विधूत लज्जो
भजाधुना सत्वर गत्वरत्वम्।।[1]

श्वशुर गृह में निमन्त्रित जामाता की तरह क्या मजे – मजे में चल रहे हो। अरे आवाज लगा कर बुलाये गये भिक्षुक लाज त्याग कर झटपट अपना रास्ता नापो। कहने का तात्पर्य है कि प्रथम श्लोक में ही वह लज्जा को तिलांजलि दे देना चाहता है। धन की आवश्यकता है तो चाहे मांगना ही पड़े, मांगेंगे अवश्य और यदि मांगना ही है तो फिर लज्जा कैसी ?

सुबन्धु के मतानुसार व्यक्ति को किसी भी कार्य में लज्जा का अनुभव नहीं करना चाहिए। लज्जा करना तो स्त्रियों का धर्म है। तभी तो वह कहता है ––

---

1. प्रथम अङ्क, श्लोक 1, पृ01

लुब्धान्तरो मन्थर पाद चारी
खाद्येषु सुसज्जेऽपि सलज्जपाणिः।
भोक्तुं गतो वक्त्रविकाशशीरु-
नारी सधर्मा हि पुमांस्त्वथा त्वम्।।[1]

- वह पुरुष जैसे कि तुम हो, स्त्री के समान होता है जो कि मन में लालच होने पर भी धीमे – धीमे कदम रखता है, भोजन उपस्थित होने पर भी जिसका हाथ लजाता है, भोजन के लिये जाने पर मुंह खोलने से चरता है।

दान का महत्व तो शास्त्रों में बहुत स्थानों पर वर्णित है लेकिन मांगने के कितने प्रकार और नियम हैं इस विषय में सुबन्ध अधिक ज्ञाता प्रतीत होता है। उदाहरण के लिये ––

अग्रं वदान्यस्य विमृश्य दातुर्ग्राह्यञ्च
ग्राह्यं च मध्यं कृपणस्य चान्त्यम्।
नीवारषण्डस्य यथावदिक्षुदण्डस्य कन्दस्य
च लोक वृन्दैः।।[2]

अच्छी तरह सोच समझ कर उदार दाता से दान लेना चाहिये उसके बाद मध्यम कोटि के दाता से और अन्त में कन्जूस से दान लेना चाहिए जैसे कि लोग पहले नीवार को (जंगली चावल) पसन्द करते हैं, फिर ईख को और सबसे अन्त में कन्द को।

आधुनिक छात्र विद्या को भार स्वरूप समझते हैं और जितनी शीघ्र हो सके उस भार को उतार फेंकना चाहते हैं। सुबन्धु को भी ऐसी ही धारणा है ––

आन्वीक्षिकी ह्युपलखण्ड चयोपलक्ष्या।
पुञ्जीकृताखिनरजः किल धर्मशास्त्रम्।।[3]

- आन्वीक्षिकी कंकड़ों के ढ़ेर के समान है। धर्मशास्त्र सारी मिट्टी का ढ़ेर है। गुणमय तीनों वेद एक बड़ी सी टाट की दोहरा बोरा है।

प्राचीन काल में विद्या का अर्थ करी नाम उसके बहुत से गुणों में से एक का द्योतक था लेकिन आजकल विद्या उपार्जन का एक मात्र कारण धनलाभ ही है अतः उसके गुणों की अपरिमित राशि अब केवल 'अर्थ' ओं कर ही सीमित हो गई है। गुरू द्वारा प्राप्त विद्या यदि अर्थकरी नहीं तो वह निश्चय ही अनर्थ करी है। उसका यदि मूल से प्राप्त भी कर लिया है तो उसे नष्ट कर देना चाहिए, ऐसा सुबन्धु का मत है ––

उद्गिर तां गुरुविद्यां निन्दित जग्धमिव सपदि सन्दिग्धाम्।
अनर्थ करीञ्च निदासूभातामपि भदविकाराणाम्।।[4]

उस अनर्थकरी मद के विकारों का कारण रूप उस सन्दिग्ध गुरू विद्या को निन्दित भोजन की तरह

1. प्रथम उच्छ्वास, श्लोक 8, पृ० 5
2. वही, प्रथम उच्छ्वास, श्लोक , पृ० 6
3. वही, श्लोक 1, पृ० 6

तत्काल त्याग दो।

इसलिए यह याज्ञवलक्य मुनि का उदाहरण प्रस्तुत करता है, जिस तरह से याज्ञवलक्य मुनि ने गुरु की दी गई विद्या नष्ट कर दिया था और नवीन विद्या की प्राप्ति की थी उसी तरह मैं भी करूंगा। इससे सिद्ध होता है कि सुबन्धु उस आधुनिक युवक की सजीव प्रतिमूर्ति है जो विद्या से अन्य किसी भी प्रकार का लाभ उठाने से बिलकुल इन्कार कर देता है। लेकिन फिर भी सुबन्धु बिलकुल गिरा हुआ है, ऐसा नहीं कहा जा सकता क्योंकि जब स्वयं को राजपुरुष के रूप में परिचय देने वाला व्यक्ति कहता है —— भिक्षुजनाद् दस्युरपि वरम् ' अर्थात् भिक्षु से तो चोर अच्छा होता है तो उसके स्वाभिमान को चोट लगती है और वह कह उठता है —

' अहो निपुणमधिक्षिप्तोऽस्मि। यत्ते करणीयं तदधुना क्रियाताम् ' [1]

( तुमने बहुत गहरी चोट की है। अच्छा जो करना है अब करो ) उस व्यक्ति की बात सुबन्धु के हृदय में इतनी गहरी बैठ जाती है कि वह अपना मार्ग ही बदल लेना चाहता है। कहां तो वह पहले कह रहा था, कि मांगने चलो तो लज्जा को तिलांजलि दे कर चलो। अब वही यह कहता है —

चौर्यं वरं यत्र विभाति शौर्यं
चातुर्यमूला परवञ्चनापि।
दस्युत्वमप्यस्तु सदा स्तुतं नो
यत्र स्वतन्त्राः प्रभवन्ति सिद्धये।। [2]

वह चोरी ही अच्छी है जिसमे शूर वीरता है। पर-प्रतारणा में भी चातुर्य की आवश्यकता है। हम तो डाके को भी सदा स्तुति करते हैं क्योंकि उस में इतना तो है कि स्वतन्त्र रूप से लोग सिद्धि प्राप्त कर सकते हैं।

जिसमें पुरुषोचित शौर्य नहीं है वह कार्य नहीं करना चाहिए, और जिस कार्य में शौर्य है वह चाहे चोरी ही हो, पुरुष के लिये यही उचित है।

सम्बन्धु वीर पुरुष है, संसार से लड़ने की उसमें शक्ति है। यह बात उसके इस कथन से ही स्पष्ट हो जाती है ——

वरमेक वारं निजबलशरणस्येव रणस्याग्रे।
असकृन्मृत्योर्विरणात् पितृवनतुल्ये परद्वारे।। [3]

अपना बल ही जिसमें सहारा है उस युद्ध में आगे होकर एक बार मरना उसे श्मशान तुल्य दूसरे के द्वार पर बार बार के मरने से कहीं अच्छा है। इस श्लोक से इस तथ्य का पूर्वाभास भी मिल जाता है कि चोरी आदि साहसिक कार्य करने में सुबन्धु को यदि घोर युद्ध भी करना पड़ेगा तो वह पीछे नहीं हटेगा।

मनोवैज्ञानिक पुट —

---

१.

२. प्रथम अङ्क, श्लोक- , पृ० ६

३.

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, सुबन्ध में पुरुषोचित सभी गुण हैं। परिस्थितिवशात् वह भिक्षा मांगने पर मजबूर होता है लेकिन भिक्षा मांगने जैसा कार्य भी वह पुरुषोचित ढ़ंग से ही करना चाहता है, अर्थात् उसमें लज्जा का लवलेश भी नहीं होना चाहिए। परन्तु जब उसे कहा जाता है कि भिक्षजनाद् दस्युरपि वरम ' भिखारी से तो डाकू भी अच्छा ' तो एकदम उसकी मनःस्थिति परिवर्तित हो जाती है और वह कह उठता है — धिङ् निर्बुद्धितां पूर्वजानाम। यै राज्यकृषि वाणिज्यादिविसर्ज्य भिक्षा वृत्तिं रस्युपपन्नां ——

भिक्षा नैव जनप्रयोजन समद्रव्य प्रदान क्षमा
दातुर्वित्त दयार्द्र चित्त महिमापेक्ष्या परीक्ष्या न वा।
विद्या बुद्धि कुलाभिमान गणनाः क्षिप्रं विनिक्षिप्य भो।
ग्राह्या यावदुपस्थितेति धिग् हो भिक्षात्मिकां जीविकाम्।

धिक्कार हो पूर्वजों की बुद्धि हीनता को जिन्होंने राज्य, कृषि वाणिज्य आदि छोड़ कर भिक्षा वृत्ति अपना ली।

भिक्षा पुरुष को जितना द्रव्य की अपेक्षा दे नहीं सकती। दाता के धन (देने के लिए) दयार्द्र चित्त की अपेक्षा रखनी पड़ती है, उसकी जांच नहीं की जा सकती। विद्या बुद्धि और कुल के अभिमान की गणना को छोड़ कर और जितना मिलता हो उतना ले लो —— धिक्कार हो इस तरह की भिक्षा वृत्ति को।

यहां पर यह कह देना असंगत न होगा कि भारत को अधिकतर इस लाञ्छन का आरोप सहन करना पड़ता है कि यहां भिक्षा वृत्ति को अच्छा समझा जाता है तथा उसे प्रोत्साहन दिया जाता है। लेखन नायक के मुंह से पुनः पुनः यही कहलवाया है कि भिक्षावृत्ति किसी भी प्रकार से श्लाघ्य नहीं मानी जा सकती। सुबन्धु को कटु शब्दों से इतनी अधिक चोट लगती है कि वह कुछ क्षणों में ही यह निर्णय लेता है कि उसे क्या करना है। तभी दान से प्राप्त हुए धन से युक्त दम्पती को देख कर वह एक दम यह कह उठता है ——

' दस्युत्वमेव कर्तव्यमेवधारयामि '

अर्थात् चोरी करना ही कर्तव्य है यही अब मेरा निश्चय है। इससे सिद्ध होता है कि सुबन्धु धैर्यशील है और जो कार्य करना चाहता है उसे करने में अधिक विलम्ब न करके उसे कार्यान्वित करके ही छोड़ता है।

सुबन्धु के मतानुसार जो व्यक्ति किसी को धोखा नहीं दे सकता वह पुरुष ही नहीं है, पौरुष का लक्षण उसके शब्दों में ही सुनिए —— अस्त्येव मयि वञ्चनासाधकं साहसम् पौरुष लक्षणम्। अर्थात् मुझमें दूसरों को धोखा दे सकने का साहस है —— यही पौरुष का लक्षण है। भिक्षा मांगने में तो लाघव है लेकिन दूसरों को धोखा दे सकना और धोखा देने में पूर्णतया सफल हो जाना इसमें बुद्धि की अपेक्षा है। अपनी बुद्धि का उपयोग सुबन्ध कर रहा है इसलिए उसका हृदय प्रसन्नता से नाच रहा है।

इसमें संशय नहीं कि एक व्यक्ति जब बहुत नीचतापूर्ण व्यवहार करता है तथा अपनी नीचता के प्रति पूर्ण जागरूक होता है, उसके साथ उसमें बड़ी हार उस व्यक्ति की और कोई नहीं हो सकती । सुबन्धु ने पति पत्नी के रूप में रानी को धोखा दे कर सफलता प्राप्त करनी चाही लेकिन रानी ने अत्यधिक उदार होकर उन्हें दान दे

1.
2.
3.

दिया। इसको सुबन्धु अपनी बड़ी हार मानता है तभी कहता है ——

दैव्या सीमन्तिन्या दान महिम्ना वञ्चना चातुरी पराभूतेव प्रतिभाति। १

देवी सीमन्तिन्या दान महिमा से हमारी धोखा देने की चतुरता हार गई लगती है। अच्छाई और बुराई की चरम सीमा — जब इन दोनों का परस्पर साक्षात्कार होता है तो यही परिणाम होता है। एक पक्ष को पूर्णतया हार माननी ही पड़ती है।

पुरुष और स्त्री में परस्पर आकर्षण स्वाभाविक ही है। दो पुरुष चाहे वे कितने ही अभिन्न मित्र क्यों न हों उनमें परस्पर वैसा आकर्षण नहीं हो सकता जितना कि उतने ही घनिष्ठ पुरुष और स्त्री में होगा। कुछ क्षण पूर्व का सोमदत्त सुबन्धु में वह आकर्षण नहीं उत्पन्न कर सका लेकिन सोमदत्त के वेश परिवर्तन करते समय सुबन्धु को अनोखे रोमांच की अनुभूति होती है। कोई ऐसा भाव है जिसे वह अनुभव तो कर सकता है लेकिन व्यक्त नहीं कर सकता तभी वह कहता है ——

शर्व त्वदङ्गस्पर्शनं यदयं नापराधो मे। अद्भुतं किमप्यनुभूयते। २

तुम्हारे अंगों के स्पर्श करने में मेरा कोई अपराध नहीं कुछ ~~अद्भुत प्रकार का~~ अनुभव होता है।

अन्त में नायक के विषय में यह कहना पूर्णतया उपयुक्त है कि चाहे उसमें अन्य गुण हो न हो वह वीर अवश्य है तथा कैसी भी परिस्थिति हो उसका निर्भय होकर सामना करता है। स्त्री रूप सोमदत्त, जिसे अब सुबन्धु पत्नी सोमदत्ता के रूप में ग्रहण कर चुका है —— दस्यु द्वारा अपहरण कर लिये जाने की धमकी देने पर वह ललकार कर कहता है ——

यदि दस्युरसि मामनिर्जित्य न खलु मदीयां मायामपहर्तुं शक्ष्यसि ३

यदि तुम दस्यु हो तो भी मुझे हराये बिना मेरी पत्नी को हरण नहीं कर सकते।

## सोमदत्त

सोमदत्त इस प्रहसन का एक ऐसा चरित्र है जो पुरुष के बाद में स्त्रीत्व को प्राप्त होता है। अतः लेखक ने उसे पहले ही स्त्रियोचित गुण —— कोमलता, भीरुता तथा सहृदयता से युक्त चित्रित किया है। क्योंकि उसे बाद में सुबन्धु की भार्या बनना है इसलिए पहले से ही वह अग्रणी न होकर अनुसरण कर्ता है।

प्रथम अंक में ही जब सुबन्धु भिक्षा के लिये शीघ्रता से जाना चाहता है सोमदत्त आगे जाने में लज्जाता है। पांव उसके आगे बढ़ने के स्थान पर पीछे की ओर मुड़ना चाहते हैं, तभी वह सुबन्धु से कहता है। ——

यथैव त्वं वीरायसे, तथैव धीरायते मे पदयुगम् किमपि पश्चादाकर्षतीव माम्। ४



१.
२.
३.
४.

जितनी शीघ्रता से तुम्हारे पांव रास्ते पर पड़ते हैं उतनी ही मन्द गति से मेरे पांव आगे चलते हैं। कोई वस्तु मुझे पीछे खींचती सी मालूम होती है।

गुरुजनों द्वारा प्राप्त शिक्षा का उसके हृदय पर उच्च संस्कार है वही उच्च संस्कार ही उसे भिक्षा जैसे निकृष्ट कर्म करने से रोकता है। उसके शब्दों में —

पठामि सर्वशास्त्राणि गर्वस्थानानि धीमताम्।
नाहं पश्यामि दैन्यस्य मर्दकं तु कपर्दकम्।।

विद्वानों के लिये गर्व के विषय सभी शास्त्रों में पढ़ता हूं पर दरिद्रता को दूर करने वाली कोई मुझे कहीं भी नहीं दिखाई देती।

भिक्षु जनाद दस्युरपि वरम् — भारत में भिक्षा जैसा दैन्य कर्म और कोई नहीं।

मित्र होने के कारण और जीविका का अभाव होने के कारण वह भिक्षा मांगने में सुबन्धु का साथ तो देना चाहता है लेकिन उसका अन्तर्मन इस घृणित कार्य करने की अनुमति नहीं देता। सुबन्धु द्वारा भिक्षा वृत्ति की अवहेलना करने पर वह शीघ्रता से कहता है –

तर्हि गृहं प्रस्ववर्तस्व अलं भिक्षया
तो घर लौट कर चलो भिक्षा को रहने दो।

सोमदत्त नारी बनने के सर्वथा योग्य है इस बात का प्रमाण हमें सुबन्धु के इन शब्दों से मिल जाता है —

सोमदत्त। श्रूयताम् – नारी वेश धारणन्तु त्वमेव करणीयम्। कुत इति ? त्वमसि मृदुः, वर्षेण कनीयान् अजातश्मश्रुः परवस्त्रनधीरुश्च।

हे सोमदत्त सुनो — तुम ही नारी वेष धारण करो क्योंकि तुम कोमल हो।

---

1.
2.
3.